जिनेन्द्रप्रतिमापूर्णा मेखलात्रयसंयुताः।
चतुर्विंशतिसद्धेमवेदीभिर्वेष्टिताः परा: ॥५२॥
रत्नपीठेषु चत्वारिंशद्योजनोच्छ्रितेषु च।
स्फुरद्रत्नमयाः सन्ति स्थितादेवखगार्चिताः ॥५३॥
गोपुराणां बहिर्भागे वीथीनां मध्यभूमिषु।
मानस्तम्भा भवन्त्युच्चै दीप्ता घण्टाद्यलंकृताः ॥५४॥

अर्थ–उन सभागृहों के आगे चालीस योजन ऊँचे रत्नमय पीठों पर देव और विद्याधरों से पूजित देदीप्यमान रत्नमय जिनेंद्र प्रतिमाओं से संयुक्त, तीन मेखलाओं से वेष्टित चौंसठ योजन लम्बे, चौंसठ योजन चौड़े और चौंसठ योजन ऊँचे, श्रेष्ठ स्वर्णमय चौबीस वेदियों से परिवेष्टित, अति उत्तम और अत्यन्त सुन्दर नव स्तूप हैं। गोपुरों के बाह्य भाग में तथा वीथियों (गलियों) की मध्यभूमि में अतिशय प्रभावान और घण्टा आदि से अलंकृत मानस्तम्भ हैं ॥५१-५४॥

अब चैत्यवृक्ष का वर्णन सात श्लोकों द्वारा करते हैं–

स्तूपानां पुरतोगत्वा हेमपीठं भवेन्महत्।
सहस्त्रयोजनायाम विस्तारं मणिभास्वरम् ॥५५॥
युतं द्वादशवेदीभिर्वरंतोरणमण्डितम्।
पीठस्योपरिसन्ति प्रोन्नताः षोडशयोजनैः ॥५६॥
अष्टयोजनविस्तीर्णाश्चैत्यवृक्षाः शुभप्रदाः।
रम्याः सिद्धार्थनामानो महान्तः सुरपूजिताः ॥५७॥
एकं लक्षं च चत्वारिंशत्सहस्त्रं तथा शतम्।
विंशत्यग्रमिमासंख्याविज्ञेया चैत्यशाखिनाम् ॥५८॥
द्रुमाणां भूतलाद्गत्वा चत्त्वारियोजनानि च।
चतुर्दिक्षुचतस्त्रः स्युर्द्विषट्कयोजनायताः ॥५९॥
योजनैकसुविस्तीर्णा महाशाखाः क्षयातिगाः।
मूलेषु चैत्यवृक्षाणां चतुर्दिक्षु मनोहराः ॥६०॥
जिनेन्द्रप्रतिमाः शाश्वताः पल्यङ्कासन स्थिताः।
भवेयुर्मणिदीप्ताङ्ग प्रातिहार्यश्रियार्चिताः ॥६१॥

अर्थ–स्तूपों के आगे (पूर्व दिशा की ओर) जाकर एक हजार योजन लम्बा और एक हजार योजन चौड़ा, मणियों की प्रभा से दीप्तवान, बारह वेदियों से वेष्टित तथा उत्तम तोरणों से मण्डित एक स्वर्णमय पीठ है। उस पीठ के ऊपर सोलह योजन ऊँचा और आठ योजन चौड़ा अति शोभायुक्त, रमणीक और देवों से पूजित एक सिद्धार्थ नाम का महान् चैत्यवृक्ष है। उस चैत्यवृक्ष के परिवार वृक्षों की संख्या एक लाख चालीस हजार एक सौ बीस जानना चाहिए ॥५५-५८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

चैत्यवृक्ष के भूमितल भाग से चार योजन ऊपर जाकर बारह योजन लम्बी और एक योजन चौड़ी प्रमाण वाली तथा विनाश से रहित चार महाशाखाएँ चारों दिशाओं में फैली हैं। चैत्यवृक्षों के मूलभाग की चारों दिशाओं में पल्यंकासन (पद्मासन) से स्थित एक एक जिनेन्द्र प्रतिमाएँ हैं। जो अपनी सुन्दरता से मन को हरण करने वाली, उत्पत्ति विनाश से रहित, मणियों की दीप्ति से भास्वर शरीर वाली तथा अष्ट प्रातिहार्य आदि लक्ष्मी से सेव्यमान हैं ॥५९-६१॥

अब ध्वजापीठ, स्तम्भ, ध्वजासमूह और वापियों का वर्णन पाँच श्लोकों के माध्यम से करते हैं–

ततश्चैत्यद्रुमेभ्योऽनुगत्वा प्राग्दिग्महीतले।
महत्पीठं ध्वजौघानां स्याद्वेदीद्वादशाङ्कितम् ॥६२॥
पीठस्योपरिचोत्तुङ्गाः सन्ति षोडशयोजनैः।
क्रोशव्यासामहास्तम्भाः सद्वैडूर्यमयाः शुभाः ॥६३॥
स्तम्भानां शिखरेषुस्युर्नानावर्णान्विता ध्वजाः।
छत्रत्रयांकिता मूर्ध्निदिव्यरूपाश्च्युतोपमाः ॥६४॥
ध्वजानांपुरतो वाप्यो दीर्घाः शतैकयोजनैः।
पञ्चाशद्विस्तृताः स्युश्चावगाहा दशयोजनैः ॥६५॥
युताः काञ्चनवेदीभिर्मणि तोरणभूषिताः।
निर्जन्तुजलसम्पूर्णाः शाश्वताः कमलाश्रिताः ॥६६॥

अर्थ–उस चैत्यवृक्ष से पुनः पूर्व दिशा में जाकर पृथ्वी पर बारह वेदियों से संयुक्त ध्वजा समूहों का एक विशाल पीठ है। उस पीठ के शिखर पर सोलह योजन ऊँचे और एक कोस विस्तार से युक्त वैडूर्यमणिमय अति शोभायुक्त महास्तम्भ (खम्भे) हैं। इन खम्भों के शिखरों पर विविध वर्णों से समन्वित, शिखर पर तीन छत्रों से सुशोभित, दिव्य रूप से सम्पन्न और अनुपम ध्वजाएँ हैं। उन ध्वजाओं के आगे सौ योजन लम्बी, पचास योजन चौड़ी और दश योजन गहरी, स्वर्ण वेदियों से वेष्टित, मणिमय तोरणों से विभूषित, निर्जन्तु अर्थात् स्वच्छ जल से परिपूर्ण और कमलों से व्याप्त, शाश्वत विद्यमान रहने वालीं वापियाँ हैं ॥६२-६६॥

अब क्रीड़ा प्रासादों का और तोरणों के विस्तार आदि का वर्णन करते हैं–

वापीनां प्राक्तने भागे ह्युत्तरे दक्षिणे शुभाः।
स्वर्णरत्नमयाः सन्ति प्रासादाः कृत्रिमातिगाः ॥६७॥
पञ्चाशद्योजनोत्सेधाः पञ्चविंशति योजनैः।
आयामव्याससंयुक्ता रत्नवेद्याद्यलंकृताः ॥६८॥
एषु क्रीडागृहेषूच्चैः देवाः क्रीडां प्रकुर्वते।
तेभ्यः पूर्वदिशांगत्वा विचित्रं रत्नतोरणम् ॥६९॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

स्याद्योजनशतार्धोच्चं पञ्चविंशति विस्तरम्।
मुक्तादामांकितं रम्यं वरघण्टाचयान्वितम् ॥७०॥

अर्थ—उन वापियों के पूर्व, उत्तर और दक्षिण भागों में अत्यन्त शुभ, स्वर्ण एवं रत्नमय तथा अकृत्रिम क्रीड़ा प्रासाद हैं। वे क्रीड़ागृह पचास योजन ऊँचे, पच्चीस योजन लम्बे एवं चौड़े और रत्नों की वेदी आदि से अलंकृत हैं। उन क्रीड़ागृहों में देवगण नाना प्रकार की क्रीड़ाएँ करते हैं। उन क्रीड़ागृहों से आगे पूर्व दिशा में जाकर रत्नों से व्याप्त विचित्र तोरण है, जो पचास योजन ऊँचा, इससे आधा अर्थात् पच्चीस योजन चौड़ा, मुक्ता माला से संयुक्त, रमणीय एवं उत्तम घण्टा समूह से समन्वित है ॥६७-७०॥

अब प्रासादों, ध्वजाओं और वनखण्डों का निर्देश करते हैं—

ततोऽस्यतोरणस्यैव पार्श्वयोः स्तो द्वयोः परौ।
द्वौ द्वौ सद्रत्नगेहौ च शतैकयोजनोन्नतौ ॥७१॥
ततः परं विचित्राः स्युर्ध्वजव्राताः समुन्नताः।
नानावर्णामहान्तोऽशीतिसहस्त्रप्रमाणकाः ॥७२॥
शततोरण संयुक्ता वनवेदी प्रवेष्टिताः।
ततः परे महीभागे वनखण्डं स्फुरत्प्रभम् ॥७३॥
वनवेदीयुतं रत्नतोरणाढ्यं मनोहरम्।
विचित्रमणिपीठाग्रस्थितद्रुमौघशोभितम् ॥७४॥
विद्रुमोत्थमहाशाखं हेमपुष्पौघशोभितम् ।
वैडूर्यफलपूर्णमरकताश्मसुपत्रकम् ॥७५॥
चम्पकाशोकवृक्षाम्रसप्तपर्णद्रुमैश्चितम् ।
कल्पपादपसंकीर्णंशाश्वतं स्यात् ख शर्मदम् ॥७६॥

अर्थ—इसके आगे तोरण के दोनों पार्श्वभागों में सौ सौ योजन ऊँचे और उत्तम रत्नों के दो-दो भवन हैं। इसके आगे विविध वर्ण के, समुन्नत और महान् एक हजार अस्सी (१०८ × १० = १०८०) संख्या प्रमाण विचित्र ध्वजाओं के समूह हैं, जो सौ तोरणों से संयुक्त और उत्तम वनवेदी से परिवेष्टित हैं। इसके आगे पृथ्वीतल पर देदीप्यमान प्रभा से भासुर वनखण्ड हैं, जो वनवेदी से युत, रत्नतोरणों से संयुक्त, मन को हरण करने वाले, नाना प्रकार की मणि पीठों के अग्रभाग पर स्थित वृक्ष समूहों से सुशोभित, विद्रुम अर्थात् प्रवालमय शाखाओं की शोभा से युक्त, स्वर्ण के पुष्प समूह से समृद्ध, वैडूर्यमय फलों से व्याप्त, मरकत मणि के पत्थरमय उत्तम पत्रों से संकीर्ण, चम्पक, अशोकवृक्ष, आम्र एवं सप्तपर्ण के वृक्षों द्वारा गहन, अन्य कल्पवृक्षों से परिपूर्ण, अनाद्यनिधन और इन्द्रियों को सुख देने वाले हैं ॥७१-७६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब मेरु के जिन भवनों की अवस्थिति और अन्य वनों आदि में स्थित जिनालयों के विस्तार आदि का वर्णन पाँच श्लोकों द्वारा करते हैं–

तेषां कल्पद्रुमाणां सन्मूले स्युजिनमूर्तयः।
चतुर्दिक्षुमहादीप्ताः प्रातिहार्याद्यलंकृताः ॥७७॥
इत्यादि रचनाभिश्च यथा यं श्रीजिनालयः।
वर्णितः पूर्वदिग्भागे मेरोराद्यवनेऽखिलः ॥७८॥
तथापरे जिनेन्द्राणां मेरोर्दिक्त्रिषु संस्थिताः।
समानवर्णनोपेताज्ञेयाश्चैत्यालयास्त्रयः ॥७९॥
इत्येवं वर्णनैः सर्वे जिनालया अकृत्रिमाः।
समानाः सदृशाज्ञेयाः स्थितालोकत्रयेपरे ॥८०॥
किन्त्वन्येषां जिनेन्द्रालयानां स्याद्वर्णनापृथक्।
मध्यमानां जघन्यानामायामोत्सेधविस्तरैः ॥८१॥

अर्थ–उन कल्पवृक्षों के मूलभाग की चारों दिशाओं में महादीप्तवान एवं प्रातिहार्य आदि से अलंकृत जिनेन्द्रों की प्रतिमाएँ हैं। जिस प्रकार सुदर्शन मेरु के प्रथम-भद्रशाल वन के पूर्व भाग में स्थित श्री जिनमन्दिर का अनेक प्रकार की रचना आदि के द्वारा सम्पूर्ण वर्णन किया है, उसी प्रकार सुदर्शन मेरु सम्बन्धी भद्रशाल वन में तीनों दिशाओं में स्थित तीन चैत्यालयों का वर्णन जानना चाहिए। इस प्रकार तीन लोक में स्थित अन्य समस्त अकृत्रिम जिनालयों की रचना आदि का समस्त वर्णन उपर्युक्त वर्णन के सदृश ही जानना चाहिए परन्तु अन्य जिनालयों अर्थात् मध्यम जिनालयों और जघन्य जिनालयों के आयाम, उत्सेध और विस्तार आदि का वर्णन पृथक्-पृथक् है ॥७७-८१॥

अब देवों, विद्याधरों एवं अन्य भव्यों द्वारा की जाने वाली भक्ति विशेष का निदर्शन करते हैं–

एषु श्रीजिनगेहेषु कुर्वन्त्युच्चैर्महामहम्।
जिनेन्द्र दिव्यमूर्तीनामागत्य भक्तिनिर्भराः ॥८२॥
चतुर्णिकायदेवेशा देवदेव्यादिभिः समम्।
प्रत्यहं स्वर्गलोकोत्थैर्महार्चा द्रव्य भूरिभिः ॥८३॥
खगेशाः खचरीभिश्च सहाभ्येत्यात्र पूजनम्।
अर्हतां विविधं कुर्युर्भक्त्या दिव्याष्टधार्चनैः ॥८४॥
चारणा ऋषयो नित्यं जिनेन्द्रगुणरञ्जिताः।
अत्रैत्य जिनचैत्यादीन् प्रणमन्ति स्तुवन्ति च ॥८५॥
अन्येऽपि बहवो भव्या प्राप्तविद्या वृषोत्सुकाः।
जिनार्चा अर्चयन्त्यत्र भक्त्या नरोत्तमाः सदा ॥८६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

एषु चाप्सरसो नित्यं कुर्वन्ति नृत्यमूर्जितम्।
जिनेशगणभृद्दिव्य चरित्रैरीक्षणप्रियम् ॥८७॥
दिव्यकण्ठाश्च किन्नर्यो गन्धर्वा वीणया समम्।
गायन्ति सारगीतानि तीर्थेश गुणजान्यपि ॥८८॥
इत्युत्सवशतैः पूर्णा विश्व चैत्यालया इमे।
संक्षेपेण मया प्रोक्ता महापुण्य निबन्धनाः ॥८९॥
यतोऽमीषां पराः शोभा महतीरचनाभुवि॥
मुक्त्वा गणाग्रिमं कोऽत्र बुधो वर्णयितुं क्षमः॥९०॥

अर्थ—अपूर्व भक्तिरस से भरे हुए चारों निकाय के इन्द्र उत्कृष्ट विभूति, देव देवियों एवं स्वर्ग लोक में उत्पन्न हुई महापूजा के योग्य अपरिमित द्रव्य सामग्री के साथ आकर उपर्युक्त वर्णित श्री जिनालयों में स्थित जिनेन्द्र देव की दिव्य मूर्तियों की प्रतिदिन महामह पूजन करते हैं। विद्याधरों के अधिपति भी अन्य विद्याधर एवं विद्याधरियों के साथ यहाँ (अकृत्रिम जिन चैत्यालयों में)आकर भक्तिपूर्वक अष्ट प्रकार की दिव्य सामग्री के द्वारा अर्हन्त भगवान् की नाना प्रकार से पूजन करते हैं। जिनेन्द्र के गुणों में अनुरञ्जित है मन जिनका, ऐसे चारणऋद्धिधारी मुनिराज नित्य ही मेरु आदि पर आकर जिनेन्द्र प्रतिमाओं को प्रणाम करते हैं और स्तुति करते हैं। अन्य भी और बहुत से विद्या प्राप्त, धर्म उत्सुक एवं मनुष्यों में श्रेष्ठ भव्य जीव भक्ति से प्रेरित होकर यहाँ नित्य ही जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करते हैं और वहाँ पर अप्सराएँ नित्य ही जिनेन्द्र भगवान् एवं गणधर देवों के सर्वोत्तम चारित्र के अभिनय द्वारा, देखने में अत्यन्त प्रिय और श्रेष्ठ नृत्य करती हैं। दिव्य कण्ठ वालीं किन्नरियाँ और गन्धर्व वीणा द्वारा जिनेश तीर्थंकरों के गुणों से उत्पन्न हुए गीत तथा और भी सारगर्भित उत्तम गीत गाते हैं। इस प्रकार ये समस्त अकृत्रिम चैत्यालय सहस्त्रों महोत्सवों से व्याप्त रहते हैं। महा पुण्य बन्ध के हेतुभूत इन चैत्यालयों का वर्णन मेरे (आचार्य) द्वारा संक्षिप्त रूप से किया गया है, क्योंकि लोक में उत्कृष्ट शोभा और महान रचनाओं से व्याप्त इन अकृत्रिम चैत्यालयों का सम्पूर्ण वर्णन करने के लिये तीर्थंकर को छोड़कर अन्य कौन विद्वान् समर्थ है? अर्थात् कोई नहीं है ॥८२-९०॥

अब मध्यम जिनालयों एवं उनके द्वारों का प्रमाण कहते हैं—

पञ्चाशद्योजनायामाः पञ्चविंशति विस्तृताः।
सार्धसप्ताधिकैस्त्रिंशद्योजनैः प्रोन्नताः शुभाः ॥९१॥
द्विगव्यूत्यवगाहाः स्युर्मध्यमाः श्रीजिनालया।
अमीषां मुख्य सुद्वारमुत्तुङ्गमष्टयोजनैः ॥९२॥
चतुर्योजनविस्तीर्णं चान्यद् द्वारद्वयं भवेत्।
चतुर्भिर्योजनैस्तुङ्गं योजनद्वयविस्तरम् ॥९३॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अर्थ—मध्यम अकृत्रिम जिनालय पचास योजन लम्बे, पच्चीस योजन चौड़े, साढ़े सैंतीस योजन ऊँचे और अर्ध योजन नींव से युक्त होते हैं। इनके उत्तम प्रधान द्वार की ऊँचाई आठ योजन और चौड़ाई चार योजन प्रमाण है, तथा अन्य दो द्वारों की ऊँचाई चार योजन और चौड़ाई दो योजन प्रमाण होती है ॥९१-९३॥

अब जघन्य जिनालयों एवं उनके द्वारों का प्रमाण बतलाते हैं—

पञ्चविंशति संख्यानैर्योजनैरायताः परे।
क्रोशद्वयाधिकद्वादश योजन सुविस्तृताः ॥९४॥
त्रिकक्रोशाधिकाष्टादशयोजन समुन्नताः।
द्वयक्रोशावगाहाः स्युर्जघन्याः श्रीजिनालयाः॥९५॥
एतेषामग्रिमं द्वारं स्याच्चतुर्योजनोन्नतम्।
योजनद्वय विस्तीर्णं लघुद्वारद्वयं परम्॥९६॥
द्वियोजनोच्छ्रितं च स्यादेकयोजन विस्तृतम्।
अपरा वर्णना प्रोक्ता समाना श्रीजिनागमे ॥९७॥

अर्थ—जघन्य अकृत्रिम जिनालय पच्चीस योजन लम्बे, साढ़े बारह योजन चौड़े, १८$\frac{३}{४}$ योजन ऊँचे और अर्ध योजन नींव से युक्त होते हैं। इन चैत्यालयों के प्रधान द्वार चार योजन ऊँचे और दो योजन चौड़े होते हैं तथा दोनों लघु द्वार दो योजन ऊँचे और एक योजन चौड़े होते हैं। जिनागम में इन तीनों प्रकार के अकृत्रिम जिनालयों का अवशेष वर्णन समान ही कहा गया ॥९४-९७॥

अब तीनों प्रकार के जिनालयों की अवस्थिति का निर्धारण करते हैं—

भद्रशालेषु सर्वेषु मेरूणां नन्दनेषु च।
वनेषु स्वर्विमानेषु नन्दीश्वरेषु सन्ति ये॥९८॥
उत्कृष्टायामविस्तारोत्सेधैर्युक्ता जिनालयाः।
उत्कृष्टास्ते जिनैः प्रोक्ता सर्वे पूज्या नरामरैः ॥९९॥
मेरुसौमनसोद्यानेषु विश्वेषु कुलाद्रिषु।
वक्षारगजदन्तेषु चेष्वाकारनगेष्वपि ॥१००॥
कुण्डले रुचकेशैले मानुषोत्तरनामनि।
ये स्युश्चैत्यालयास्तेऽत्र दीर्घाद्यैर्मध्यमा मताः ॥१०१॥
ये पाण्डुकवने ते स्युर्जघन्याः श्रीजिनालयाः।
सर्वेषां विजयार्धानां जम्बूशाल्मलिशाखिनाम् ॥१०२॥
क्रोशायामाः परे क्रोशार्धव्यासाः प्रोन्नताः शुभाः।
क्रोशपादत्रयैर्ज्ञेया विश्वे श्रीजिनमन्दिराः ॥१०३॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अर्थ—जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कहे हुए और मनुष्यों एवं देवों द्वारा पूज्य उत्कृष्ट जिनालय पंचमेरु सम्बन्धी भद्रशाल वनों और नन्दन वनों में तथा नन्दीश्वर द्वीप और वैमानिक देवों के विमानों में हैं। इनका आयाम, विस्तार एवं ऊँचाई उत्कृष्ट ही कही गई है। पंचमेरु सम्बन्धी सौमनस वनों में समस्त कुलाचलों पर, वक्षार पर्वतों पर, गजदन्त पर्वतों पर, इष्वाकार पर्वतों पर, कुण्डलगिरि, रुचकगिरि और मानुषोत्तर पर्वतों पर जो जिनालय हैं, उनकी दीर्घता आदि का प्रमाण मध्यम माना गया है। पंचमेरु सम्बन्धी पाण्डुक वनों में जो जिनालय अवस्थित हैं, उनका व्यासादिक जघन्य प्रमाण वाला है। समस्त विजयार्धों, जम्बूवृक्षों एवं शाल्मलि वृक्षों पर स्थित जिनालय एक कोस लम्बे, अर्ध कोस चौड़े और पौन कोस ऊँचे हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥९८-१०३॥

अब भवनत्रिक सम्बन्धी एवं अन्य जिनालयों के साथ अष्ट प्रातिहार्यों का कथन करते हैं—

भावनव्यन्तरज्योतिष्क विमानेषु सन्ति ये।
चैत्यालयाश्च ते जम्बूवृक्ष चेत्यालयैः समाः ॥१०४॥
अन्येषु वन सौधाद्रिपुरादिषु सुधाभुजाम्।
भवन्ति ये जिनागारा बहवो विविधाश्च ते ॥१०५॥
आयामविस्तरोत्सेधैर्बुधैर्ज्ञेया वरागमे।
यतोऽत्र सन्ति सर्वत्र जिनागाराजगत्त्रये ॥१०६॥
भृङ्गारकलशादर्श व्यञ्जनध्वजचामराः।
सुप्रतिष्ठातपत्राश्च मङ्गलद्रव्यसम्पदा ॥१०७॥
प्रत्येकं हि पृथग्भूता अष्टोत्तरशतप्रमाः।
एता भवन्ति सर्वेषु जिनचैत्यालयेष्वपि ॥१०८॥

अर्थ—भवनवासी, व्यन्तरवासी और ज्योतिष्क देवों के विमानों अर्थात् भवनों में जो चैत्यालय हैं, उनका प्रमाण जम्बूवृक्ष स्थित चैत्यालयों के प्रमाण सदृश ही है। अन्य वन, प्रासाद और नगर आदि में स्थित देवों के आवास सम्बन्धी जिनालय बहुत और नाना प्रकार के हैं। इनका आयाम, विस्तार एवं उत्सेध आदि भी जिनागम में अनेक प्रकार का कहा है, जो विद्वानों के द्वारा जानने योग्य है। तीन लोक में सर्वत्र जितने भी अकृत्रिम जिन मन्दिर हैं। उन समस्त जिनालयों में भृङ्गार, कलश, दर्पण, बीजना, ध्वजा, चामर, ठोना और छत्र ये अष्ट द्रव्यरूप सम्पदा पृथक्-पृथक् एक सौ आठ-एक सौ आठ प्रमाण होते हैं। अर्थात् एक-एक जाति के उपकरण एक सौ आठ-एक सौ आठ (१०८×८=८६४) होते हैं ॥१०४-१०८॥

अब लोकस्थ समस्त अकृत्रिम चैत्यालयों को (आचार्य) नमस्कार करते हैं—

ये त्रैलोक्ये स्थिताः श्रीजिनवरनिलया मेरुनन्दीश्वरेषु,
चेष्वाकारेभदन्तेषु वरकुलनगेष्वेवरूप्याचलेषु।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

मान्वादौषोत्तरे कुण्डलगिरिरुचकेजम्बुवृक्षेतरेषु,
वक्षारेष्वेव सर्वेष्वपि शिवगतये स्तौमि तांस्तज्जिनार्चाः ॥१०९॥

अर्थ—जो तीन लोक में स्थित अर्थात् विमानवासी, भवनवासी, व्यन्तरवासी एवं ज्योतिष्क देवों के स्थानों पर स्थित तथा पंचमेरु सम्बन्धी-भद्रशाल आदि वनों के ८०, चार इक्ष्वाकारों के ४, बीस गजदन्तों के २०, तीस कुलाचल पर्वतों के ३०, एक सौ सत्तर विजयार्ध पर्वतों के १७०, एक मानुषोत्तर के ४, दश जम्बू एवं शाल्मलि वृक्षों के दश तथा अस्सी वक्षार पर्वतों के ८०, नरलोक सम्बन्धी और नन्दीश्वर द्वीप के ५२, कुण्डलगिरि के ४ और रुचकगिरि के ४, इस प्रकार मध्यलोक सम्बन्धी ४५८ जिनालय एवं उनमें स्थित जिन प्रतिमाएँ हैं, उन सबकी मैं मोक्ष प्राप्ति के लिये स्तुति करता हूँ ॥१०९॥

अधिकारान्त मङ्गलाचरण—

त्रिभुवनपतिपूज्यांस्तीर्थनाथांश्च सिद्धान्,
त्रिभुवनशिखरस्थान् पञ्चधाचारदक्षान्।
मुनिगणपतिसूरीन् पाठकान् विश्वसाधून्,
ह्यसमगुणसमुद्रान्नौम्यहं तद्गुणाप्त्यै ॥११०॥

इतिश्री सिद्धान्तसारदीपकम् ग्रन्थे भट्टारकश्रीसकलकीर्तिविरचिते सुदर्शनमेरुभद्रशालवनजिन-चैत्यालयवर्णनोनाम षष्ठोऽधिकारः।

अर्थ—त्रिभुवनपति अर्थात् शतेन्द्र पूज्य अर्हन्त परमेष्ठियों की, त्रैलोक्य शिखर पर स्थित सिद्ध परमेष्ठियों को, पञ्चाचार पालन में दक्ष ऐसे मुनिसमूह के अधिपति आचार्य परमेष्ठियों को और अनुपम गुणों के समुद्र समस्त उपाध्याय एवं साधु परमेष्ठियों को मैं उनके गुणों की प्राप्ति के लिये नमस्कार करता हूँ ॥११०॥

इस प्रकार भट्टारक सकलकीर्ति विरचित सिद्धान्तसार दीपक नाम महाग्रन्थ में सुदर्शनमेरु, भद्रशाल वन एवं जिनचैत्यालयों का वर्णन करने वाला षष्ठ अधिकार समाप्त हुआ॥

❑ ❑ ❑

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सप्तम अधिकार

देवकुरु, उत्तरकुरु, कच्छादेश तथा चक्रवर्ती की दिग्विजय एवं विभूति वर्णन

मंगलाचरण

जिनालयान् जिनार्चाश्च जिनेन्द्रान् जिनलिङ्गिनः।
जिननिर्वाणभूम्यादीन् वन्दे जिनागमध्वनीन् ॥१॥

अर्थ—जिनमन्दिरों, जिनप्रतिमाओं, जिनेन्द्र देवों, जिन साधुओं, जिन निर्वाणभूमि आदिकों को तथा जिनागम को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१॥

अब गजदन्तों का अवस्थान एवं वर्ण कहते हैं—

आग्नेयदिशिमेरोः स्यान्महान्सौमनसाह्वयः।
गजदन्तश्च रूपाभः सप्तकूटाग्र मण्डितः ॥२॥
नैऋत्यादिशि तस्यैव विद्युत्प्रभाभिधो भवेत्।
गजदन्तः सुवर्णाभो नवकूटाङ्कितोऽद्भुतः ॥३॥
ऐशान्यां दिशिसन्मेरोर्गजदन्तोऽस्ति माल्यवान्।
वैडूर्यरत्नदीप्ताङ्गो नवकूटान्वितः शुभः ॥४॥
वायव्यां दिशि रम्यः स्याद्गन्धमादन संज्ञकः।
सप्तकूटाङ्कितो मूर्ध्नि शातकुम्भप्रभोऽचलः ॥५॥

अर्थ—सुदर्शन मेरु की आग्नेय दिशा में सात कूटों से मण्डित रजतमय महासौमनस नाम का गजदन्त है। नैऋत्य दिशा में नवकूटों से अलंकृत अद्भुत शोभा युक्त स्वर्णमय विद्युत्प्रभ नाम का गजदन्त है। ईशान दिशा में नवकूटों से समन्वित, वैडूर्यरत्नों की दीप्ति से युक्त उत्तम माल्यन् गजदन्त है तथा वायव्य दिशा में शिखर पर सात कूटों से संयुक्त, स्वर्णमय एवं रमणीक गन्धमादन नाम का गजदन्त पर्वत है ॥२-५॥

अब गजदन्तों के विस्तार आदि का निर्धारण करते हैं—

तेषां त्रिंशत्सहस्राणि नवाधिकशतद्वयम्।
योजनानां कलाषट्प्रमाणैक योजनस्य च ॥६॥
भागानां सकलैकोन विंशति प्रमितात्मनाम्।
आयामो गजदन्तानां व्यासः पञ्चशतानि च ॥७॥
नीलस्य निषधस्यान्तेऽमीषां चतुः शतान्यपि।
योजनानां समुच्छ्रायो गजदन्तमहीभृताम् ॥८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

क्रमवृद्ध्या समीपे[१] ते मेरोः पञ्चशतानि च।
निजोन्नतेश्चतुर्थांशः सर्वत्रास्त्यवगाहता ॥९॥

अर्थ—इन चारों ही गजदन्तों की लम्बाई तीस हजार दो सौ नौ योजन और एक योजन के उन्नीस भागों में से छह भाग (३०२०९ $\frac{६}{१९}$ योजन) प्रमाण है तथा इनका व्यास पाँच सौ योजन प्रमाण है। इन गजदन्त पर्वतों की ऊँचाई नील और निषध पर्वतों के समीप चार सौ योजन प्रमाण है। आगे वह क्रम से वृद्धिंगत होती हुई मेरु के समीप में पाँच सौ योजन प्रमाण हो जाती है। इन पर्वतों का अवगाह (नींव) सर्वत्र अपनी ऊँचाई का चतुर्थांश अर्थात् नील-निषध के पास सौ योजन और मेरु के समीप सवा सौ योजन प्रमाण है ॥६-९॥

अब गजदन्तों पर स्थित कूटों के नाम कहते हैं—

सिद्धि सौमनसं देवकुरुकूटं च मङ्गलम्।
विमलं काञ्चनं कूटं विशिष्टाख्य मिमानि च ॥१०॥
स्युरत्रसप्तकूटानि सौमनसस्य मस्तके।
सिद्धं विद्युत्प्रभाभिख्यं स्याद्देवकुरु संज्ञकम् ॥११॥
पद्माख्यं स्वस्तिकं कूटं तपनं च शितोज्वलम्।
सीतोदानामकं कूटं हरिकूटमिमान्यपि ॥१२॥
विद्युत्प्रभगिरेः सन्ति नवकूटानि मूर्धनि।
सिद्धाख्यं माल्यवत्कूटं तथोत्तरकुरूक्तिकम् ॥१३॥
कच्छाख्यं सागराभिख्यं रजतं पूर्णभद्रकम्।
सीताख्यं हरिकूटं नवेमानि माल्यवद्गिरौ ॥१४॥
सिद्धायतननामाढ्यं गन्धमादन संज्ञकम्।
तथोत्तरकुरुप्राख्यं गन्धमालिनिकाभिधम् ॥१५॥
स्फटिकं लोहितं कूटमानन्दाख्यममून्यपि।
भवन्ति रत्नदीप्तानि गन्धमादन मस्तके ॥१६॥

अर्थ—सिद्ध, सौमनस, देवकुरु, मंगल, विमल, काञ्चन और विशिष्ट नाम के ये सात कूट महासौमनस के शिखर पर अवस्थित हैं। सिद्ध, विद्युत्प्रभ, देवकुरु, पद्म, स्वस्तिक, तपन, शितोज्वल सीतोदा और हरि नाम वाले ये नव कूट विद्युत्प्रभ के ऊपर स्थित हैं। सिद्ध, माल्यवान्, उत्तरकुरु, कच्छ, सागर, रजत, पूर्णभद्र, सीता और हरि नाम के नवकूट माल्यवान् पर्वत के ऊपर हैं तथा सिद्धायतन, गन्धमादन, उत्तरकुरु, गन्धमालिनी, स्फटिक, लोहित और आनन्दकूट नाम के ये रत्नों की दीप्ति से भास्वर सात कूट गन्धवान् गजदन्त के मस्तक पर अवस्थित हैं ॥१०-१६॥

---

१. समीपान्ते अ. ज. न.

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब कूटों के स्वामी एवं उदय कहते हैं–

सिद्धकूटोऽस्ति सर्वत्र प्रोन्नते मेरु सन्निधौ।
प्रागुक्तवर्णनोपेतो जिनचैत्यालयो महान् ॥१७॥
कुलाचलसमीपस्थ कूटयोश्च द्वयोर्द्वयोः।
वसतो दिग्वधूसंज्ञे द्वे द्वे देव्याविमे शुभे ॥१८॥
चतुर्णां गजदन्तानां रत्नसौधे निजे निजे।
मित्रादेवी सुमित्राख्या वारिषेणाचलाह्वयाः ॥१९॥
भोगाभोगवतीदेवी सुभोगाभोगमालिनी।
इमान्यष्टसु नामान्यष्टदिग्वधूषु योषिताम् ॥२०॥
शेष मध्यस्थकूटानां वेश्मसु व्यन्तरामराः।
स्वस्वकूटसमैः स्युर्नामभियुक्ताः प्रियान्विताः ॥२१॥
स्वस्वाद्रीणां चतुर्थांशः कूटानामुदयः स्मृतः।
आद्यन्तानां तु शेषाणां ह्रासो वृद्धिः पृथक् पृथक् ॥२२॥

अर्थ–चारों गजदन्तों पर मेरु के समीप जिनेन्द्रदेव सम्बन्धी सिद्धायतन कूट हैं, जो एक सौ पच्चीस योजन ऊँचे हैं। इन चैत्यालयों का समस्त वर्णन पूर्वोक्त जिन चैत्यालय के वर्णन सदृश ही है। चारों गजदन्तों पर कुलाचलों के समीप जो दो दो कूट हैं, उनमें दिग्वधू नाम की उत्तम दो-दो देवियाँ निवास करतीं हैं। चारों गजदन्तों के अपने-अपने रत्नमय महलों में अर्थात् महासौमनस गजदन्त के विमल और काञ्चन कूटों में मित्रा और सुमित्रा देवी, विद्युत्प्रभ गजदन्त के स्वस्तिक और तपन कूटों पर क्रमशः वारिषेणा और अचला, माल्यवान् के सागर एवं रजतकूटों पर क्रमशः भोगा और भोगवती तथा गन्धवान् गजदन्त के स्फटिक और लोहित कूटों पर क्रमशः सुभोगा और भोगमालिनी नाम की (ये आठ) व्यन्तर देवियाँ निवास करतीं हैं। मध्य में स्थित अवशेष कूटों के गृहों में अपने-अपने कूटों के नामधारी और अपनी-अपनी देवांगनाओं से युक्त व्यन्तरदेव रहते हैं। कूटों की ऊँचाई अपने-अपने गजदन्तों की ऊँचाई का चतुर्थ भाग माना गया है। आदि और अन्तिम कूट को छोड़कर शेष कूटों के ह्रास एवं वृद्धि का प्रमाण पृथक्-पृथक् है ॥१७-२२॥

विशेषार्थ–महासौमनस और माल्यवान् गजदन्तों पर नौ-नौ तथा विद्युत्प्रभ और गन्धवान् गजदन्तों पर सात-सात कूट अवस्थित हैं। मेरु के समीपस्थ कूटों की ऊँचाई १२५ योजन और कुलाचलों के समीपस्थ कूटों की ऊँचाई १०० योजन है। मध्य के कूटों की ऊँचाई का प्रमाण निकालने के लिए हानि चय का प्रमाण निकालना चाहिए। यथा-अंतिम कूट की ऊँचाई के प्रमाण में से प्रथम कूट की ऊँचाई घटा कर अवशेष को एक कम पद से भाजित करने पर हानिचय का प्रमाण प्राप्त होता है और इसको एक कम इष्ट गच्छ से गुणित कर मुख में जोड़ने से इष्ट कूटों की ऊँचाई प्राप्त हो जाती

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

है। (त्रि० सा० गा० ७४६) जैसे–१२५–१००=२५ ÷ (एक कम पद अर्थात् ९–१=) ८ = ३ $\frac{१}{८}$ योजन महासौमनस और माल्यवान् गजदन्तों पर स्थित कूटों का हानि–वृद्धिचय है और १२५–१००=२५÷ (७–१)=६=४ $\frac{१}{२}$ विद्युत्प्रभ और गन्धवान् के कूटों का हानि–वृद्धि चय है। चय को इष्ट गच्छ से गुणित कर मुख में जोड़ते जाने से प्रत्येक कूटों की ऊँचाई प्राप्त हो जाती है।

अथ कूटानां प्रत्येकमुत्सेधो व्याख्यायते–

सौमनसस्य गन्धमादनस्य च गिरेः कुल पर्वतपार्श्वे प्रथमे लघुकूटे उन्नतिर्योजनानां शतं स्यात्। द्वितीये च चतुरुत्तरं शतं योजनस्य षड्भागानामेको भागः। तृतीये अष्टोत्तरशतं योजनस्यतृतीयोभागः। चतुर्थे द्वादशोत्तर शतं द्वौ क्रौशौ च। पंचमे षोडशाग्रशतयोजन त्रिभागानां द्वौ भागौ। षष्ठे विंशत्यधिकशतं योजनषड्भागानां पञ्चभागाः। सप्तमे सर्वज्येष्ठकूटे मेरु समीपे उत्सेधः योजनानां पञ्चविंशत्यग्रशतं स्यात्। विद्युत्प्रभगिरेर्माल्यवतश्च कुलाचल निकटे आदिमे लघुकूटे उन्नतिर्योजनानां शतं भवेत्। द्वितीये कूटे च अर्धक्रोशाग्रत्रयोत्तरशतं। तृतीये क्रोशधिकषडुत्तरशतं। चतुर्थे सार्धक्रोशाग्रनवोत्तरशतं। पञ्चमे सार्धद्वादशोत्तरशतं। षष्ठे सार्धद्विक्रोशपञ्चदशाधिकशतं। सप्तमे त्रिकोशाग्राष्टादशाधिकशतं। अष्टमेसार्धत्रिकोशा–ग्रैकविंशत्यधिकशतं। नवमे सर्वबृहत्कूटे मेरुसन्निधौ योजनानामुत्सेधः पञ्च–विंशत्यग्रशतं स्यात्।

उपर्युक्त गद्यांश का समस्त अर्थ निम्नांकित तालिका में निहित किया गया है–

[प्रत्येक कूटों का पृथक्–पृथक् उत्सेध तालिका अगले पृष्ठ पर देखें।]

अब पूर्व-अपर भद्रशाल वनों की स्थिति, भद्रशाल वनों की वेदियों से गजदन्तों का अन्तर एवं उत्तम भोगभूमियों की अवस्थिति का वर्णन करते हैं–

मूर्ध्निवै गजदन्तानामुभयोः पार्श्वयोर्भुवि।
वेदिकातोरणैर्युक्तं रम्यं च शाश्वतं वनम् ॥२३॥
स्यात् पूर्वभद्रशालाख्यापराभद्रादिशालयोः।
अन्तरं वेदिकायाश्च गजदन्तमहीभृताम् ॥२४॥
शतपञ्चप्रमाणानि योजनानि पृथक् पृथक्।
निषधस्योत्तरे भागे गजदन्तद्वयावृतम् ॥२५॥
यच्चापाकारसत्क्षेत्रमुत्कृष्टभोगभूतलम् ।
तद्वैवकुरुनाम स्याद् विश्वकल्पद्रुमैश्चितम् ॥२६॥
नीलस्य दक्षिणे पार्श्वे गजदन्तद्विवेष्टितम्।
तादृशं भोगभूभागमन्योत्तर कुरूक्तिकम् ॥२७॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

प्रत्येक कूटों का पृथक्-पृथक् उत्सेध

महासौमनस ग. के कूटों की			विद्युत्प्रभ ग. के कूटों की			माल्यवान् ग. के कूटों की			गन्धवान् ग. के कूटों की		
क्रम	नाम	ऊँचाई (यो. में)	क्रम	नाम	ऊँचाई (यो. में)	क्रम	नाम	ऊँचाई (यो. में)	क्रम	नाम	ऊँचाई (यो. में)
१	विशिष्ट	१०० योजन	१	हरि	१०० योजन	१	सिद्ध	१२५ योजन	१	सिद्ध	१२५ योजन
२	कांचन	१०४ $\frac{१}{६}$ योजन	२	सीतोदा	१०३ $\frac{१}{८}$ योजन	२	माल्यवान्	१२१ $\frac{७}{८}$ योजन	२	गन्धमादन	१२० $\frac{५}{६}$ योजन
३	विमल	१०८ $\frac{१}{३}$ योजन	३	शीतोज्ज्वल	१०६ $\frac{१}{४}$ योजन	३	उत्तरकुरु	११८ $\frac{३}{४}$ योजन	३	उत्तरकुरु	११६ $\frac{२}{३}$ योजन
४	मंगल	११२ $\frac{१}{२}$ योजन	४	तपन	१०९ $\frac{३}{८}$ योजन	४	कच्छ	११५ $\frac{५}{८}$ योजन	४	गंधमालिनी	११२ $\frac{१}{२}$ योजन
५	देवकुरु	११६ $\frac{२}{३}$ योजन	५	स्वस्तिक	११२ $\frac{४}{८}$ योजन	५	सागर	११२ $\frac{१}{२}$ योजन	५	स्फटिक	१०८ $\frac{१}{३}$ योजन
६	सौमनस	१२० $\frac{५}{६}$ योजन	६	पद्म	११५ $\frac{५}{८}$ योजन	६	रजत	१०९ $\frac{३}{८}$ योजन	६	लोहित	१०४ $\frac{१}{६}$ योजन
७	सिद्ध	१२५ योजन	७	देवकुरु	११८ $\frac{३}{४}$ योजन	७	पूर्णभद्र	१०६ $\frac{१}{४}$ योजन	७	आनन्द	१०० योजन
			८	विद्युत्प्रभ	१२१ $\frac{७}{८}$ योजन	८	सीता	१०३ $\frac{१}{८}$ योजन			
			९	सिद्ध	१२५ योजन	९	हरि	१०० योजन			

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अर्थ—गजदन्तों के दोनों पार्श्वभागों की उपरिम भूमि पर वेदिका और तोरणों से संयुक्त पूर्व भद्रशाल एवं पश्चिम भद्रशाल नाम के रमणीक और शाश्वत वन हैं। इन पूर्व भद्रशाल और पश्चिम भद्रशाल वनों की (चारों) वेदिकाओं से, (चारों) गजदन्तों के (अन्तरंग भाग का) पृथक् पृथक् अंतर पाँच सौ, पाँच सौ योजन प्रमाण है। (क्योंकि गजदन्तों का व्यास ५०० योजन है) निषध पर्वत की उत्तर दिशा में विद्युत्प्रभ और महासौमनस इन दो गजदन्तों से वेष्टित धनुषाकार शुभ क्षेत्र है वही समस्त प्रकार के कल्पवृक्षों से युक्त देवकुरु नाम की उत्कृष्ट भोगभूमि है। इसी प्रकार नील पर्वत की दक्षिण दिशा में गन्धमादन और माल्यवान् इन दो गजदन्तों से वेष्टित उत्तरकुरु नाम की उत्कृष्ट भोगभूमि है ॥२३-२७॥

अब उत्कृष्ट भोगभूमियों के धनुःपृष्ठ का प्रमाण कहते हैं—

य एकत्रीकृतायामोऽनयोर्द्विगजदन्तयोः।
तद्धि देवकुरोश्चोत्तरकुरोर्धनुरुच्यते ॥२८॥

अर्थ—विद्युत्प्रभ और सौमनस गजदन्तों की लम्बाई जोड़ने से देवकुरु के और गन्धमादन एवं माल्यवान् गजदन्तों की लम्बाई जोड़ देने से उत्तर कुरु के धनुःपृष्ठ का प्रमाण प्राप्त होता है ॥२८॥

देवकुरूत्तरकुरुभोगभूम्योः प्रत्येकं धनुःपृष्ठं षष्ठिसहस्र चतुःशताष्टादशयोजनानि योजनैकोन-विंशतिभागानां द्वादशभागाः॥

अर्थ—देवकुरु उत्तमभोगभूमि के धनुःपृष्ठ का प्रमाण ६०४१८ $\frac{१२}{१९}$ योजन और उत्तरकुरु भोगभूमि के धनुःपृष्ठ का प्रमाण ६०४१८ $\frac{१२}{१९}$ योजन है।

अब देवकुरु उत्तरकुरु भोगभूमि की जीवा का प्रमाण कहते हैं—

भद्रशालवनं द्विघ्नं मेरुव्यासेन योजितम्।
सहस्त्रोनं भवेज्जीवामध्ये वेदिकयोर्द्वयोः ॥२९॥

अर्थ—भद्रशाल वन के प्रमाण को दूना करके उसमें मेरु का व्यास जोड़ना चाहिए। जो प्रमाण प्राप्त हो उसमें से दोनों वेदिकाओं और गजदन्तों के मध्य का अन्तर अर्थात् गजदन्तों की मोटाई (५००+५००)=एक हजार योजन घटा देने पर भोगभूमियों की जीवा का प्रमाण प्राप्त होता है ॥२९॥

विशेषार्थ—भद्रशालवन का प्रमाण २२००० योजन है, इसे दुगुना करने पर (२२०००× २)=४४००० योजन हुए। इसमें मेरु व्यास १०००० योजन जोड़ देने से (४४०००+१००००) = ५४००० योजन हुए। इसमें से भद्रशाल वन की दो वेदियों और गजदन्तों के बीच का अन्तर अर्थात् गजदन्तों की चौड़ाई (५००+ ५००) = १००० योजन है, अतः इसे घटा देने से देवकुरु, उत्तर कुरु की जीवा का प्रमाण ५४०००-१००० = ५३००० योजन प्राप्त हो जाता है।

देवोत्तरकुरुभोगभूम्योः प्रत्येकं कुलाद्रिपार्श्वे जीवा त्रिपञ्चाशत्सहस्र योजनानि।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अर्थ—निषध और नील कुलाचल के समीप में देवकुरु और उत्तरकुरु अर्थात् प्रत्येक उत्कृष्ट भोगभूमि की जीवा का प्रमाण ५३००० योजन है।

अब देवकुरु उत्तरकुरु भोगभूमियों के वाण का प्रमाण कहते हैं—

विदेहक्षेत्रविस्तारोऽखिलो यो मेरुवर्जितः।
तस्यार्धं यत् पृथक् क्षेत्रं सा वाणदीर्घतोच्यते ॥३०॥

अर्थ—विदेह क्षेत्र के विस्तार में से मेरुगिरि का भूव्यास घटाकर आधा करने पर कुरु क्षेत्र के विष्कम्भ का प्रमाण होता है, और यही कुरु क्षेत्र के वाण की दीर्घता का प्रमाण है ॥३०॥

विशेषार्थ—विदेह क्षेत्र के व्यास का प्रमाण ३३६८४ $\frac{४}{१९}$ योजन है, इसमें से मेरुगिरि का भूव्यास १०००० योजन घटाकर आधा करने पर (३३६८४$\frac{४}{१९}$ − १०००० = २३६८४$\frac{४}{१९}$ ÷ २) = ११८४२ $\frac{२}{१९}$ योजन देवकुरु और उत्तरकुरु के व्यास का प्रमाण हैं और यही दोनों क्षेत्रों के (पृथक्-पृथक्) वाण का प्रमाण है।

देवकुरुतरक्षेत्रयोः प्रत्येकं वाणः एकादशसहस्राष्टशतद्विचत्वारिंशद्योजनानि योजनैकोनविंशति भागानां द्वौ भागौ।

अर्थ—देवकुरु और उत्तरकुरु इन दोनों क्षेत्रों का और इन क्षेत्रों में से प्रत्येक के वाण का प्रमाण ११८४२ $\frac{२}{१९}$ योजन है।

अब भोगभूमि में उत्पन्न होने वाले जीवों की गति आगति का एवं और भी अन्य विशेषताओं का वर्णन करते हैं—

भद्रा निर्दर्शनाजीवास्त्रिधा सत्पात्रदानतः।
जायन्ते भोगिनश्चार्याः क्रमाद् भोगमहीत्रिषु ॥३१॥
न रोगो न भयो ग्लानिर्नाल्पमृत्युर्न दीनता।
न वृद्धत्वं न नीहारो नाहो! षड्ऋतु संक्रमः ॥३२॥
नानिष्टसङ्गमो नेष्टवियोगो नापमानता।
नान्यद् दुःखादिकं किञ्चित् क्षेत्रसद्भावतो नृणाम् ॥३३॥
केवलं मृत्युपर्यन्तं पात्रदानज-पुण्यतः।
दशधाकल्पवृक्षोत्थान् भोगान् भुञ्जति तेऽनिशम् ॥३४॥
उत्पादोमृतिरार्याणां युग्मरूपेण जायते।
क्षुतात् मृत्युर्नराणां स्यान् स्त्रीणां जृम्भिकयात्र च ॥३५॥
ततस्ते स्वार्यभावेनार्या यान्ति देवसद्गतिम्।
सत्पात्रदानपुण्येनामीषां नास्त्यपरा-गतिः ॥३६॥

अर्थ—भद्रमिथ्यादृष्टि जीव उत्तम, मध्यम और जघन्य सत्पात्रों के दान के फल से क्रमशः उत्तम, मध्यम और जघन्य इन तीन भोगभूमियों में आर्य और आर्या रूप से उत्पन्न होते हैं। उत्तम क्षेत्र

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

के सद्भाव से वहाँ के जीवों के रोग नहीं होते, न वहाँ भय है, न ग्लानि है, न अल्पकाल में मृत्यु होती है, न दीनता है, न जीवों को वृद्धता आती है, न निहार होता है, अहो! और न छह ऋतुओं का सञ्चार होता है, न अनिष्ट का संयोग होता है, न इष्ट का वियोग होता है, न अपमान आदि का दुःख है, और न अन्य ही किञ्चित् दुःख वहाँ प्राप्त होते हैं किन्तु वे पात्रदान से उत्पन्न होने वाले पुण्य के फल से मरणपर्यन्त दस प्रकार के कल्पवृक्षों से उत्पन्न होने वाले भोगों को निरन्तर भोगते हैं। वहाँ पर स्त्री-पुरुष युगल रूप से एक साथ उत्पन्न होते हैं और एक ही साथ मरते हैं। पुरुषों की मृत्यु छींक से और स्त्रियों की मृत्यु जम्भाई से होती है। भोगभूमि के जीव अपने आर्य एवं आर्या भाव से अर्थात् सरल परिणामी होने से मरण के बाद देवगति को ही प्राप्त करते हैं, सत्पात्रों को दिये हुए दान के फल से उन जीवों को नरक, तिर्यञ्च एवं मनुष्य गति की प्राप्ति नहीं होती ॥३१-३६॥

अब जम्बूवृक्ष का स्थानादिक परिकर ग्यारह श्लोकों द्वारा कहते हैं—

मेरोरीशानदिक्कोणे सीतायाः प्राक्तटस्थले।
कुरुभूकोणसंस्थाने नीलाद्रेः सन्निधौ भवेत् ॥३७॥
जम्बूवृक्षो महान् जम्बूवृक्षाकारश्च शाश्वतः।
पृथिवीकायसद्रत्नमयो मणिद्रुमावृतः ॥३८॥
अस्यादौ पीठिकावृत्ता वेदिका तोरणाङ्किताः।
दिव्या स्वर्णमया पञ्चशत्योजनविस्तृता ॥३९॥
मध्येऽष्टयोजनोत्तुङ्गास्त्यन्तेऽर्धयोजनोच्छ्रिता ।
तन्मध्ये पीठिकाहैमी योजनाष्टोन्नता परा ॥४०॥
मूले च द्वादशव्यासा मध्यव्यासाष्टयोजनैः।
अग्रे स्याद् विस्तृता रम्या चतुर्भियोजनैः परा ॥४१॥
तस्या मध्यप्रदेशेऽस्ति मूर्ध्नि छत्रत्रयाङ्कितः
वज्रस्कन्धः सुवैडूर्यरत्नपत्रफलावृतः ॥४२॥
जम्बूवृक्षो महादीप्तोऽनेकपादपमध्यगः।
तस्य जम्बूद्रुमस्यास्ति स्कन्धो द्वियोजनोन्नतः ॥४३॥
योजनार्धावगाहो द्विक्रोशविस्तारसंयुतः।
तदर्धे प्रवराः शाखाश्चतस्रः सन्ति शाश्वताः ॥४४॥
गव्यूतिद्वयविस्तीर्णा योजनाष्टसमायताः।
दिव्यगेहयुता दीप्ता रम्या मरकताश्मजाः ॥४५॥
तासामुत्तरशाखायां जिनचैत्यालयोऽव्ययः।
अनावृतादि यक्षौघैः पूज्यो वन्द्यस्तुतोऽन्वहम् ॥४६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

शेषशाखात्रयस्थोच्चसौधेष्वनावृतामरः ।
यक्षान्वयी वसेद् भूत्या जम्बूद्वीपस्य रक्षकः ॥४७॥

अर्थ—नील कुलाचल के समीप, सीता महानदी के पूर्व तट पर, मेरु पर्वत को ईशान दिशा में, उत्तरकुरु क्षेत्र के कोने में, जामुन वृक्ष के आकार सदृश, शाश्वत, पृथ्वीकाय, उत्तम रत्नमय तथा मणिमय अनेक वृक्षों से समन्वित एक महान् जम्बूवृक्ष स्थित है। इस जम्बूवृक्ष की प्रथम पीठिका (स्थली) गोल, वेदिकाओं एवं तोरणों से अलंकृत, दिव्य, स्वर्णमय तथा पाँच सौ योजन विस्तृत, मध्य में आठ योजन ऊँची और अन्त में अर्ध योजन ऊँची है। इस स्थली के मध्य में आठ योजन ऊँची एक अन्य रमणीक और स्वर्णमय पीठिका है, जिसका मूल व्यास बारह योजन, मध्य व्यास आठ योजन और अग्रभाग का व्यास चार योजन प्रमाण है ॥३७-४१॥

इस पीठ के मध्यभाग में ऊपर तीन छत्रों से अञ्चित, वज्रमय स्कन्ध, उत्तम वैडूर्यरत्नों के पत्र एवं फलों से संकुलित, अनेक लघु जम्बूवृक्षों के मध्य में महादेदीप्यमान जम्बूवृक्ष है। उस जम्बूवृक्ष का स्कन्ध (पीठ से) दो योजन ऊँचा, दो कोस चौड़ा और अर्ध योजन अवगाह (नींव) से युक्त है। उस वृक्ष के अर्ध भाग से शाश्वत और उत्तम चार शाखाएँ निकलतीं हैं जो दो कोस चौड़ी, आठ योजन लम्बी, दिव्य प्रासादों से युक्त, ज्योतिर्मान, सुन्दर और मरकतमणिमय हैं। इनमें से उत्तर दिशा की शाखा पर अनावृत आदि यक्ष समूह से निरन्तर पूज्य, वन्दनीय एवं स्तुत्य शाश्वत अर्थात् अकृत्रिम जिन चैत्यालय है। शेष तीन शाखाओं पर स्थित उन्नत प्रासादों में जम्बूद्वीप का रक्षक और यक्षकुलोत्पन्न अनावृत नाम का देव अपनी परम विभूति के साथ निवास करता है ॥४२-४७॥

अब परिवार वृक्षों की संख्या, प्रमाण एवं स्वामियों का निदर्शन करते हैं—

यावन्तः स्युः श्रियो देव्याः परिवाराब्जसद्गृहाः।
परिषत् त्र्यादिदेवानां संख्ययाखिलदिक्स्थिताः ॥४८॥
तावन्तोऽत्रास्य देवस्य परिवारसुधाभुजाम्।
सर्वे जम्बूद्रुमा ज्ञेयाः शाखाग्रसौधसंयुताः ॥४९॥
व्यासायामोन्नता जम्बूवृक्षस्यार्धोच्छ्रितादिभिः।
एकैक श्रीजिनागारालंकृताः क्षयदूरगाः ॥५०॥
विशेषोऽयं भवेदत्र चतुर्दिक्षु गृहद्रुमाः।
चत्वारोऽस्याग्रदेवीनां स्युः पद्मरागतन्मयाः ॥५१॥

अर्थ—[पद्मद्रह में स्थित] श्री देवी की चारों दिशाओं में स्थित तीन परिषद् आदि के समस्त परिवार देवों के कमल स्थित प्रासादों की जितनी संख्या है, उतनी ही संख्या इस अनावृत देव के परिवार देवों की है। ये समस्त परिवार जम्बूवृक्ष शाखा के अग्रभाग पर प्रासादों से संयुक्त हैं ऐसा जानना चाहिए। इन परिवार जम्बूवृक्षों की चौड़ाई, लम्बाई एवं ऊँचाई मूल जम्बूवृक्ष के अर्ध प्रमाण है और

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

प्रत्येक परिवार जम्बूवृक्ष एक एक अकृत्रिम जिन चैत्यालय से अलंकृत है। अर्थात् जितने (१४०१२०) जम्बूवृक्ष हैं, उतने ही अकृत्रिम जिन चैत्यालय हैं। श्रीदेवी के परिवार कमलों से यहाँ इतना विशेष है कि प्रधान जम्बूवृक्ष की चारों दिशाओं में अनावृत देव की चार पट्टदेवाङ्गनाओं के पद्मरागमणिमय चार गृहद्रुम अधिक हैं ॥४८-५१॥

अस्य व्यासेन परिवारवर्णनोच्यते–

जम्बूवृक्षस्यास्याग्नेयदिग्भागे अन्तः परिषद्देवानां द्वात्रिंशत्सहस्र गेहाधारपादपाः स्युः। दक्षिणदिशायां मध्यपरिषत् सुराणां चत्वारिंशत्सहस्रालयवृक्षाश्च। नैऋत्यकोणे बाह्यपरिषद्गीर्वाणानां अष्ट-चत्वारिंशत्सहस्र-गृहजम्बूद्रुमाः सन्ति। वायुदिगीशानदिशोः सामान्यकामराणां चतुःसहस्रगृहशाखिनो भवन्ति। पश्चिमदिशि सप्तानीक सुराणां सप्तगृहद्रुमाश्च। चतुर्दिक्षु अङ्गरक्षाणां षोडशसहस्रसौधपादपाश्च। अष्टदिक्षु प्रतीहारोत्तमानामष्टोत्तरशतगेहाधारवृक्षाः सन्ति। चतुर्दिक्षु अनावृतदेवस्य चतुरग्रदेवीनां चत्वारः सौधान्वितपादपा भवेयुः। एते सर्वे पिण्डीकृताः प्रासादाङ्कितजम्बूवृक्षाः मूलजम्बूवृक्षेण समं एकलक्षचत्वारिंशत्सहस्रैकशतविंशतिप्रमाणाः भवन्ति।

अर्थ–प्रधान जम्बूवृक्ष की आग्नेय दिशा में अन्तः पारिषद देवों के बत्तीस हजार गृहों के आधारभूत जम्बूवृक्ष हैं। दक्षिण दिशा में मध्य पारिषद देवों के चालीस हजार गृह जम्बूवृक्ष हैं। नैऋत्य दिशा में बाह्य पारिषद देवों के अड़तालीस हजार प्रासाद जम्बूवृक्ष हैं। वायव्य और ईशान दिशा में सामानिक देवों के चार हजार गृहवृक्ष हैं। पश्चिम दिशा में सात अनीक देवों के सात गृहद्रुम हैं। चारों दिशाओं में अंगरक्षक देवों के सोलह हजार सौधवृक्ष हैं। चारों दिशाओं और चारों विदिशाओं में प्रतीहार देवों के उत्तम एक सौ आठ गृहों के आधारभूत वृक्ष हैं। चारों दिशाओं में अनावृत देव की चार पट्टदेवांगनाओं के भवनों से समन्वित चार वृक्ष हैं। प्रधान जम्बूवृक्ष के साथ इन सब प्रासाद युक्त जम्बूवृक्षों को एकत्रित करने पर-(१+३२०००+४००००+४८०००+४०००+७+१६०००+१०८+४)=१४०१२० अर्थात् एक लाख चालीस हजार एक सौ बीस प्रमाण होते हैं।

अब शाल्मलिवृक्ष का वर्णन चार श्लोकों द्वारा करते हैं–

मेरोर्नैऋत्यदिग्भागे सीतोदापश्चिमे तटे।
निषधाद्रिसमीपेऽस्ति देवादिकुरुभूतले ॥५२॥
उत्सेधायामविस्तारैर्जम्बूवृक्षसमो महान्।
परिवारद्रुमैः सर्वैः शाल्मली वृक्ष ऊर्जितः ॥५३॥
तस्य दक्षिणशाखायां रत्नशाली जिनालयः।
वेणुदेवादिभिः पूज्यो जिनबिम्बभूतो भवेत् ॥५४॥
शेषशाखात्रयाग्रस्थप्रासादेषु वसेत् सुरः।
गरुडान्वयजो वेणुदेवो देवैः समं महान् ॥५५॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अर्थ—सुदर्शन मेरु की नैऋत्य दिशा में, सीतोदा नदी के पश्चिम तट पर, निषध कुलाचल के समीप देवकुरु क्षेत्र में जम्बूवृक्ष के सदृश उत्सेध, आयाम एवं विस्तार से युक्त तथा समस्त (१४०१२०) परिवार वृक्षों से समन्वित एक अति शोभा सम्पन्न शाल्मली वृक्ष है। इसकी दक्षिण शाखा पर वेणुधारी आदि देवों द्वारा पूज्य और अनेक जिनबिम्बों से संकुलित रत्नमय जिनालय है। शेष तीन शाखाओं पर स्थित प्रासादों में अनेक परिवार देवों के साथ गरुड़कुलोत्पन्न वेणु नाम का महान् देव निवास करता है ॥५२-५५॥

अब यमकगिरि का स्वरूप कहते हैं—

नीलाद्रेर्दक्षिणे गत्वा सहस्रयोजनानि च।
भवेतां यमकाद्रीद्वौ सीतायाः पार्श्वयोर्द्वयोः ॥५६॥
सहस्रयोजनोच्चौ यमकूटकाञ्चनाह्वयौ।
सहस्रयोजनव्यासौ मूले मध्ये च योजनैः ॥५७॥
सार्धसप्तशतैर्विस्तृतौ मूर्ध्निशतपञ्चकैः।
परस्परान्तरौ दीप्राङ्गौ पञ्चशतयोजनैः ॥५८॥
मूले भूमितले मूर्ध्नि वनवेदीयुतौ शुभौ।
जिनालयान्यसौधोच्चतोरणाद्यग्रभूषितौ ॥५९॥
तयोश्च शिखरे रत्नप्रासादेषून्नतेषु च।
सार्धद्विषष्टिसंख्यानै र्योजनैर्मणिशालिषु ॥६०॥
योजनैरेकगव्यूत्यग्रैकत्रिंशत्प्रमाणकैः ।
व्यासायामेषु देवौ यमदेवकाञ्चनाभिधौ ॥६१॥
वसतः परिवाराढ्यौ पल्योपमैकजीवितौ।
तथान्येऽचलयोर्मूर्ध्नि सन्ति प्रासादपङ्क्तयः ॥६२॥
सप्तानीकसुसामान्यकाङ्गरक्षसुधाभुजाम् ।
चतुरग्रसुदेवीनां परिषत्त्रिसुधाशिनाम् ॥६३॥

अर्थ—नील कुलाचल से दक्षिण में एक हजार योजन आगे जाकर सीता नदी के दोनों तटों पर यमककूट और काञ्चनगिरि नाम के दो यमकगिरि पर्वत हैं। ये दोनों यमकगिरि एक हजार योजन ऊँचे, मूल में एक हजार योजन चौड़े, मध्य में साढ़े सात सौ योजन और शिखर तल पर पाँच सौ योजन चौड़े हैं। इन दोनों देदीप्यमान शैलों का परस्पर का अन्तर भी पाँच सौ योजन प्रमाण है।

इन दोनों पर्वतों के मूल में अर्थात् पृथ्वीतल पर और शिखरतल पर रमणीय वनवेदी से युक्त जिनालय हैं तथा जिनालयों के अग्रभाग तोरणों से सुशोभित हैं। दोनों पर्वतों के शिखरों पर स्थित मणियों से शोभायमान उन्नत रत्नमय उन्नत प्रासादों में एक पल्योपम प्रमाण आयु वाले यमक और काञ्चन नाम के देव अपने परिवार सहित निवास करते हैं। इनके ये प्रासाद साढ़े बासठ योजन ऊँचे

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

और सवा इकतीस योजन प्रमाण लम्बे एवं चौड़े हैं। इन्हीं दोनों पर्वतों के शिखरों पर सात अनीकों के, सामानिक देवों के, अंगरक्षकों के, चार पट्ट देवांगनाओं के और तीनों परिषदों के देवों के भवन पंक्तिबद्ध स्थित हैं ॥५६-६३॥

अब विचित्र-चित्र नामक यमक पर्वतों का विवेचन करते हैं—

निषधस्योत्तरे गत्वा सहस्त्रयोजनान्यपि।
स्तौ द्वौ यमकशैलौ सीतोदायास्तटयोर्द्वयोः ॥६४॥
[1]विचित्रचित्राकूटाख्यौ पूर्वोक्त यमकप्रमौ।
चैत्यालयगृहारामव्यासोत्सेधादिवर्णनैः ॥६५॥
अनयो मूर्ध्नि सौधेषु प्रागुक्तोच्चादि शालिषु।
चित्रविचित्रनामानौ गीर्वाणौ वसतोऽद्भुतौ ॥६६॥
पूर्वोदिताङ्गरक्षादि सर्वदेवाग्रयोषिताम्।
एतयोः शिखरे सन्ति प्रासादतोरणादयः ॥६७॥

अर्थ—निषध कुलाचल से उत्तर में एक हजार योजन आगे जाकर सीतोदा नदी के दोनों तटों पर विचित्र और चित्र कूट नाम के दो यमकगिरि हैं। इन पर्वतों पर स्थित जिन चैत्यालयों, प्रासादों एवं वनों के व्यास एवं उत्सेध आदि का समस्त वर्णन पूर्वकथित दोनों यमक शैलों के सदृश है। इन दोनों शैलों के शिखर पर स्थित पूर्वोक्त ऊँचाई आदि से युक्त शोभायमान प्रासादों में चित्र, विचित्र नाम के अद्भुत पुण्यशाली देव निवास करते हैं। इन पर्वतों के शिखरों पर पूर्वकथित अंगरक्षक आदि सर्व देवों के और दोनों देवों की चार-चार प्रमुख देवांगनाओं के तोरण आदि से युक्त प्रासाद हैं ॥६४-६७॥

अब सीता नदी स्थित पञ्चद्रहों का वर्णन करते हैं—

यमकाद्री परित्यज्य यावत् पञ्चशतान्तरम्।
योजनानां सरित्सीताया उत्तरकुरुक्षितेः ॥६८॥
मध्ये पञ्चद्रहाः सन्ति श्रीपद्मह्रद सन्निभाः।
शतपंचप्रमैर्योजनैरन्तरान्तरस्थिताः ॥६९॥
ह्रदोनीलाह्वयोऽत्राद्यस्तथोत्तरकुरुर्द्रहः ।
चन्द्रऐरावतो माल्यवानेतन्नामसंयुताः ॥७०॥
सीतामध्यस्थिता एते ज्ञेयाः पंचद्रहाः शुभाः।
देवी नीलकुमारी चोत्तराद्यन्तकुमारिका ॥७१॥
चन्द्रकुमारिकाथैरावत कुमारिका तथा।
माल्यवतीति नामाढ्या पंच नागकुमारिका ॥७२॥

---

१. चित्रविचित्रकूटाख्यौ अ. ज. न.

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

पुण्यलक्षणभूषाढ्या वसन्ति पुण्यपाकतः॥
द्रहस्थपद्मगेहेषु स्वपरिवारवेष्टिताः ॥७३॥

अर्थ—यमकगिरि से पाँच सौ योजन जाकर उत्तरकुरु भोगभूमि स्थित सीता सरित् के मध्य में पद्मह्रद के सदृश पाँच द्रह हैं। ये पाँचों द्रह पाँच-पाँच सौ योजन के अन्तराल से स्थित हैं तथा नीलवान्, उत्तरकुरु, चन्द्रद्रह, ऐरावतद्रह और माल्यवान् नाम से संयुक्त हैं। ये शुभ पाँच द्रह सीता नदी के मध्य में स्थित हैं, ऐसा जानना चाहिए। इन पाँचों द्रहों में स्थित कमलों पर निर्मित प्रासादों में अपने-अपने परिवारों से वेष्टित और पूर्वोपार्जित पुण्य के फल से शुभ लक्षण और शुभ वस्त्राभूषणों से अलंकृत नीलकुमारी, उत्तर (कुरु) कुमारी, चन्द्रकुमारी, ऐरावत कुमारी और माल्यवती नाम की पाँच नागकुमारियाँ क्रमशः निवास करतीं हैं ॥६८-७३॥

अब सीतोदा नदी स्थित पाँच द्रहों का वर्णन करते हैं—

त्यक्त्वान्यौ यमकाद्री योजनपंचशतान्तरम्।
स्युर्द्रहाः पंचसीतोदामध्ये देवकुरुक्षितौ ॥७४॥
प्रथमो निषधाभिख्यो ततो देवकुरुर्द्रहः।
सूर्याख्यः सुलसो विद्युत्प्रभ इत्याढ्यनामकाः ॥७५॥
ज्ञेयाः पंचद्रहा रम्याः समाः श्रीह्रदवर्णनैः।
निषधादिकुमारीदेवादिकुरुकुमारिकाः ॥७६॥
देवी सूर्यकुमारी सुलसा विद्युत्प्रभाह्वया।
वसन्तिद्रहगेहेषु पंचेमा नागकन्यकाः ॥७७॥

अर्थ—अन्य दो (विचित्र और चित्र) यमकगिरि पर्वतों से पाँच सौ योजन जाकर देवकुरु भोगभूमि में स्थित सीतोदा नदी के मध्य में पाँच द्रह हैं। इन पाँचों द्रहों का नाम निषध द्रह, देवकुरुद्रह, सूर्यद्रह, सुलसद्रह और विद्युत्प्रभद्रह है। इन रमणीक पाँचों द्रहों का समस्त वर्णन श्रीदेवी के पद्मद्रह के सदृश है। द्रह स्थित कमलों पर निर्मित प्रासादों में क्रमशः निषधकुमारी, देव (कुरु) कुमारी, सूर्य कुमारी, सुलसा कुमारी और विद्युत्प्रभा नाम की पाँच नागकुमारियाँ निवास करती हैं ॥७४-७७॥

अब अन्य दश द्रहों की अवस्थिति एवं समस्त द्रहों के आयाम आदि का कथन करते हैं—

पुनः पंच द्रहाः पूर्वभद्रशालवने परे।
मध्ये सीतामहानद्याः स्युः प्राग्नामादि संयुताः ॥७८॥
पश्चिमे भद्रशालेऽन्ये सन्ति पंच द्रहा युताः।
निषधाद्याख्यदेवीभिः सीतोदाभ्यन्तरे क्रमात् ॥७९॥
एते पिण्डीकृताः सर्वे द्रहाः विंशतिरूर्जिताः।
वज्रमूलाः सपद्मा योजनपंचशतान्तराः ॥८०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सहस्त्रयोजनायामा दक्षिणोत्तरपार्श्वयोः।
पूर्वापर सुविस्तीर्णाः शतपंचसुयोजनैः ॥८१॥
जलान्तसमवैडूर्यनालक्रोशाद्वयोच्छ्रिताः ।
जलाद्वशावगाहाः स्युर्वेदिकास्तोरणाङ्किताः ॥८२॥

अर्थ—इसके पश्चात् पूर्व भद्रशाल वन में स्थित सीता महानदी के मध्य में पूर्व कथित नीलवान् उत्तरकुरु आदि नामों से युक्त अन्य पाँच द्रह हैं। जिनमें नीलवान् आदि देवियाँ-निवास करती हैं। पश्चिम भद्रशाल वन में स्थित सीतोदा नदी के मध्य में निषधवान् आदि पूर्वोक्त नाम वाले अन्य पाँच द्रह हैं, जिनमें निषध आदि नाम वालीं पाँच नागकुमारियाँ क्रमशः निवास करतीं हैं। ये सभी द्रह एकत्रित जोड़ने से बीस होते हैं। अर्थात् ५ द्रह उत्तरकुरु सम्बन्धी और ५ पूर्व भद्रशाल सम्बन्धी सीता नदी के मध्य में हैं, तथा ५ देवकुरु और ५ पश्चिम भद्रशाल सम्बन्धी सीतोदा के मध्य में हैं। वज्रमय है मूल जिनका, ऐसे कमलों से युक्त इन पाँचों द्रहों का पारस्परिक अन्तर पाँच सौ योजन प्रमाण है। ये पाँचों द्रह दक्षिणोत्तर दिशा में एक हजार योजन लम्बे और पूर्व-पश्चिम पाँच सौ योजन चौड़े हैं। एक एक द्रह दश योजन गहरे, रत्नमय वेदिकाओं से युक्त और मणिमय तोरणों से मण्डित हैं। प्रत्येक द्रहों में स्थित कमल समूहों की नाल वैडूर्यमय है और जल से दो कोस ऊँची है। अर्थात् पद्मनाल की कुल लम्बाई साढ़े दश योजन प्रमाण है, इसलिये दश योजन गहरे सरोवर को व्याप्त करती हुई जल से अर्ध योजन (दो कोस) प्रमाण ऊँची है ॥७८-८२॥

अमीषां व्यासेन वर्णनं क्रियते—

द्रहाणां मध्ये प्रत्येकं जलाद् द्विक्रोशोच्छ्रितं योजनविस्तीर्णं सार्धक्रोशायतैकादशसहस्त्रपद्मपत्राङ्कितं क्रोशव्यासकर्णिकान्वितम् एकैकं शाश्वतं कमलं स्यात्। कमलं कमलं प्रति कर्णिकायाम् नानामणिमयं क्रौशैकदीर्घं अर्धक्रोशव्यासं पादोनक्रोशोच्चं रत्नवेदिकातोरणाद्यलंकृतं एकैकं भवनं भवेत्। तेषु सर्वभवनेषु स्वस्व परिवारदेवावृताः प्रागुक्तनामाङ्किताः दिव्यरूपाः नागकुमार्यो वसन्ति। मुख्यकमलगेहादाग्नेय-दिशिदेव्याः द्वात्रिंशत्सहस्त्राणि अन्तः परिषद्देवानां पद्मालयाः सन्ति। दक्षिणदिग्भागे मध्यपरिषत्सुराणां चत्वारिंशत्सहस्त्राम्बुजाढ्यगृहाश्च। नैऋत्यदिशि बाह्य परिषद् गीर्वाणानां अष्टचत्वारिंशत्सहस्त्राणि अब्जसौधाः सन्ति। वायुकोणैशानदिशोः सामान्यकामराणां चतुःसहस्त्राम्भोज प्रासादाश्च। पश्चिमाशायां सप्त सप्त सैन्याङ्कित सप्तानीकानां सप्तपद्मगेहाः स्युः। पूर्वादि चतुर्द्दिक्षु अङ्गरक्षाणां षोडशसहस्त्र-पद्माङ्कितप्रासादाः सन्ति। देव्यः पद्मं परितः अष्टदिग्विदिक्षु प्रतीहारोत्तमानामष्टोतरशतकमलगेहाश्च। इत्युक्ताः सर्वे एकत्रीकृता एकलक्षचत्वारिंशत्सहस्त्रैकशतषोडशप्रमाणाः मुख्यपद्मालयादर्धायाम व्यासोत्सेधाः एकैक जिनालय-वेदिकातोरणाद्यलंकृताः सुगन्धिपद्माश्रितरत्नगृहा विज्ञेयाः। सर्वे विंशतिद्रहाणां पिण्डीकृताः देवीपद्मैः समं शाश्वता मणिपद्माः अष्टाविंशति लक्षद्विसहस्त्रत्रिंशतविंशतिप्रमाणाः भवेयुः तावन्तः पद्मस्था आलयाश्च।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब कमलों का तथा कमल स्थित भवनों के व्यास आदि का एवं उनमें निवास करने वाली नागकुमारियों के परिवार आदि का वर्णन करते हैं–

अर्थ–प्रत्येक सरोवरों के मध्य में एक एक अकृत्रिम कमल हैं, जो एक योजन चौड़े और और जल से दो कोस प्रमाण ऊँचे हैं तथा डेढ़ कोस लम्बाई वाले ग्यारह हजार पत्रों से युक्त और एक कोस विस्तार वाली कर्णिका से समन्वित हैं। प्रत्येक कमल की कणिका पर अनेक मणियों से निर्मित, रत्नमय वेदिका एवं तोरण आदि से अलंकृत, एक कोस लम्बे, अर्ध कोस चौड़े और पौन कोस ऊँचे एक एक भवन हैं। इन समस्त (२०) भवनों में अपने-अपने परिवार देवों से आवृत, पूर्वोक्त नाम वालीं दिव्यरूप धारणी नागकुमारियाँ निवास करतीं हैं। इन देवियों के प्रधान कमल स्थित भवनों से आग्नेय दिशा में अभ्यन्तर पारिषद् देवों के ३२००० पद्मालय हैं।

दक्षिण दिशा में मध्य पारिषद् देवों के ४०००० कमलयुक्त भवन हैं। नैऋत्य दिशा में बाह्य पारिषद् देवों के ४८००० पद्मालय हैं। वायव्य और ईशान दिशा में सामानिक देवों के ४००० अम्भोज प्रासाद हैं। पश्चिम दिशा में सात-सात सेनाओं से मण्डित सात अनीकों के सात (७) पद्म गृह हैं। पूर्व आदि चारों दिशाओं में अंगरक्षक देवों के १६००० पद्मांकित भवन हैं। देवियों के प्रधान कमलों के चारों ओर अर्थात् आठों दिशाओं में प्रतीहार देवों के १०८ कमलगृह हैं (प्रत्येक दिशा में चौदह, चौदह और विदिशाओं में तेरह-तेरह इस प्रकार एक सौ आठ हैं) इस प्रकार उपयुक्त सर्व पद्मगृहों का एकत्रित योग (३२०००+४००००+४८०००+१६०००+४०००+१०८+७+१)=१४०११६ प्रमाण होता है। इन परिवार कमलालयों का आयाम, व्यास एवं उत्सेध प्रधान पद्मालय के आयाम आदि से अर्ध-अर्ध प्रमाण है। ये सभी सुगन्धित पद्माश्रित रत्नप्रासाद एक-एक जिनालय, रत्नमय वेदिका एवं तोरण आदि से अलंकृत जानना चाहिए। नागकुमारियों के प्रधान कमलों के साथ-साथ बीसों सरोवरों के समस्त कमलों का प्रमाण (१४०११६×२०)=२८०२३२० अर्थात् अट्ठाइस लाख दो हजार तीन सौ बीस है। जितने ये कमल हैं, इन पर स्थित उतने ही प्रासाद हैं (और उतने ही अकृत्रिम जिन चैत्यालय हैं)।

अब काञ्चन पर्वतों का सविस्तार वर्णन करते हैं–

एषां सर्वद्रहाणां च पूर्वपश्चिमभागयोः।
प्रत्येकं पञ्च पञ्चैव पर्वताः काञ्चनाह्वयाः ॥८३॥
शतैकयोजनोत्सेधा मूले शतैकविस्तृताः।
पञ्चसप्ततिविस्तारा मध्येग्रे व्याससंयुताः ॥८४॥
पंचाशद्योजनैः स्वोच्चचतुर्थांशधरान्तगाः।
मूलाग्रेऽलंकृताः सन्ति वनवेदीसुतोरणैः ॥८५॥
एषां द्विशतसंख्यानां शिखरेषु महोन्नतैः।
जिनचैत्यालयै रत्नमयैः प्रासादपंक्तिभिः ॥८६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

वेदिकातोरणाद्यैश्च भूषितानि पुराणि वै।
कल्पद्रुमादि युक्तानि भवन्ति शाश्वतानि भोः ॥८७॥
पुरेषु तेषु राजानः कांचनाख्याः सुरोत्तमाः।
दशचापोच्चदिव्याङ्गा वसन्ति पल्यजीविनः ॥८८॥

अर्थ—इन उपयुक्त बीस द्रहों में से प्रत्येक द्रह के पूर्व पश्चिम (दोनों) तटों पर पाँच-पाँच (पूर्व तट पर २०×५=१०० और पश्चिम तट पर १००) काञ्चन नाम के पर्वत हैं। जो सौ योजन ऊँचे, मूल में-पृथ्वीतल पर सौ योजन चौड़े, मध्य में पचहत्तर योजन और शिखर पर पचास योजन चौड़े हैं। जमीन में इनका अवगाह (नींव) अपनी ऊँचाई का चतुर्थ भाग अर्थात् $(\frac{१००}{४})$=२५ योजन प्रमाण है। ये पर्वत मूल और अग्र भाग में वन, वेदी एवं उत्तम तोरणों से युक्त हैं। उन दो सौ कांचन शैलों के शिखरों पर महा उन्नत रत्नमय जिन चैत्यालयों, प्रासाद पंक्तियों, वेदिकाओं एवं तोरणों आदि से विभूषित तथा शाश्वत कल्पवृक्षों से युक्त नगर हैं। उन काञ्चनगिरि के नगरों में दस धनुष उन्नत, उत्तम देह से संयुक्त और पल्योपम प्रमाण आयु के धारक काञ्चन नाम के उत्तम देव अधिपति स्वरूप से निवास करते हैं ॥८३-८८॥

अब द्रहों और भद्रशाल की वेदियों के अन्तराल का दिग्दर्शन कराते हैं—

योजनानां सहस्त्रे द्वे द्वयाग्रा नवतिः कले।
द्वे, ह्रदोभयवेद्योः सर्वेषां प्रत्येकमन्तरम् ॥८९॥

अर्थ—सीता-सीतोदा के मध्य स्थित अन्तिम ह्रद और उत्तर-दक्षिण भद्रशाल की वेदी इस सब में से प्रत्येक के बीच के अन्तर का प्रमाण २०९२$\frac{२}{१९}$ योजन है। अर्थात् अन्तिम द्रह से २०९२$\frac{२}{१९}$ योजन आगे जाकर भद्रशाल की वेदी अवस्थित है ॥८९॥

विशेषार्थ—विशेष के लिए देखिये त्रिलोकसार गाथा ६६० (टीका सहित)।

अब दिग्गज पर्वतों का स्वरूप छह श्लोकों द्वारा कहा जाता है—

कुरुभूम्योर्द्वयोः पूर्वापरादि भद्रशालयोः।
मध्ये च द्वि महानद्योः पार्श्वयोर्दिक्षुपर्वतौ ॥९०॥
द्वौ द्वौ दिग्गजनामानौ शतैकयोजनोन्नतौ।
शतयोजनविस्तारौ मूलेऽग्रे विस्तरान्वितौ ॥९१॥
पंचाशद्योजनै रत्नप्रासादतोरणाङ्कितौ।
वनवेदीजिनागारालंकृतौ भवतोऽद्भुतौ ॥९२॥
पद्मनीलाह्वयौ शैलौ स्वौवस्ति-कांजनाह्वयौ।
कुमुदाद्रिपलाशाख्याववतं शाद्रिरोचनौ॥९३॥
इति नामाश्रिता अष्टौ पूर्वादिदिक्षु दिग्गजाः।
ज्ञेया एषां च मूर्धस्थमणिवेश्मसु पुण्यतः ॥९४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

स्वस्वाद्रिनामसंयुक्ता अष्टौ व्यन्तरनिर्जराः।
देवदेवीपरिवारयुक्ता वसन्ति शर्मणा ॥९५॥

अर्थ—देवकुरु, उत्तरकुरु इन दो भोगभूमियों में तथा पूर्व भद्रशाल और पश्चिम भद्रशाल वनों के मध्य में महानदी सीता और सीतोदा के दोनों तटों पर दो-दो दिग्गज पर्वत अवस्थित हैं। इन (आठों) दिग्गज पर्वतों की ऊँचाई सौ योजन, भूविस्तार सौ योजन और शिखर तल का विस्तार पचास योजन प्रमाण है। इन पर्वतों के शिखर तोरण आदि से युक्त रत्नमय प्रासादों, वनों, वेदियों एवं अद्भुत वैभवशाली जिन चैत्यालयों से अलंकृत हैं। पूर्वादि दिशाओं में पद्म, नील, स्वस्तिक, अञ्जन, कुमुद, पलाश, अवतंश और रोचन नाम के आठ दिग्गज पर्वत हैं। अर्थात् सुदर्शनमेरु के पूर्व दिशा गत भद्रशालवन के मध्य से बहने वाली सीता के उत्तर तट पर पद्मोत्तर और दक्षिण तट पर नीलवान् नाम के दिग्गज हैं। इसी मेरु की दक्षिणदिशा गत देवकुरु भोगभूमि के मध्य सीतोदा महानदी के पूर्व तट पर स्वस्तिक और पश्चिम तट पर अञ्जन नाम के दिग्गज हैं। सुमेरु की पश्चिम दिशागत भद्रशाल वन के मध्य सीतोदा नदी के दक्षिण तट पर कुमुद और उत्तर तट पर पलाश नाम के दिग्गज हैं तथा मेरु को उत्तर दिशागत उत्तरकुरु भोगभूमि के मध्य सीता के पश्चिम तट पर अवतंश और पूर्व तट पर रोचन नाम के दिग्गज पर्वत हैं। इन दिग्गजों के शिखरों पर स्थित मणिमय भवनों में पूर्व पुण्य के उदय से अपने-अपने पर्वतों सदृश नामों से युक्त आठ व्यन्तर देव अपने-अपने देव देवियों के परिवार से युक्त होते हुए सुखपूर्वक निवास करते हैं ॥९०-९५॥

अब विदेह नाम की सार्थकता एवं उसके भेद प्रभेद कहते हैं—

विदेहा मुनयो यत्र भवन्त्यनेकशोऽनिशम्।
रत्नत्रयतपोयोगैः ससार्थनामभृन्महान् ॥९६॥
विदेहो राजते वेदिवक्षाराद्र्यन्तराश्रितः।
विभङ्गाभिर्युतः पूर्वापरद्व्यनेकभेदभाक् ॥९७॥
विभक्तः सीतया पूर्वविदेहोऽसौ द्विधा भवेत्।
उत्तराख्योऽपरो दक्षिणश्चेति स द्विनामभृत् ॥९८॥
सीतोदया कृतो द्वेधा परदिग्भागसंस्थितः।
दक्षिणोत्तरभेदाभ्यां स्याद्विदेहोऽपराभिधः॥९९॥
सीताया उत्तरे भागे नीलाद्रेर्दक्षिणेऽस्ति च।
उत्तरप्राग्विदेहः पूर्वे ह्युत्तरकुरुक्षितेः ॥१००॥

अर्थ—रत्नत्रय और तप के योग से यहाँ पर अनेक मुनिराज निरन्तर देह से रहित अर्थात् सिद्ध होते हैं, इसलिए वह 'विदेह' इस महान् सार्थक नाम को धारण किये हुए है। वेदियों और वक्षार पर्वतों से अन्तरित, विभंगानदियों से युक्त तथा दो और अनेक भेदों को धारण करता हुआ विदेह क्षेत्र

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

शोभायमान है (सुदर्शन मेरु से अन्तरित होता हुआ) पूर्व विदेह सीता महानदी के द्वारा उत्तर विदेह और दक्षिण विदेह के नाम से दो प्रकार का है। इसी प्रकार सीतोदा महानदी द्वारा विभाजित किया गया पश्चिम विदेह, दक्षिण विदेह और उत्तर विदेह के भेद से दो प्रकार का है। सीतानदी के उत्तर में, नील कुलाचल के दक्षिण में और उत्तरकुरु भोगभूमि के पूर्व में उत्तर-पूर्व विदेह क्षेत्र है ॥९६-१००॥

अब भद्रशाल आदि की वेदियों का प्रमाण कहते हैं—

अस्यादौ भद्रशालस्य रत्नवेदी क्षयातिगा।
शतपंचधनुर्व्यासाद्विक्रोशप्रोन्नता भवेत् ॥१०१॥
योजनानां सहस्राणि शतपंचाग्रषोडश।
तथा द्विनवतिर्भागौ द्वौ कृतैकोनविंशतेः ॥१०२॥
इत्यायामोऽस्ति वेद्याश्च तथान्या वनवेदिकाः।
सप्तैवास्याः समाना विज्ञेयादीर्घोच्चविस्तरैः ॥१०३॥

अर्थ—इस उत्तर-पूर्व विदेह क्षेत्र के प्रारम्भ में भद्रशाल वन की क्षय से रहित रत्नमय वेदी है। यह वन वेदी दो कोस ऊँची, पाँच सौ धनुष चौड़ी और १६५९२ $\frac{२}{१९}$ योजन लम्बी है। इसी प्रकार अन्य सात (३ वेदिकाएँ भद्रशाल की, २ देवारण्य और २ भूतारण्य की =७) वन वेदिकाओं की दीर्घता एवं विस्तार आदि का प्रमाण जानना चाहिए। अर्थात् आठों वन वेदिकाएँ दो कोस ऊँची, ५०० धनुष चौड़ी और १६५९२ $\frac{२}{१९}$ योजन लम्बी हैं ॥१००-१०२॥

अब विदेहस्थ कच्छा देश की अवस्थिति एवं उसका प्रमाण कहते हैं—

ततोऽस्याः पूर्वदिग्भागे दक्षिणे नीलशैलतः।
सीताया उत्तरे कच्छाख्यः स्याद् विषय ऊर्जितः ॥१०४॥
योजनानां सहस्त्रे द्वे द्वादशाग्रशतद्वयम्।
सार्धक्रोशत्रयं चेति व्यासोऽस्य पूर्वपश्चिमे ॥१०५॥
आयामो वेदिकातुल्यो दक्षिणोत्तरभागयोः।
विदेहविस्तृतेः सीताव्यासोनस्यार्धसम्मितः ॥१०६॥

अर्थ—इस भद्रशाल वन वेदी के पूर्व में, नील कुलाचल के दक्षिण में और सीता सरित् के उत्तर में कच्छा नाम का एक महान् देश है। इस देश की पूर्व-पश्चिम चौड़ाई दो हजार दो सौ बारह योजन (२२१२ योजन) और ३$\frac{१}{२}$ कोश है तथा दक्षिणोत्तर लम्बाई वेदिका की लम्बाई प्रमाण अर्थात् १६५९२ $\frac{२}{१९}$ योजन है। विदेह के विस्तार में सीतानदी का व्यास घटाकर आधा करने पर कच्छा देश के आयाम का प्रमाण प्राप्त हो जाता है। यथा-विदेह का विस्तार ३३६८४ $\frac{४}{१९}$ योजन और सीता का विस्तार ५०० योजन प्रमाण है, अतः ३३६८४$\frac{४}{१९}$ -५००÷२=१६५९२ $\frac{२}{१९}$ योजन कच्छा देश के आयाम का प्रमाण प्राप्त होता है ॥१०४-१०६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब कच्छ देश स्थित विजयार्ध पर्वत का वर्णन करते हैं–

अस्य देशस्य मध्येऽर्द्धे विजयार्धाचलो महान्।
शुक्लवर्णः समुत्तुङ्गः पंचविंशतियोजनैः ॥१०७॥
पंचाशद्योजनव्यासो भूम्यवगाहसंयुतः।
क्रोशाग्रयोजनैः षड्भिः स्याद्विद्येशामराश्रितः ॥१०८॥
विजयव्यासमानेन पूर्वापरायतः समः।
मूर्ध्नि स्वोच्चचतुर्थांशतुङ्गकूटनवाङ्कितः ॥१०९॥
दशयोजनमभ्येत्यभूमेरस्य द्वयो र्दिशोः।
श्रेण्यौ द्वे भवतो रम्ये दक्षिणोत्तरसंज्ञिके ॥११०॥
अद्रिदीर्घसमायामे दशयोजनविस्तृते।
तन्मध्येऽस्त्यद्रिविस्तीर्णस्त्रिंशत्प्रमाणयोजनैः ॥१११॥
तयोः श्रेण्योर्द्वयोः सन्ति नगराणि खगामिनाम्।
महान्ति पंचपंचाशत्प्रत्येकं भूषितानि च ॥११२॥
जिनागारैर्महासौधैः शालगोपुरसद्मनैः।
प्रागुक्तनामदीर्घादिवर्णनान्तर्युतान्यपि ॥११३॥
पुनर्द्वयोर्दिशोर्गत्वा जे दशास्य योजनानि च।
प्रागुक्तायामविस्तारे श्रेण्यौ द्वे स्तो मनोहरे ॥११४॥
सन्त्येतयोर्द्वयोः श्रेण्योर्बहुदिव्यपुराणि च।
सौधर्मैशानकल्पस्थाभियोगिक सुधाशिनाम् ॥११५॥
ततोऽप्यूर्ध्वं महाद्रेश्च गत्वा सत्पञ्च योजनान्।
दशयोजनविस्तीर्णं मस्तकं स्यान्मनोहरम् ॥११६॥

अर्थ—इस कच्छ देश के मध्य में विजय-देश को आधा करने वाला शुक्ल वर्ण का एक महान् विजयार्ध नाम का पर्वत है। जिसकी ऊँचाई पच्चीस योजन, भूव्यास पचास योजन, अवगाह (नींव) सवा छह योजन तथा पूर्व पश्चिम लम्बाई कच्छ देश के व्यास सदृश अर्थात् २२१२ योजन ३ $\frac{१}{२}$ कोश है। इस पर्वत पर विद्याधर और देवगण निरन्तर निवास करते हैं। इसके शिखर तल पर पर्वत की ऊँचाई के चतुर्थ भाग प्रमाण ऊँचाई वाले नौ कूट अवस्थित हैं। पर्वत की उत्तर-दक्षिण दोनों दिशाओं में भूमि से दश योजन ऊपर दक्षिण-उत्तर नाम वाली दो रमणीक श्रेणियाँ हैं, जिनका विस्तार दस योजन और पूर्व-पश्चिम आयाम पर्वत के आयाम सदृश अर्थात् २२१२ योजन ३ $\frac{१}{२}$ कोश प्रमाण है। दस-दस योजन की दोनों श्रेणियाँ निकल जाने के बाद पर्वत के मध्य में विजयार्ध का विस्तार तीस योजन प्रमाण रहता है। उन उत्तर-दक्षिण दोनों श्रेणियों में से प्रत्येक श्रेणी पर विद्याधरों की पचपन-पचपन नगरियाँ

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

हैं, जो जिनचैत्यालयों, उन्नत प्रासादों, प्राकारों, गोपुरों एवं उत्तम वनों से विभूषित हैं। इन नगरों के नाम एवं दीर्घता आदि के प्रमाण का वर्णन पूर्वोक्त प्रकार ही है। इसके बाद पुनः पर्वत की ऊँचाई में दस योजन ऊपर जाकर उत्तर-दक्षिण दोनों दिशाओं में पूर्वोक्त आयाम (२२१२ योजन ३$\frac{१}{२}$कोश) और विस्तार (१० योजन) से युक्त दो मनोहर श्रेणियाँ हैं। इन दोनों श्रेणियों पर सौधर्मैशान कल्पवासी देव सम्बन्धी आभियोग्य देवों के अनेक दिव्य नगर हैं। पर्वत की ऊँचाई में इससे भी पाँच योजन ऊपर जाकर अत्यन्त मनोहर और दश योजन चौड़ा शिखर तल प्राप्त होता है ॥१०७-११६॥

अब विजयार्धस्थ कूटों के नाम, स्वामी, प्रमाण एवं परिधि आदि का सविस्तार वर्णन करते हैं–

सिद्धाख्यं दक्षिणार्धं च खण्डप्रपातसंज्ञकम्।
पूर्णभद्राह्वयं कूटं विजयार्धाभिधं ततः ॥११७॥
माणिभद्रं तमिश्राख्यमुत्तरार्धाभिधानकम्।
कूटं वैश्रवणं तत्र नवकूटान्यमून्यपि ॥११८॥
सिद्धकूटे जिनागारः प्राग्वर्णनायुतो भवेत्।
खण्डप्रपातकूटाग्रे नट्टमाली सुरो वसेत् ॥११९॥
तमिश्रे कृतिमाली च षट्कूटाग्रस्थवेश्मसु।
स्वकूटसमनामानो वसन्ति व्यन्तरामराः ॥१२०॥
व्यासो मूले च कूटानां क्रोशाग्रयोजनानि षट्।
मध्ये सार्धद्विगव्यूत्यग्रयोजनचतुष्टयम् ॥१२१॥
योजनत्रितयं मूर्ध्नि ह्यादौ परिधिरुत्तमा।
विस्तृता योजनैर्विंश प्रमैर्मध्ये च मध्यमा ॥१२२॥
परिधिः स्याद्धि किञ्चिन्न्यूनपञ्चदशयोजनैः।
शिखरे योजनानां सविशेषा नवसंख्यया ॥१२३॥

अर्थ–विजयार्ध पर्वत के दश योजन विस्तीर्ण शिखर तल पर सिद्ध, दक्षिणार्ध, खण्डप्रपात, पूर्णभद्र, विजयार्ध, माणिभद्र, तमिस्त्रगुह, उत्तरार्ध और वैश्रवण नाम के नौ कूट हैं। इनमें से प्रथम सिद्धकूट पर पूर्व वर्णन के अनुसार ही जिनचैत्यालय है। खण्डप्रपातकूट पर नट्टमाली (नृत्यमाल) और तमिस्त्रगुह कूट पर कृतमाली तथा अवशेष छह कूटस्थ प्रासादों में अपने-अपने कूट नामधारी व्यंतर देव रहते हैं। कूटों की चौड़ाई मूल में सवा छह (६ $\frac{१}{४}$) योजन, मध्य में चार योजन ढाई कोस (४ योजन २ $\frac{१}{२}$ कोस) और शिखर पर तीन (३) योजन प्रमाण है। कूट के मूलभाग की अर्थात् आदि की उत्तम परिधि का प्रमाण बीस योजन, कूट के मध्य भाग की मध्यम परिधि का प्रमाण कुछ कम पन्द्रह योजन और शिखर पर कूटों की परिधि का प्रमाण कुछ अधिक नौ योजन प्रमाण है ॥११७-१२३॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब विजयार्धस्थ तमिस्र एवं प्रपात गुफा का सविस्तार वर्णन करते हैं–

पञ्चाशद्योजनायामे योजनाष्टसमुन्नते।
गुहे तमिश्रकाण्डप्रपाताख्ये स्तोऽत्र पर्वते ॥१२४॥
योजनद्वादशव्यासे तिमिरोष्माभिपूरिते।
महावज्रकपाटद्वयाङ्किते शाश्वते शुभे ॥१२५॥
अस्योभयोर्दिशोर्नित्यं वनं द्विक्रोशविस्तृतम्।
वेदिकातोरणैर्युक्तं जिनालयपुरादिभिः ॥१२६॥
इत्येषा वर्णना सर्वा विदेहे द्विविधेऽखिले।
द्वात्रिंशद्विजयार्धानां समानास्त्युन्नतादिभिः ॥१२७॥

अर्थ–इस विजयार्ध पर्वत में तमिस्र और प्रपात नाम की दो गुफाएँ हैं, जो पचास योजन लम्बी, आठ योजन ऊँची बारह योजन चौड़ी, अन्धकार और उष्णता से भरी हुईं, दो महावज्र कपाटों से युक्त, शाश्वत और शुभ हैं। पर्वत की दोनों दिशाओं में जिन चैत्यालयों, नगरों, वेदिकाओं एवं तोरणों से युक्त दो कोस चौड़े शाश्वत वन हैं। इसी प्रकार का यह समस्त वर्णन पूर्व विदेह, अपर विदेह में अथवा बत्तीस विदेहों में और बत्तीस विजयार्धों की ऊँचाई आदि में समान रूप से है ॥१२४-१२७॥

अब चौंसठ कुण्डों का वर्णन करते हैं–

नीलाद्र्यधःस्थ भूभागे सार्धद्विषष्टियोजनैः।
विस्तृते चावगाहाढ्ये दशयोजनसंख्यया ॥१२८॥
वेदिकातोरणद्वारोपेते स्वच्छाम्बुभिर्भृते।
द्वे कुण्डे स्तः पृथग् रक्तारक्तोदोत्पत्तिकारणे ॥१२९॥
इत्युक्तविस्तृताद्यैः सर्वाणि कुण्डानि धीधनैः।
सदृशानि चतुःषष्टिर्ज्ञेयानि शाश्वतानि च ॥१३०॥
नीलाद्रिनिषधाधःस्थभूमिष्वति शुभान्यपि।
चतुःषष्ठिनदीनां स्वोत्पत्तिभूतानि नान्यथा ॥१३१॥

अर्थ–नीलपर्वत के अधोभाग में भूमि पर साढ़े बासठ योजन चौड़े, दस योजन गहरे, वेदिका और तोरणों से संकुलित तथा स्वच्छ जल से भरे हुए रक्ता-रक्तोदा महानदियों की उत्पत्ति के कारण भूत पृथक्-पृथक् दो कुण्ड हैं। इस प्रकार विद्वानों के द्वारा समस्त चौंसठ (६४) ही शाश्वत कुण्ड पूर्वोक्त कुण्डों के विस्तार आदि के सदृश ही कहे गये हैं, ऐसा जानना चाहिए। नील और निषध कुलाचलों के अधोभाग में पृथ्वी पर (विदेहस्थ गंगा, सिन्धु, रक्ता और रक्तोदा इन) चौंसठ नदियों के (पतन और) उत्पत्ति के कारणभूत अत्यन्त शुभ चौंसठ कुण्ड हैं, इसमें संशय नहीं है ॥१२८-१३१॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब विदेहस्थ रक्ता रक्तोदा का स्वरूप कहते हैं–

कुण्डयोर्दक्षिणद्वाराभ्यां निर्गत्योर्म्मिसंकुले।
क्रोशाग्रयोजनैः षड्भिरादौ विस्तारसंयुते ॥१३२॥
अर्धक्रोशावगाहे द्वे रक्ता रक्तोदसंज्ञिके।
नद्यौगुहास्थदेहल्या-अधोभागे विनिर्गते ॥१३३॥
अद्रेर्गुहान्तरे ज्ञेयो विस्तारः खण्डवर्जितः।
अष्टयोजनसंख्यो द्विनद्योः सर्वत्र सन्निभः ॥१३४॥
ततोऽभ्येत्य क्रमान्नद्यौ सार्धद्विषष्टियोजनैः।
विस्ताराद्यवगाहे द्वे पञ्चक्रोशैर्मनोहरे ॥१३५॥
सीतायास्तोरणद्वाराभ्यां प्रविष्टे क्षयोज्झिते।
द्विपार्श्वस्थमहावेदीवनतोरणभूषिते ॥१३६॥
चतुर्दशसहस्राणि वनवेद्याद्यलंकृताः।
प्रत्येकमनयोः सन्ति परिवाराख्यनिम्नगाः ॥१३७॥

अर्थ–कल्लोलावलियों से व्याप्त, सवा छह योजन चौड़ी और अर्ध कोस गहरी रक्ता-रक्तोदा नाम की दोनों नदियाँ निषध कुलाचल के मूल में स्थित कुण्डों के दक्षिण द्वारों से निकलकर विजयार्ध स्थित गुफा की देहली के नीचे से जाती हुई गुफा में प्रवेश करतीं हैं। गुफा के भीतर इन सरिताओं का विस्तार हानि-वृद्धि से रहित सर्वत्र समान रूप से आठ योजन प्रमाण जानना चाहिए। इसके बाद मन को हरण करने वालीं ये दोनों नदियाँ क्रमशः साढ़े बासठ योजन विस्तार और पाँच कोस के अवगाह को प्राप्त होतीं हुई, दोनों पार्श्वभागों में महान् वेदियों, वनों एवं तोरणों से विभूषित और अनाद्यनिधन सीता-सीतोदा की वेदियों के तोरण द्वारों से होती हुई सीता-सीतोदा में प्रवेश करतीं हैं। इन दोनों में से प्रत्येक की वन वेदी आदि से अलंकृत चौदह-चौदह हजार परिवार नदियाँ हैं ॥१३२-१३७॥

अब सीता सीतोदा के तोरणों एवं गोपुरों के आयाम आदि का वर्णन करते हैं–

सीतायास्तोरणद्वारयोरायामः पृथग्विधः।
सार्धद्विषष्टिसंख्यानि योजनानि तथोन्नतिः ॥१३८॥
योजनानां च पादोनचतुर्नवतिसम्मिता।
अर्धयोजनविस्तारो बह्व्यो, जिनेन्द्रमूर्तयः ॥१३९॥
तयोर्गोपुरयोर्मूर्ध्नि स्युः पुराणि सुधाभुजाम्।
युक्तानि वनवेद्याद्यैस्तुङ्गधामजिनालयैः ॥१४०॥
इत्येषा वर्णना सर्वा ज्ञातव्या सदृशी बुधैः।
चतुःषष्टिनदीनां चावगाहाविस्तरादिभिः ॥१४१॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सीतासीतोदयोर्नद्योर्द्वाराणां तटयोर्द्वयोः।
चतुःषष्टिप्रमाणानां सरित्प्रवेशादायिनाम् ॥१४२॥

अर्थ—सीता और सीतोदा के तोरण द्वारों का पृथक्-पृथक् आयाम साढ़े बासठ योजन, ऊँचाई एक पाद से कम चौरानवे ($९३\frac{३}{४}$) योजन और नींव अर्ध योजन प्रमाण है। इन दोनों नदियों के गोपुरों के ऊपर अत्यधिक जिनेन्द्र मूर्तियाँ और देवों के नगर हैं, वे नगर उत्तम जिनालयों, उन्नत प्रासादों, वनों एवं वेदियों आदि से संयुक्त हैं। सीता-सीतोदा नदियों के दोनों तटों पर स्थित नदियों को प्रवेश देने वाले चौंसठ (प्रवेश) द्वारों का तथा गंगा-सिन्धु (३२) और रक्ता-रक्तोदा (३२) इन ६४ नदियों के विस्तार एवं अवगाह आदि के प्रमाण का समस्त वर्णन विद्वानों के द्वारा इसके सदृश ही जानने योग्य है ॥१३८-१४२॥

अब कच्छादेश का छह खण्डों में विभाजन, आर्य खण्ड की अवस्थिति और म्लेच्छ खण्डों का स्वरूप कहते हैं—

विजयार्धाद्रिणा रक्तारक्तोदाभ्यां बभूव च।
कच्छादेशः सषट्खण्ड आर्यैकम्लेच्छपञ्चभृत् ॥१४३॥
सीताया उत्तरे भागे विजयार्धस्य दक्षिणे।
रक्तारक्तोदयोर्मध्येऽस्त्यार्यखण्डं शुभाकरम् ॥१४४॥
अन्यानि म्लेच्छखण्डानि धर्मदूराणि पञ्च हि।
धर्मकर्मबहिर्भूतैः म्लेच्छैर्भृतानि दुःकुलैः ॥१४५॥

अर्थ—विजयार्ध पर्वत और रक्ता-रक्तोदा इन दो नदियों से कच्छा देश के छह खण्ड होते हैं, उनमें से एक आर्य और पाँच म्लेच्छ खण्ड हैं। सीतानदी के उत्तर में, विजयार्ध के दक्षिण में और रक्ता-रक्तोदा के मध्य में अत्यन्त शुभ चेष्टाओं से युक्त आर्य खण्ड है। शेष पाँच म्लेच्छ खण्ड धर्म रहित हैं और धर्म कर्म से बहिर्भूत तथा खोटे कुलोत्पन्न म्लेच्छों से भरे हैं ॥१४३-१४५॥

अब पृथक्-पृथक् तीन खण्डों का, छह खण्डों का और विजयार्ध के समीप रक्ता-रक्तोदा का विस्तार कहते हैं—

नीलाचलसमीपे त्रिखण्डानां विस्तरः पृथक्।
योजनानां त्रयस्त्रिंशदग्रसप्तशतानि च ॥१४६॥
क्रोशैकस्य षडंशेनोनद्विक्रोशयुतान्यपि।
षट्खण्डानां तथायामोऽष्टौ सहस्राणि द्वे शते ॥१४७॥
एकसप्ततिसंयुक्ते योजनानां पृथक् पृथक्।
एकोनविंश भागानां भागैको योजनस्य च ॥१४८॥
मूले रजतशैलस्य विस्तारः सरितो द्वयोः।
योजनानि चतुस्त्रिंशत् सार्धक्रोशायुतान्यपि ॥१४९॥
विजयार्धसमीपे हि त्रिखण्डानां सुविस्तृतिः।
योजनानां द्विसप्ताधिकानि सप्तशतानि च ॥१५०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

तथा पञ्चसहस्राणि धनुषां षट्शतानि च।
षट्षष्टिरेव हस्तौ द्वावंगुलान्यपि षोडश ॥१५१॥

अर्थ—नील कुलाचल के समीप में कच्छ देश के तीन खण्डों का पृथक्-पृथक् विस्तार सात सौ तैंतीस योजन छह भागों से हीन दो कोस ($७३३\frac{११}{१२}$ योजन) प्रमाण है, तथा छह खण्डों का पृथक्-पृथक् आयाम आठ हजार दो सौ इकहत्तर योजन और एक कला ($८२७१\frac{१}{१९}$ योजन) प्रमाण है। विजयार्ध पर्वत के मूल में रक्ता-रक्तोदा नदियों में से प्रत्येक का विस्तार चौंतीस योजन और डेढ़ कोस से कुछ अधिक है। अर्थात् $३४\frac{३}{८}$ योजन प्रमाण है। विजयार्ध पर्वत के समीप में तीनों खण्डों में से प्रत्येक खण्ड का विस्तार ७१४ योजन पाँच हजार छह सौ छियासठ धनुष, दो हाथ और सोलह अंगुल प्रमाण है ॥१४६-१५१॥

अब इस उपर्युक्त प्रमाण को लाने का विधान कहते हैं—

रक्तारक्तोदाव्यासोनकच्छादेशत्रिभागीकृतः विजयार्ध पार्श्वे आर्य म्लेच्छखण्डानां प्रत्येक विष्कम्भः चतुर्दशाग्रसप्तशतयोजनानि पंचसहस्रषट्शतषट्षष्टिधनूंषि च द्वौ करौ षोडशांगुलानि।

अर्थ—रक्ता-रक्तोदा के व्यास से हीन कच्छा देश के व्यास को तीन से भाजित करने पर विजयार्ध के समीप आर्यादि छह खण्डों में से प्रत्येक खण्ड का विस्तार प्राप्त होता है। यथा-कच्छा देश के विष्कम्भ का प्रमाण $२२१२\frac{७}{८}$ -($३४\frac{३}{८}$ × २ रक्ता-रक्तोदा का वि.)÷ ३=७१४ योजन, ५६६६ धनुष, २ हाथ और १६ अंगुल प्रत्येक खण्ड का विस्तार है।

अब सीता के तट पर स्थित तीन खण्डों का विस्तार, क्षेमपुरी की अवस्थिति, प्रमाण एवं अन्य अन्य विशेषताओं का वर्णन करते हैं—

सीतातटे त्रिखण्डानां विष्कम्भः षट्शतानि च।
षण्णवत्यधिकान्येव योजनानां पृथक् पृथक् ॥१५२॥
गव्यूत्येकषडंशेनोनानि क्षेमाह्वया पुरी।
आर्यखण्डस्य मध्येऽस्ति महती धर्ममातृका ॥१५३॥
योजनद्वादशायामा नवयोजनविस्तृता।
सहस्त्रगोपुरद्वारैः क्षुल्लकद्वारपंक्तिभिः ॥१५४॥
शतपञ्चप्रमै रत्नमयैः खातिकयावृता।
चतुःपथसहस्त्रैः सहस्त्रद्वादशवीथिभिः ॥१५५॥
तुङ्गसौधजिनागारैर्-जैनसंघैर्जिनादिभिः ।
धर्मोत्सवशतैर्नित्यं भाति धर्मखनीव सा ॥१५६॥
मिथ्यात्वमठदुःशास्त्रकुदेवलिङ्गिवर्जिता ।
मिथ्यामतकुपाखण्डिदूरा वर्णत्रयान्विता ॥१५७॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अत्रसप्तमहामेघा भ्रमराञ्जनसन्निभाः।
वर्षाकाले च वर्षन्ति सप्तसप्तदिनान्यपि ॥१५८॥
कुन्देन्दु सदृशा द्रोणमेघा द्वादशसंख्यकाः।
महासलिलसम्पूर्णा योग्यं कुर्वन्ति वर्षणम् ॥१५९॥
एकैकस्य सुमेघस्य सन्ति श्रीपतनाः शुभाः।
स्थूला नीरौघसंयुक्ता विंशत्यग्रशतत्रयम् ॥१६०॥
ततोऽतिवृष्ट्यनावृष्टिदुर्भिक्षाद्याः किलेतयः।
जायन्तेऽत्र न च निष्टा अन्ये प्रजाऽसुखप्रदाः ॥१६१॥
उत्पद्यन्तेऽत्र तीर्थेशास्त्रिजगन्नाथसेविताः।
गणेशा गणनातीताश्चरमाङ्गाश्च योगिनः ॥१६२॥
चक्रिणो वासुदेवाश्च बलदेवास्तयोद्विषः।
नारदाः कामदेवाद्या जायन्ते नृसुरार्चिताः ॥१६३॥
राजा तथाधिराजश्च महाराजोऽर्धमण्डली।
मण्डलीको महामण्डलीकस्त्रिखण्डभूपतिः ॥१६४॥

अर्थ—सीता महानदी के तीर पर तीनों खण्डों का पृथक्-पृथक् विस्तार छठे भाग से हीन छह सौ छियानवे योजन ($६९६\frac{२३}{२८}$ यो.) प्रमाण है। आर्य खण्ड के मध्य में श्रेष्ठ धर्ममाता के सदृश क्षेमा नाम की नगरी है। इस नगरी का आयाम बारह योजन और विस्तार नौ योजन प्रमाण है तथा यह नगरी एक हजार गोपुर द्वारों एवं पाँच सौ क्षुल्लक (लघु) द्वारों से युक्त तथा रत्नमय खाई से वेष्टित है। धर्म की खान (आकर) के समान यह क्षेमा नगरी एक हजार चतुष्पथों, बारह हजार वीथियों, उन्नत प्रासादों, जिन चैत्यालयों, जिनसंघों, जिन प्रतिमाओं एवं नित्य प्रति होने वाले सहस्त्रों धर्म महोत्सवों के द्वारा शोभायमान रहती है। मिथ्या मठों अर्थात् मिथ्यात्व के पोषक मिथ्या आयतनों, कुशास्त्रों, कुदेवों एवं कुलिंगियों से रहित, मिथ्यामत और पाखण्डियों से विहीन यह नगरी तीन वर्णों के मनुष्यों से सदा समन्वित रहती है। यहाँ पर वर्षा काल में भ्रमर एवं अञ्जन के सदृश सात प्रकार के महामेघ सात-सात दिन तक वर्षा करते हैं। कुन्द पुष्प और चन्द्र के सदृश प्रभा वाले तथा प्रचुर जल से परिपूर्ण बारह द्रोणमेघ भी योग्य वर्षा करते हैं। इनमें से एक-एक के स्थूल जल के समूह से युक्त अत्यन्त शुभ तीन सौ बीस श्रीपतन (सरित्प्रपात) होते हैं। इस नगरी में कभी अतिवृष्टि, अनावृष्टि, दुर्भिक्ष आदि तथा और भी अन्य ईतियाँ (अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मूसक, सलभ, शुक्र, स्वचक्र और परचक्र ये सात ईतियाँ हैं) नहीं होती। प्रजा को दुख देने वाले अन्य भी कोई अनिष्ट वहाँ नहीं होते। वहाँ पर तीन लोक के इन्द्रों (१०० इन्द्रों) से सेवित तीर्थंकर देव, गणनातीत गणधर एवं चरमशरीरी मुनिराज उत्पन्न होते हैं। मनुष्यों और देवों से पूजित चक्रवर्ती, वासुदेव, प्रतिवासुदेव, बलदेव, नारद और कामदेव आदि भी

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

उत्पन्न होते हैं तथा राजा, अधिराजा, महाराजा, अर्धमण्डल, मण्डलीक, महामण्डलीक और त्रिखण्डपति भी उत्पन्न होते हैं ॥१५२-१६४॥

अब राजाधिराजा आदि के लक्षण कहते हैं—

चक्रीषट्खण्डभूनाथः शतपञ्चमहीभृताम्।
पतिः स्यादधिराजश्च सहस्त्रभूभुजां पतिः ॥१६५॥
महाराजो महीपानां द्विसहस्त्रप्रमाजुषाम्।
स्वाम्यर्धमण्डलीकः स्याच्चतुः सहस्त्रभूभृताम् ॥१६६॥
नायको मण्डलीकश्चाष्टसहस्त्रमहीभुजाम्।
पतिर्भवेन्महामण्डलीको भूपशिरोमणिः ॥१६७॥
सहस्त्रषोडशानां सद्राज्ञां मुकुटशालिनाम्।
पतिः स्यादर्धचक्री च नृविद्येशसुरार्चितः ॥१६८॥
द्विषोडशसहस्त्राणां राज्ञां शेखरशालिनाम्।
स्वामी षट्खण्डभूनाथश्चक्रीरत्ननिधीश्वरः ॥१६९॥

[1]अत्रोपयोगिनश्लोका—

अष्टादशसंख्यानां श्रेणीनामधिपतिर्विनम्राणाम्।
राजास्यान्मुकुटधरः कल्पतरुं सेव्यमाना ॥१॥
पञ्चशतनरपतीनामधिराजोधीश्वरो भवतिलोके।
राजसहस्त्राधिपतिः प्रतीयतेऽसौ महाराजः ॥२॥
द्विसहस्त्रराजनाथो मनीषिभिर्भण्यतेर्धमण्डलिकः।
मण्डलिकश्चतथास्याच्चतुः सहस्त्रावनीशपतिः ॥३॥
अष्टसहस्त्रमहीपतिनायक माहु बुधामहामण्डलिकम्।
षोडशराजसहस्त्रैर्विनम्यमानं त्रिखण्डधरणीशम् ॥४॥
षट्खण्डभरतनाथं द्वात्रिंशद्धरणिपतिं सहस्त्राणाम्।
दिव्यमानुष्य भोगागारं विदुरिह् धरम् ॥५॥

अर्थ—(अठारह श्रेणियों के स्वामी को अथवा एक करोड़ ग्रामों के अधिपति को राजा कहते हैं।) ५०० राजाओं का अधिपति अधिराजा, एक हजार राजाओं का स्वामी महाराजा, दो हजार राजाओं का स्वामी अर्धमण्डलीक, चार हजार राजाओं का स्वामी मण्डलीक, आठ हजार राजाओं का स्वामी महामण्डलीक, सोलह हजार मुकुटबद्ध राजाओं का अधिपति अर्धचक्री (त्रिखण्डाधिपति) और बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजाओं का स्वामी छह खण्डों का अधिपति, चौदह रत्न एवं नौ निधियों का अधीश्वर चक्रवर्ती होता है ॥१६५-१६९॥

---

१. एते श्लोकाः अ. ज. प्रत्यो न सन्ति। टिप्पण्यामेव प्रदर्शिताः ब. न, प्रत्योः मूले समा वेशिताः।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

उपयोगी (क्षेपण) श्लोकों का अर्थ–

अठारह श्रेणियों (१ सेनापति, २ गणपति, ३ वणिक्पति, ४ दण्डपति, ५ मन्त्री, ६ महत्तर, ७ तलवर, ८ चतुर्वर्ण ११ चतुरंग, १५ पुरोहित, १६ अमात्य, १७ महामात्य और १८ प्रधान) के अधिपति से जो कल्पवृक्ष के सदृश सेव्यमान है उसे मुकुट बद्ध राजा कहते हैं। ५०० राजाओं से सेव्यमान को अधिराजा, १००० राजाओं के स्वामी को महाराजा, २००० राजाओं से सेव्यमान को अर्धमण्डलीक, ४००० राजाओं से सेव्यमान को मण्डलीक, ८००० राजाओं के स्वामी को महामण्डलीक, १६००० राजाओं से सेवित को अर्धचक्री अर्थात् त्रिखण्डाधिपति कहते हैं, और ३२००० राजाओं के अधिपति को जो कि छह खण्ड का अधिपति है, दिव्य मनुष्य शरीर से युक्त और भोगों की खान है, उसे चक्रवर्ती कहते हैं ॥१-५॥

क्षेमापुरी के वनों की संख्या कहते हैं–

क्षेमापुर्याश्चतुर्दिक्षु प्रत्येकं सद्वनानि च।
षष्ट्यग्रत्रिशतानि स्युः फलपुष्पयुतान्यपि ॥१७०॥

अर्थ–क्षेमापुरी की चारों दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में फलों एवं पुष्पों से युक्त तीन सौ साठ-तीन सौ साठ उत्तम वन हैं ॥१७०॥

अब चक्रवर्ती की दिग्विजय का विस्तृत व्याख्यान करते हुए सर्वप्रथम दक्षिण दिग्विजय का वर्णन करते हैं–

तत्रोत्पन्नो हि चक्रेशः प्राप्य रत्नचतुर्दश।
निधीन्नवषडङ्गाढ्यो निर्याति दिग्जयाप्तये ॥१७१॥
क्रमात् स साधयन् भूपान् दक्षिणाभिमुखेन च।
गत्वा सीतासरिद्द्वारे स्वसैन्येन वसेत्सुधीः ॥१७२॥
तत्र सेनापतिं चक्री नियोज्य बलरक्षणे।
दिव्यं रथंमुदारुह्य सरिद् द्वारं प्रविश्य च ॥१७३॥
गत्वा नद्यन्तरे द्वादशयोजनानि सद्धनुः।
आदाय तन्निनादेन कम्पयन् नृखगाऽमरान् ॥१७४॥
अमोघाख्यं स्फुरद्वीप्रं शरं मुञ्चति पाणिना।
मागधावासमुद्दिश्य मागधद्वीपसंस्थितम् ॥१७५॥
चक्रिनामाङ्कितो बाणः कुर्वन् स्वध्वनिना द्रुतम्।
भयं तद्वासिदेवानां पतेद्वेवसभाक्षितौ ॥१७६॥
मागधाख्योऽमराधीशः चक्रिनामाङ्कितं शरम्।
तं वीक्ष्य सहसादाय ज्ञात्वा चक्र्यागमं ध्रुवम् ॥१७७॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अभ्येत्य शिरसा नत्वा चक्रेशं पूजयेन्मुदा।
दिव्याभरणरत्नाद्यैस्तदाज्ञां प्रोद्वहन्स्वयम् ॥१७८॥
अनेन विधिनाऽसौ वरतनुं व्यन्तराधिपम्।
शक्त्या वरतनु द्वीपाधीशं प्रभासनिर्जरम् ॥१७९॥
सीतान्तःस्थं प्रभासाख्यं द्वीपनाथं प्रसाध्य च।
ताभ्यां नेपथ्य रत्नादीन् बहून् गृह्णाति लीलया ॥१८०॥
इति दक्षिणदिग्भागे वासिनोऽमरभूपतीन्।
जित्वोत्तरदिशां जेतुमायाति स जयन् नृपान् ॥१८१॥

अर्थ—उस क्षेमापुरी नगरी में उत्पन्न होने वाले चक्रवर्ती चौदह रत्न, नौ निधियों को प्राप्त कर सेना से युक्त होते हुए दिग्विजय की प्राप्ति के लिये निकलते हैं। क्षेमापुरी से निकलकर सर्वप्रथम दक्षिणाभिमुख जाते हैं, वहाँ के सर्व नरेन्द्रों को क्रम से जीतते हुए उत्तम बुद्धि का धारक वह चक्रवर्ती सीता नदी के द्वार पर जाकर अपनी सेना के साथ ठहर जाते हैं। वहाँ सेना की रक्षा में सेनापति को नियुक्त कर आप स्वयं दिव्य रथ पर चढ़कर सीता नदी के द्वार में प्रवेश करते हुए नदी के भीतर बारह योजन पर्यन्त जाकर उत्तम धनुष बाण ग्रहण करते हैं, जिसकी टंकार से मनुष्यों विद्याधरों एवं देवों को कम्पायमान करते हुए मागधद्वीप में स्थित मागध देव के निवास स्थान का उद्देश्य कर अमोघ नाम के देदीप्यमान वाण को अपने हाथों से छोड़ते हैं। चक्रवर्ती के नाम से अंकित वह वाण अपनी ध्वनि से वहाँ के निवासी देवों को भय उत्पन्न कराता हुआ देव सभा के मध्य में गिरता है। देवों का अधीश्वर मागध नाम देव, चक्रवर्ती के नाम से अंकित उस वाण को देखकर तथा उसे ग्रहण करके और निश्चय से चक्रवर्ती का आगमन जानकर शीघ्र ही वहाँ आकर उन्हें शिर से नमस्कार करता है, तथा दिव्य वस्त्राभूषणों एवं रत्नसमूहों से प्रसन्नतापूर्वक चक्रवर्ती की पूजा करता हुआ उनकी आज्ञा को स्वयं अपने शिर पर धारण करता है। इसी प्रकार वह चक्री अपनी शक्ति विशेष से वरतनुद्वीप के अधीश्वर वरतनु नाम को व्यन्तराधिप को और सीता के तट पर स्थित प्रभास द्वीप के स्वामी प्रभास देव को अपने आधीन करके उनके बहुत से वस्त्राभरण और रत्न आदि क्रीड़ा मात्र में ग्रहण कर लेता है। इसी प्रकार दक्षिण दिशा में निवास करने वाले देवों एवं राजाओं को जीतकर वह चक्री उत्तर दिशा गत राजाओं को जीतने की इच्छा से उत्तर में आता है ॥१७१-१८१॥

अब उत्तर दिग्विजय में विजयार्ध की गुफा से निस्तीर्ण होने का विधान बतलाते हैं—

क्रमेण विजयार्धाद्रि समीपेऽसौ बलावृतः।
रूप्याद्रि म्लेच्छखण्डादि साधनाय चिरं वसेत् ॥१८२॥
चक्र्यादेशेन सेनानीरश्वरत्नं खगामिनम्।
आरुह्याभ्येत्य रूप्याद्रेर्गुहाद्वारं सुदुर्गमम् ॥१८३॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

तमिश्राख्यं स्फुरद्दण्डरत्नेन घातयेत्तराम्।
तत् क्षणं स खमुत्पत्य म्लेच्छखण्डं व्रजेन्सुधीः ॥१८४॥
दण्डघातेन तद् द्वारकपाटोद्घाटनं भवेत्।
तन्मध्यादूष्मदाहौघो निर्याति दुस्सहस्तदा ॥१८५॥
षण्मासैर्यावदूष्मौघः शान्तः स्याच्छीतला गुहा।
तावत्सेनापतिर्म्लेच्छखण्डमेकं च साधयेत् ॥१८६॥
ततश्चक्रिमहासेना ह्यागत्याद्रिगुहामुखम्।
प्रविश्य यत्नतो गच्छेन्नद्या उभयपार्श्वयोः ॥१८७॥
क्रमेणास्य गुहामध्यभागे गत्वा नदीद्वयात्।
अग्रे गन्तुमहाशक्तं तत्सैन्यं चिन्तापरं वसेत् ॥१८८॥
गिरिद्विपार्श्वभित्तिस्थभूकुण्डाभ्यां विनिर्गते।
द्वे चोन्मग्नजलासंज्ञिका निमग्नजलाह्वये ॥१८९॥
नद्यौ द्वियोजनायामे महोर्मिचयसंकुले।
रक्तामध्ये प्रविष्टे प्रवहतस्तत्र दुर्गमे ॥१९०॥
तदा चक्रधरादेशात् स्थपत्याख्यो नृरत्नवाक्।
दिव्यशक्त्यानयोर्नद्योः सेतुबन्धं प्रबन्धयेत् ॥१९१॥
तेनोत्तीर्य शनैर्नद्यौ पुण्येन सैन्य मूर्जितम्।
गुहाया उत्तरद्वारेण निर्गच्छति शर्मणा ॥१९२॥

अर्थ—चक्रवर्ती म्लेच्छ आदि खण्डों को जीतने के लिये उत्तर दिशा में क्रम से जाते हुए अपनी महान् सेना सहित विजयार्ध के समीप बहुत काल तक रहता है। चक्रवर्ती के आदेश से सेनापति आकाशगामी घोड़े (अश्वरत्न) पर चढ़कर विजयार्ध पर्वत को तमिश्र नाम की गुफा द्वार को देदीप्यमान दण्डरत्न से अत्यन्त जोर से घात करता (ठोकर मारता) है और वह उत्तम बुद्धि का धारी सेनापति तत्क्षण आकाश में उड़ता हुआ म्लेच्छ खण्ड को जाता है। दण्डघात के द्वारा उस गुफा के दोनों द्वार खुल जाते हैं और उसके भीतर से अत्यन्त दुस्सह ऊष्मा (उष्णता) का समूह निकलता है। छह मास के बाद वह उष्णता का समूह शान्त होता है और गुफा शीतल होती है तब तक सेनापति एक म्लेच्छ खण्ड को साध (जीत) लेता है। इसके बाद चक्रवर्ती की महान् सेना विजयार्ध गुफा द्वार के मुख में प्रवेश करके नदी के दोनों पार्श्वभागों में यत्नपूर्वक चलती हुई क्रम से गुफा के मध्यभाग में पहुँचकर उन्मग्नजला और निमग्नजला इन दोनों नदियों को पार करने में असमर्थ होती हुई चिन्तातुर होकर ठहर गई। विजयार्ध पर्वत के दोनों पार्श्वभागों की भित्ति (मूल में) स्थित दो कुण्डों से निकलने वालीं उन्मग्नजला और निमग्नजला नाम की दोनों नदियाँ दो योजन लम्बी और महान् कल्लोलों के समूह से संकुलित होकर बहतीं हुईं अति दुर्गम रक्ता महानदी के मध्य में प्रविष्ट होती हैं। तब चक्रवर्ती के

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

आदेश से स्थपति नाम का (बढ़ई) मनुष्य रत्न दिव्य शक्ति के द्वारा दोनों नदियों पर सेतुबन्ध का प्रबन्ध करता है। पुण्ययोग से समस्त सेना उन दोनों नदियों को शनैः शनैः उत्तीर्ण कर गुफा के उत्तर द्वार से सुखपूर्वक निकल जाती है ॥१८२-१९२॥

अब मध्यम म्लेच्छ खण्ड में चक्रवर्ती के प्रदेश एवं उनके ऊपर आये हुए उपसर्ग का वर्णन करते हैं—

मध्यस्थम्लेच्छखण्डस्य धरामाक्रम्य चक्रभृत्।
तिष्ठेत् षडङ्गसंयुक्तो जेतुं म्लेच्छनृपान् बहून् ॥१९३॥
चक्रस्यागमं तदालोक्य म्लेच्छभूपा भयातुराः।
विज्ञापयन्ति चाभ्येत्याराध्य स्वकुलनिर्जरान् ॥१९४॥
तच्छ्रुत्वा ते क्रुधागत्यामरा मेघमुखाह्वयाः।
तत्सैन्यसुभटादीनां कुर्वन्त्युपद्रवं महत् ॥१९५॥
व्याघ्राद्यैर्भीषणैरूपैर्विविधैश्चक्रिपुण्यतः ।
मनाक् क्षोभं न गच्छन्ति सैन्यकास्तैरुपद्रवैः ॥१९६॥
पुनस्ते मेघधाराद्यैः स्थूलैः स्वविक्रियाकृतैः।
कुर्वते महतीं वृष्टिं विद्युत्पातादि गर्जनैः ॥१९७॥
उपर्यस्य सुसेनायाः सप्ताहोरात्र मञ्जसा।
तदात्रैकार्णवः स्याच्च मज्जयन् वनपादपान् ॥१९८॥
तदम्बुजलधौ चर्मरत्नं विस्तरति स्फुटम्।
द्विषड्योजनपर्यन्तं जलाभेद्यं हि वज्रवत् ॥१९९॥
तस्योपरि महत्सैन्यं तिष्ठेत्तस्मिन्नुपद्रवे।
तच्चर्मोपरि सेनाया मेघवाधादिहानये ॥२००॥
छत्ररत्नं जलाभेद्यं चर्मरत्नान्तमञ्जसा।
प्रसरेदिति तद्रत्नद्वयं स्यादण्डकोपमम् ॥२०१॥
चतुर्द्वाराङ्कितस्यास्य मध्ये चक्रेशपुण्यतः।
निराबाधतया कृत्स्नं सैन्यं तिष्ठेत्स्वशर्मणा ॥२०२॥
ततश्चक्रधरो ज्ञात्वा तद्वेवोत्थमुपद्रवम्।
देवानुद्दिश्य दिव्याङ्गं तथा वाणं विमुञ्चति ॥२०३॥
तथा ते निर्जरादुष्टा जायन्ते निःप्रभास्ततः।
ते निर्जिता विलोक्योच्चैश्चक्रिमाहात्म्यमूर्जितम् ॥२०४॥
देवा म्लेच्छनृपाश्चैत्य सेवां कुर्वन्ति चक्रिणः।
हस्त्यश्वरत्नकन्यादिदानैः प्रणाम भक्तिभिः ॥२०५॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अर्थ—चक्रवर्ती विजयार्ध गुफा के उत्तर द्वार से निकलकर मध्य में स्थित मध्यम म्लेच्छ खण्ड की भूमि को प्राप्त कर अनेक म्लेच्छ राजाओं को जीतने के लिये षट् (छह) अंगों की सेना सहित ठहर गया। तब चक्रवर्ती के आगमन को देखकर भय से आकुलित म्लेच्छ राजा अपने कुल देवताओं के पास आकर और उनकी आराधना करके अपने भय का कारण कहने लगे। उसे सुनकर वे देवगण क्रोधित हो उठे और मेघमुख नाम के देव ने आकर चक्रवर्ती की सेना के सुभटों पर घोर उपद्रव किया। अनेक प्रकार के व्याघ्र आदि भीषण रूपों के द्वारा किये हुए अनेक उपद्रव चक्रवर्ती के पुण्य से सेना को किञ्चित मात्र भी क्षोभ नहीं पहुँचा सके। तब वे देव अपनी विक्रिया के द्वारा जल की मोटी-मोटी धारा के द्वारा जल की महान् वृष्टि, विद्युत्पात एवं मेघगर्जन आदि करने लगे। सेना के ऊपर यह उपर्युक्त वर्षा सात दिन रात पर्यन्त होती रही, जिससे वहाँ वन के वृक्ष आदिकों को डुबाने वाला एक समुद्र हो गया। उस जल समुद्र के ऊपर बारह योजन पर्यन्त जल के द्वारा अभेद्य और वज्र के समान एक चर्मरत्न फैला दिया गया। उसके ऊपर वह महान् सेना उस उपद्रव के समय में ठहर गई। सेना की मेघ आदि की बाधा को दूर करने के लिये उस चर्मरत्न के ऊपर जल के द्वारा अभेद्य और चर्मरत्न के बराबर एक छत्ररत्न फैला दिया गया। ये दोनों रत्न मिलकर (एक ऊपर एक नीचे) अण्डा की आकृति के सदृश हो गये। चक्रवर्ती के पुण्य से चार द्वारों से युक्त इन दोनों रत्नों के बीच में समस्त सेना निराबाध और सुखपूर्वक ठहरी रही। इसके बाद ''यह उपद्रव देवों द्वारा उत्पन्न किया गया है'' यह जानकर चक्रवर्ती उन देवों का चिन्तन (लक्ष्य) करके ही एक दिव्य बाण छोड़ता है। उस एक ही बाण से वे दुष्ट देव कान्ति हीन हो गये तथा म्लेच्छ राजाओं के साथ-साथ वे सब देव चक्रवर्ती के महान् माहात्म्य को देखकर उनके पास आये और हाथी, अश्व, रत्न एवं कन्या आदि दान के द्वारा भक्तिपूर्वक उनकी सेवा करने लगे ॥१९३-२०५॥

अब चक्रवर्ती के मद एवं निर्मद होने का कारण दर्शाते हैं—

ततो म्लेच्छाधिपांश्चक्री साधयन् याति पुण्यतः।
मध्यमम्लेच्छखण्डस्थ वृषभाचलसन्निधिम् ॥२०६॥
तदा चक्राधिपो देवखगभूपजयोद्भवम्।
उद्वहन् परमं गर्वं वाञ्छन् स्वनामलेखनैः ॥२०७॥
स्वकीर्तिं निश्चलां कर्त्तुमभ्येत्याद्रिं निरीक्ष्य तम्।
निर्मदो जायतेऽनेक चक्रेशनामवीक्षणात् ॥२०८॥

अर्थ—म्लेच्छ खण्ड के राजाओं को जीतता हुआ चक्रवर्ती पुण्य के प्रभाव से मध्यम म्लेच्छ खण्ड में स्थित वृषभाचल के समीप पहुँचता है। देव एवं विद्याधर आदि राजाओं को जीत लेने से उत्पन्न होने वाले महान गर्व को धारण करता हुआ वह अपने नाम लेखन के द्वारा अपनी कीर्ति निश्चल करने की इच्छा से वृषभाचल को प्राप्त करता हुआ उसे देखता है तथा अनेक चक्रवर्तियों के नाम

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

देखकर तत्क्षण निर्मद हो जाता है ॥२०६-२०८॥

अब वृषभाचल पर्वत के प्रमाण आदि का एवं उस पर चक्रवर्ती के प्रशस्ति लेखन का वर्णन करते हैं—

शतयोजनविस्तीर्णो मूले मध्ये च योजनैः।
पंचसप्ततिसंख्यानैर्विस्तृतो मस्तके महान् ॥२०९॥
पंचाशत्संख्यकैर्भाति स योजनशतोन्नतः।
वनतोरणवेद्याद्यैर्मानहृद् वृषभाचलः ॥२१०॥
अनेन वर्णनेनात्र विदेहवृषभाद्रयः।
द्वात्रिंशन्निखिला ज्ञेयाः समाना उन्नतादिभिः ॥२११॥
तत्राचले निरस्याशु कस्यचिन्नाम चक्रभृत्।
लिखेत्स्वकुलनामाद्यैः प्रशस्तिं कीर्तये भुवि ॥२१२॥

अर्थ—चक्रवर्तियों के मान को हरण करने वाला यह वृषभाचल पर्वत सौ योजन ऊँचा, मूल में सौ योजन चौड़ा, मध्य में पचहत्तर योजन चौड़ा और शिखर पर पचास योजन चौड़ा है तथा वन, तोरण एवं वेदी आदि से सहित है। विदेह स्थित बत्तीस वृषभाचलों की ऊँचाई आदि का समस्त वर्णन इसी वृषभाचल के सदृश जानना चाहिए। इस वृषभाचल पर्वत पर चक्रवर्ती पृथ्वी पर अपनी कीर्ति स्थाई करने के लिये अन्य किसी चक्रवर्ती का नाम मिटाकर अपने कुल नामादि से युक्त प्रशस्ति लिखता है ॥२०९-२१२॥

अब चक्रवर्ती के नगर प्रवेश का क्रम आदि कहते हैं—

ततः खण्डत्रयोत्पन्नान् जित्वा खगनृपामरान्।
तत्सारवस्तु कन्यादीन् गृहीत्वा याति पुण्यतः ॥२१३॥
रूप्याद्र्यपरभागस्थ गुहाद्वारेण चक्रभृत्।
प्राग्वच्चोद्घाटितेनैव तच्चमूपतिना स्वयम् ॥२१४॥
इति षट्खण्डभूवासिसुरभूपखगाधिपान्।
साधयित्वा क्रमात्तेभ्यः कन्यारत्नान्यनेकशः ॥२१५॥
वस्तुवाहनकोटींश्चादाय पुण्यात् स्वलीलया।
वज्रीव स्वपुरीं चक्री प्रविशेच्च षडङ्गभृत् ॥२१६॥
तत्रातिपुण्यपाकेन भुङ्क्ते भोगांच्युतोपमान्।
चक्रीदशविधान् कुर्वन् जिनधर्ममनारतम् ॥२१७॥

अर्थ—इसके बाद तीन खण्ड में उत्पन्न विद्याधरों, राजाओं और देवों को जीतकर पुण्य प्रताप से वहाँ की कन्या आदि सार वस्तुओं को लेकर चक्रवर्ती वापस आता है। जब चक्रवर्ती विजयार्ध पर्वत के पश्चिमस्थ गुफा द्वार पर आता है तब सेनापति स्वयं पूर्व के समान उस गुफा द्वार को खोलता है।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

इस प्रकार छह खण्डवासी देवों, नरेन्द्रों और विद्याधरों को क्रमशः जीतकर तथा अतिशय पुण्य से करोड़ों वस्तु, वाहन आदिकों को क्रीड़ा मात्र में ग्रहण करके चक्रवर्ती छह अंगों की सेना सहित इन्द्र पुरी के समान अपनी नगरी में प्रवेश करता है और वहाँ अत्यन्त पुण्योदय से उपमा रहित भोगों को भोगता हुआ जिनधर्म में है रत मन जिसका, ऐसा चक्रवर्ती दस प्रकार के धर्मों का पालन करता है ॥२१३-२१७॥

अब चक्रवर्ती के ग्राम, पुर और मटम्बों आदि का वर्णन करते हैं–

भवन्ति विषये चक्रिणो ये ग्रामपुरादयः।
भोग्याः सम्पद्बलाद्यास्तान् समासेनदिशाम्यहम् ॥२१८॥
स्युर्द्वात्रिंशत्सहस्राणि देशास्तस्य च शाश्वताः।
नृपा मुकुटबद्धास्तावन्तो नमन्ति तत्क्रमौ ॥२१९॥
वृत्यावृता महा ग्रामाः कोटीषण्णवतिप्रमाः।
चतुर्गोपुरशालाद्यैर्वेष्टितानि पुराणि च ॥२२०॥
षड्विंशति सहस्राणि ग्रामैः पञ्चशतैर्युताः।
प्रत्येकं च मटम्बाः स्युश्चतुःसहस्रसम्मिताः ॥२२१॥
सरित्पर्वतयोर्मध्ये सहस्राण्येव षोडश।
खेटानि स्युर्भृतान्युच्चैर्जिनालयसुधार्मिकैः ॥२२२॥
चतुर्विंशसहस्राणि कर्वटान्यावृतानि च।
पर्वतेन जिनागारश्रावकादियुतान्यपि ॥२२३॥
पत्तनान्यष्टचत्वारिंशत्सहस्राणि सन्ति च।
रत्नोत्पत्त्यादिहेतूनि युक्तानि धनिधर्मिभिः ॥२२४॥
सहस्राणि नवाग्रा नवतिर्द्रोणामुखानि च।
सीतानदीजलोत्पन्नोपसमुद्रतटेष्वपि ॥२२५॥
चतुर्दशसहस्राणि संवाहनानि सन्ति वै।
पर्वताग्रेषु युक्तानि रत्नसौधजिनालयैः ॥२२६॥
अष्टाविंशसहस्राणि स्युर्दुर्गाणि महान्ति च।
अगम्यान्यस्य शत्रूणां धनिधर्मिभृतानि च ॥२२७॥
अन्तर्द्वीपा भवेयुः षट्पञ्चाशद्रत्नराशिभिः।
भृता उपसमुद्रस्य मध्ये सीतोत्तरे तटे ॥२२८॥
षड्विंशतिसहस्राणि रत्नाकरा महोन्नतैः।
सौधचैत्यालयैः पूर्णा रत्नभूसार वस्तुभिः ॥२२९॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

रत्नकुक्षिनिवासाः स्यू रत्नस्थानधरान्विताः।
शतसप्तप्रमा रम्या जिनधामादिधार्मिकैः ॥२३०॥
सीताया उत्तरे भागे क्षेमापुर्याश्च दक्षिणे।
भवत्युपसमुद्रोऽविनश्वरः स्वोर्मिसंकुलः ॥२३१॥

अर्थ—चक्रवर्ती के देश में जो ग्राम एवं पुर आदि होते हैं, उनका तथा उनके योग्य भोग्य सामग्री, सम्पदा एवं बल आदि का संक्षिप्त वर्णन करता हूँ। चक्रवर्ती के शाश्वत बत्तीस हजार देश होते हैं, जिनके बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा क्रम से उन्हें नमस्कार करते हैं। जो वृत्ति बाड़ से आवृत्त (घिरे हुए) होते हैं, उन्हें ग्राम कहते हैं, ऐसे छियानवे करोड़ महा ग्राम; चार गोपुर एवं उन्नत कोट आदि से वेष्टित छब्बीस हजार पुर, जो पाँच सौ ग्रामों से संयुक्त होते हैं, ऐसे चार हजार मडम्ब, (प्रत्येक मडम्ब चार हजार ग्रामों से युक्त होता है) नदियों और पर्वतों के मध्य रहना है लक्षण जिनका, ऐसे उन्नत जिनालयों एवं धार्मिक जनों से भरे हुए सोलह हजार खेट होते हैं। जो मात्र पर्वतों से घिरे हुए होते हैं, उन्हें कर्वट कहते हैं। ऐसे मुनि और श्रावकों से युक्त चौबीस हजार कर्वट होते हैं। धनी और धार्मिक जनों से युक्त तथा रत्न आदि उत्पत्ति के कारण भूत अड़तालीस हजार पत्तन हैं। सीता नदी के जल से उत्पन्न होने वाले उपसमुद्रों के तटों पर निन्यानवे हजार (९९०००) द्रोणमुख होते हैं। रत्नप्रासादों एवं जिनालयों से सहित पर्वतों के शिखरों पर चौदह हजार संबाह हैं जो अन्य शत्रुओं आदिकों को अगम्य हैं तथा धनी और धार्मिक जनों से भरे हैं ऐसे अट्ठाइस हजार (२८०००) महादुर्ग हैं। सीता के उत्तर तट पर उपसमुद्र के मध्य में रत्नों की राशियों से भरे हुए छप्पन (५६) अन्तर्दीप हैं। महा उन्नत प्रासादों से परिपूर्ण और रत्नों एवं भूमि की अन्य सारभूत वस्तुओं से समृद्ध छब्बीस हजार (२६०००) रत्नाकर हैं। रत्नों की स्थानभूत पृथ्वी से समन्वित तथा रमणीक जिनभवनों और धार्मिक जनों से अंचित सात सौ रत्नकुक्षिवास हैं। सीता के उत्तर भाग में और क्षेमापुरी के दक्षिण में अपने आप में उठने वालीं कल्लोलों से संकुलित और अविनश्वर उपसमुद्र है ॥२१८-२३१॥

अब चक्रवर्ती के बल और रूप आदि के साथ-साथ अन्य वैभव के प्रमाण का वर्णन करते हैं—

लक्षाश्चतुरशीतिः स्युर्गजेन्द्राः पर्वतोपमाः।
तावन्तश्चक्रिणो रम्यारथावाजिद्वयाङ्किताः ॥२३२॥
शीघ्रगामिन एवास्याश्वा अष्टादशकोटयः।
कोट्यश्चतुरशीतिः स्युर्द्रुतगामिपदातयः ॥२३३॥
स्याद्वज्रास्थिमयं वज्रवलयैर्वेष्टितं वपुः।
निर्भिन्नं वज्रनाराचैरभेद्यं तस्य सुन्दरम् ॥२३४॥
आदिमं च सुसंस्थानं चतुःषष्टिसुलक्षणैः।
व्यञ्जनैर्बहुभिर्युक्तं हेमाभं च च्युतोपमम् ॥२३५॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

षट्खण्डवासिभूपानां पिण्डीकृतं हि यद्बलं।
ततोऽधिकं महावीर्यं चक्रिणः स्यान्निसर्गतः ॥२३६॥
स्युर्द्वात्रिंशत्सहस्त्राण्यार्यखण्डस्थ नृपात्मजाः।
तावत्यो वररूपाश्च म्लेच्छराजसुताः शुभाः ॥२३७॥
तत्प्रमाः खचराधीशपुत्र्योविद्याकलान्विताः।
नाटकाः शर्मदा द्वात्रिंशत्सहस्त्रप्रमाः शुभाः ॥२३८॥
स्थाल्यः स्वर्णमयाः कोटिप्रमा अस्य महानसे।
स्यादेककोटिलक्षश्च हलानां पामरैः समम् ॥२३९॥
स्युस्तिस्त्रो व्रजकोट्योऽस्य गोकुलैः संकुलाः शुभाः।
अष्टादशसहस्त्राश्च म्लेच्छराजानमन्ति तम् ॥२४०॥

अर्थ—चक्रवर्ती के पर्वत की उपमा को धारण करने वाले चौरासी लाख हाथी और दो-दो घोड़ों से युक्त तथा रम्य चौरासी लाख ही रथ होते हैं। अठारह करोड़ शीघ्रगामी घोड़े और द्रुतगामी चौरासी करोड़ पदाति होते हैं। वज्रमय बाणों से अभेद्य, सन्धि रहित, वज्रमय अस्थि एवं वज्रवलय से वेष्टित चक्रवर्ती का शरीर अत्यन्त सुन्दर, समचतुरस्त्र संस्थान, चौंसठ उत्तम लक्षणों और अनेकों व्यञ्जनों से युक्त, हेम वर्ण एवं उपमा रहित होता है। छह खण्डवर्ती समस्त राजाओं के बल को एकत्रित करने पर जो बल होता है, उससे भी अधिक बल अर्थात् महावीर्य चक्रवर्ती के स्वभावतः होता है। आर्य खण्डस्थ राजाओं की बत्तीस हजार कन्याएँ, अनुपम रूप एवं शुभ लक्षणों से युक्त म्लेच्छ राजाओं की बत्तीस हजार कन्याएँ तथा विद्याओं एवं कलाओं से समन्वित विद्याधरों की बत्तीस हजार कन्याएँ अर्थात् चक्रवर्ती के छियानवे हजार रानियाँ होती हैं। सुख उत्पन्न करने वाले शोभनीक बत्तीस हजार नाटकगण, रसोई गृह में स्वर्णमय एक करोड़ प्रमाण थालियाँ अथवा हण्डियाँ होती हैं। एक लाख करोड़ किसानों के साथ-साथ एक लाख करोड़ प्रमाण ही हल होते हैं। नाना वर्णों की अत्यन्त शुभ लक्षण वाली गायों से भरे हुए तीन करोड़ व्रज होते हैं और चक्रवर्ती को अठारह हजार म्लेच्छ राजा नमस्कार करते हैं ॥२३२-२४०॥

अब चक्रवर्ती की नौ निधियों के नाम, कार्य एवं उनके आकार आदि का सविस्तर वर्णन करते हैं—

कालाह्वयो महाकालो नैःसर्प्पः पाण्डुकाभिधः।
पद्माख्यो माणवः पिङ्गलाभिख्यः शंखसंज्ञकः ॥२४१॥
सर्वरत्न इमे सन्ति चक्रिणो निधयो नव।
निधिः कालोऽस्य पुण्येन पुस्तकानि ददाति च ॥२४२॥
सर्वलौकिकशब्दादि वार्तानामन्वहं तथा।
मनोज्ञानिन्द्रियार्थांश्च वीणावंशानकादिकान् ॥२४३॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

असिमस्यादिषट्कर्मसाधनद्रव्यसम्पदः ।
महाकालनिधिर्दत्ते पुण्यात्पुण्यनिधेः प्रभोः ॥२४४॥
शय्यासनालयादीनि नैःसर्प्पो वितरेद्विभोः ।
पाण्डुकोऽखिल धान्यानि षड्रसांश्च मनोहरान् ॥२४५॥
पट्टकूलादि वस्त्राणि दत्ते पद्मो महान्ति च ।
रत्नाभरणविश्वानि दीप्तिशालीनि पिङ्गलः ॥२४६॥
शस्त्राणि नीतिशास्त्राणि सूते कृत्स्नानि माणवः ।
शंखः प्रदक्षिणावर्तः सुवर्णानि महान्ति च ॥२४७॥
सर्वरत्ननिधिर्दद्याद्विश्वरत्नानि चक्रिणः ।
सर्वेऽमी शकटाकारा निधयोऽद्भुतपुण्यजाः ॥२४८॥
चतुरक्षाष्टचक्राढ्या योजनाष्टसमुन्नताः ।
नवयोजनविस्ताराः प्रत्येकं रक्षिताः सुरैः ॥२४९॥
सहस्रसंख्यकैर्द्वादशयोजनायताः शुभाः ।
ज्ञेयाः पुण्यनिधेस्तस्य नित्यं स्वेहितवस्तुदाः ॥२५०॥

अर्थ—चक्रवर्ती के काल, महाकाल, नैसर्प, पाण्डु, पद्म, माणव, पिंगल, शंख और सर्वरत्न ये नव निधियाँ होतीं हैं। चक्रवर्ती के पुण्य से प्रेरित इन नौ निधियों में से काल नाम की प्रथम निधि तर्क, व्याकरण, छन्द, अलंकार आदि के, लोक व्यवहार सम्बन्धी एवं व्यापार सम्बन्धी शास्त्रों को तथा इन्द्रियों के मनोज्ञ विषयों को एवं वीणा, बाँसुरी, पटह आदि वाद्यों को निरन्तर देती है। पुण्य की खान स्वरूप चक्री के शुभोदय से महाकाल निधि असि, मसि कृष्यादि षट् कर्मों के साधनभूत द्रव्यों को और अन्य सम्पदा को भी देती है। नैःसर्प निधि चक्रवर्ती को शय्या, आसन और प्रासाद आदि देती है। पाण्डु निधि सम्पूर्ण धान्य एवं मनोहर षट्रसों को देती है। पद्म नाम की पञ्चम निधि रेशमी और सूती आदि सभी प्रकार के महान् वस्त्र देती है। पिंगल निधि कान्तिमान समस्त प्रकार के रत्नाभरण आदि देती है। माणव निधि समस्त प्रकार के आयुध और नीति शास्त्र देती है। प्रदक्षिणावर्त शंख निधि महान स्वर्ण और सर्वरत्न नाम की ९ वीं निधि समस्त प्रकार के रत्न चक्रवर्ती को देती हैं। अद्भुत पुण्य से उत्पन्न होने वालीं ये नौ निधियाँ शकटाकार होतीं हैं। चार खूटियों (चक्रधारा) एवं आठ पहियों से संयोजित ये कल्याणप्रद नौ निधियाँ पृथक्-पृथक् आठ योजन ऊँची, नौ योजन चौड़ी, बारह योजन लम्बी और एक-एक हजार देवों से रक्षित हैं तथा पुण्य के भंडार स्वरूप चक्रवर्ती की नित्य ही स्व इच्छित पदार्थ देतीं हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥२४१-२५०॥

अब चक्रवर्ती के चौदह रत्नों के नाम और उनके उत्पत्ति स्थानों को कहते हैं—

चक्रं छत्रमसिर्दण्डो मणिश्च चर्मकाकिणी ।
इमानि सप्तरत्नान्यजीवानि साधनान्यपि ॥२५१॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सेनागृहपतीभाश्वस्थपतिस्त्रीपुरोधसः ।
सप्तरत्नानि चैतानि सजीवानि महान्ति वै ॥२५२॥
चक्रच्छत्रासिदण्डाश्च जायन्तेऽस्यायुधालये।
काकिणीमणिचर्माणि पुण्येन श्रीगृहान्तरे ॥२५३॥
स्त्रीगजाश्वाः त्रिरत्नान्युत्पद्यन्ते रजताचले।
चत्वारिशेषरत्नानि क्षेमापुर्यां महान्ति च ॥२५४॥
सरत्नानिधयो नार्यः सैन्यं शय्यासने पुरी।
भोज्यं सभाजनं नाट्यं वाहनं हीति चक्रभृत् ॥२५५॥
दशाङ्गभोगसाराणि भुनक्ति पुण्यपाकतः।
गणबद्धामराभृत्याः सहस्त्रषोडशास्य च ॥२५६॥

अर्थ—चक्रवर्ती के महापुण्य योग से चक्र, छत्र, तलवार, दण्ड, मणि, चर्म रत्न और काकणी ये सात अजीव रत्न अनेक कार्यों को साधने वाले होते हैं तथा सेनापति, गृहपति, हाथी, अश्व, स्थपति, स्त्री और पुरोहित ये सात सजीव रत्न हैं। चक्र, छत्र, असि और दण्ड ये चार रत्न चक्रवर्ती की आयुधशाला में उत्पन्न होते हैं। काकणी, मणि और चर्मरत्न ये तीन रत्न श्रीगृह अर्थात् चक्री के खजाने में तथा स्त्री, हाथी एवं अश्व ये तीन रत्न विजयार्ध पर्वत पर उत्पन्न होते हैं शेष चार रत्न अर्थात् सेनापति, गृहपति, स्थपति और पुरोहित ये महान् चार रत्न क्षेमापुरी में ही उत्पन्न होते हैं। चक्रवर्ती १. चौदह रत्नों सहित नौ निधियाँ, २. स्त्री, ३. सेना, ४. शय्या, ५. आसन, ६. पुरी, ७. भोजन, ८. भाजन, ९. नाटक और १०. वाहन; ये दस प्रकार के सारभूत भोगों को भोगता है। महा पुण्योदय से सोलह हजार गणबद्ध देव भृत्यों के सदृश सेवा करते हैं ॥२५१-२५६॥

अब चक्रवर्ती के अन्य भोग्य पदार्थों के नाम कहते हैं—

क्षितिसाराह्वयस्तुङ्गः प्राकारोस्ति गृहावृतिः।
गोपुरं सर्वतोभद्रमुल्लसद्रत्नतोरणम् ॥२५७॥
निवेशः शिविरस्यास्य नन्द्यावर्त्ताभिधो भवेत्।
प्रासादो वैजयन्ताख्य सर्वत्र शर्मसाधकः ॥२५८॥
दिक्स्वस्तिका सभाभूमिः पराद्धर्यमणिकुट्टिमा।
अस्य चंक्रमणीयष्टिः सुविधिर्मणिनिर्मिता ॥२५९॥
गिरिकूटाख्यकंसौधं तुङ्गं दिगवलोकने।
वर्धमानकनामास्य प्रेक्षागारं सुसुन्दरम् ॥२६०॥
धारागृहाभिधो रम्यो घर्म्मान्तकोस्ति शीतलः।
गृहकूटकसंज्ञोऽस्य वर्षावासो मनोहरः ॥२६१॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

हर्म्यं स्यात्पुष्करावर्ताह्वयां रम्यां सुधासितम्।
कुवेरकान्तनामास्य भाण्डागारं क्षयातिगम् ॥२६२॥
अव्ययं वसुधाराख्यां कोष्ठागारं च चक्रिणः।
जीमूतनामकं स्याच्च मज्जनागारमूर्जितम् ॥२६३॥
रत्नमालातिरोचिष्णुः सुप्रोच्चास्त्यवतन्सिका।
देवरम्याह्वयारम्या स्मृता दूष्यकुटीपृथुः ॥२६४॥
सिंहैर्भयानकैरूढा सुशय्यासिंहवाहिनी।
अनुत्तराख्यां दिव्यं तुङ्गं सिंहासनं महत् ॥२६५॥
रम्याणि चामराण्यस्यानुपमाख्यानि सन्ति च।
भास्वत्सूर्यप्रभं छत्रं दीप्तं सद्रत्नभूषितम् ॥२६६॥
विद्युत्प्रभाह्वये स्यातां रुचिरे मणिकुण्डले।
अभेद्याख्यं तनुत्राणमभेद्यं शत्रुजैः शरैः ॥२६७॥
रत्नांशु जटिलाः सन्ति पादुका विषमोचिकाः।
परांह्रिस्पर्शमात्रेण मुञ्चन्त्यो विषमुल्वणम् ॥२६८॥
रथोऽजितञ्जयाख्यः स्याद्वज्रकाण्डं महद्धनुः।
चक्रिणोऽमोघपाताः स्युरमोघाख्यमहेषवः ॥२६९॥

अर्थ—चक्रवर्ती के नगर के चारों ओर क्षितिसार नाम का उत्तुंग और वृत्ताकार प्राकार है। कान्तिमान उत्तम रत्नों का सर्वतोभद्र नाम का गोपुर है। शिविर (डेरा, तम्बू) के निवेश द्वार का नाम नन्द्यावर्त है। सर्व ऋतुओं में सुख देने वाला वैजयन्त नाम का प्रासाद है। पराद्धर्य मणि का है आंगन (भूमि) जिसका, ऐसा दिक्स्वस्तिका नाम का सभा स्थल और चक्रवर्ती के हाथ में लेने की घूमने वाली सुविधि नाम की मणि निर्मित छड़ी है। दिशाओं का अवलोकन करने के लिये गिरिकूट नाम का उन्नत प्रासाद है और अति रमणीक वर्धमान नाम का प्रेक्षागार है। आताप का विनाश करने वाला शीतल और रम्य धारागृह नाम का भवन है, वर्षाकाल में सर्व सुखों को देने वाला, मन को अभिराम गृहकूट नाम का भवन है। चूने की कलई से उज्ज्वल और रम्य पुष्करावर्त नाम का उत्तम भवन है जिसमें अक्षय निधि से परिपूर्ण कुवेरकान्त नाम का भाण्डारगार है। चक्रवर्ती के क्षय से रहित वसुधारा नाम का कोष्ठागार है और अत्यन्त तेज कान्ति से युक्त जीमूत नामका मज्जनागार (स्नानगृह) है। चक्रवर्ती की अति देदीप्यमान रत्नों की माला है और सुप्रोच्चा नाम की उत्तम टोपी है। अति सुन्दर और महान विस्तार वाली देवरम्य नाम की दूष्य कुटी अर्थात् वस्त्रागार कहा गया है। भयावह (बड़े-बड़े) सिंहों पर आरूढ़ सिंहवाहिनी नाम की उत्तम शय्या है और अनुत्तर नाम का दिव्य और उन्नत श्रेष्ठ सिंहासन है। अनुपम नाम के श्रेष्ठ चामर और उत्तम रत्नों से रचित देदीप्यमान सूर्यप्रभ नाम के छत्र हैं। विद्युत्प्रभ

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

नाम के सुन्दर मणिकुण्डल और शत्रुओं के बाणों द्वारा छिन्न-भिन्न न होने वाला अभेद्य नाम का कवच है। चक्रवर्ती की रत्नजड़ित विषमोचिका नाम की दो पादुकाएँ हैं, जो अन्य जनों के पैरों के स्पर्श करने मात्र से उनके अतितीव्र विष का मोचन (हरण) कर लेतीं हैं। अजितञ्जय नाम का रथ और चक्रवर्ती को विजय प्राप्त कराने वाले अमोघ नाम के बाणों से युक्त वज्रकाण्ड नाम का महान् धनुष है ॥२५७-२६९॥

अब चक्रवर्ती के हथियारों, नौ निधियों एवं चौदह रत्नों के नाम कहते हैं—

वज्रतुण्डाभिधा शक्तिर्वज्रोद्भवारिखण्डिनी।
कुन्तः सिंहाटको रत्नदण्डः सिंहनखाङ्कितः ॥२७०॥
तस्यासिपुत्रिका दीप्ता महती लोहवाहिनी।
कणयोस्ति मनोवेगोऽसिश्च सौनन्दकाख्यकः ॥२७१॥
पृथुभूतमुखं खेटं सार्थं भूतमुखान्वितम्।
सुदर्शनाह्वयं चक्रं षट्खण्डाक्रमणक्षमम् ॥२७२॥
चण्डवेगाभिधोदण्डो गुहाद्वारद्विभेदकृत्।
चर्मरत्नं जलाभेद्यं महद्वज्रमयाभिधम् ॥२७३॥
मणिरत्नं तमोहन्तृ चूडामण्यभिधानकम्।
ऊर्जितं काकिणीरत्नं चिन्तामणि समाह्वयम् ॥२७४॥
सेनापतिरयोध्याख्यो नररत्नं भवेत्प्रभोः।
पुरोधाः पुरुधीर्दक्षो बुद्धिसागरनामकः ॥२७५॥
वास्तुविद्याप्रवीणः स्थपति र्भद्रमुखोऽद्भुतः।
श्रीमान् गृहपतिः कामवृष्टिनामास्त्यभीष्टदः ॥२७६॥
व्ययोपचयचिन्तायां नियुक्तश्चक्रवर्तिनः।
यागहस्तीमहाकायोऽद्र्योभो विजयपर्वतः ॥२७७॥
पवनञ्जयसंज्ञोऽश्वः सुभद्रास्त्री च्युतोपमा।
इमानि दिव्यरत्नानि रक्षितानि सुरैर्विभोः ॥२७८॥
राज्याङ्गभोगकर्तृणि पुण्यात्सन्ति चतुर्दश।
तद्गृहेऽपररत्नानां संख्यां को वेत्ति बुद्धिमान् ॥२७९॥
आनन्दिन्योऽब्धिनिर्घोषाभेर्यो द्वादशसम्मिताः।
द्विषड्योजनपर्यन्तं ध्वनन्त्यापूर्यदिग्मुखम् ॥२८०॥
प्रभोर्विजयघोषाख्याः पटहा द्वादशप्रमाः।
चतुर्विंशति शङ्खाः स्युर्गम्भीरावर्तसंज्ञकाः ॥२८१॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अर्थ—चक्रवर्ती के पास शत्रुओं को नाश करने वाली वज्रमय वज्रतुण्डा नाम की शक्ति, सिंहाटक नाम का कुन्तल और सिंह नखों के सदृश आकार से अंचित रत्नदण्ड होता है। महा दीप्ति से युक्त लोहवाहिनी नाम का खड्ग, मनोवेग नाम की करधनी और सौनन्द नाम की तलवार होती है। भूतमुख से सहित अपने नाम को सार्थक करने वाली पृथुभूतमुख नाम की ढाल और षट्खण्डों पर आक्रमण करने में समर्थ ऐसा सुदर्शन नाम का चक्र होता है। दोनों गुफा द्वारों को भेदने में समर्थ चण्डवेग नाम का दण्ड और जल के द्वारा अभेद्य वज्रमय नाम का महान चर्मरत्न होता है। अन्धकार को नाश करने वाला चूड़ामणि नाम का मणिरत्न और महाप्रकाशवान् चिन्तामणि नाम का काकिणी रत्न होता है। चक्रवर्ती के अयोध्यसेन नाम का सेनापति नररत्न और विशाल बुद्धि का धारक तथा अतिदक्ष बुद्धिसागर नाम का पुरोहित होता है। आवास विद्या अर्थात् निवास स्थानों का निर्माण करने में प्रवीण भद्रमुख नाम का अद्भुत स्थपति (सिलावट) और मनोवाञ्छित पदार्थों को देने वाला कामवृष्टि नाम का गृहपति होता है। जिसे चक्रवर्ती अपने व्यय-उपचय (हानि-वृद्धि या देय-आदेय या लघु-दीर्घ चिन्तनवत्) की चिन्ता सौंपकर निश्चिन्त हो। जाता है। पर्वत के सदृश महाकाय विजयपर्वत नाम का पट्ट हाथी, पवनञ्जय नाम का घोड़ा और उपमा से रहित सुभद्रा नाम की स्त्री होती है। चक्रवर्ती के इन दिव्य रत्नों की रक्षा देवों द्वारा होती है। महान् पुण्योदय से चक्रवर्ती के पास राज-अंग स्वरूप ये चौदह रत्न नाना प्रकार के भोगों के कर्ता हैं। उनके प्रासाद में अन्य और कितने रत्न हैं? इसकी संख्या कौन बुद्धिमान् जान सकता है? अर्थात् कोई नहीं। समुद्र के सदृश निर्घोष करने वालीं आनन्द नाम की बारह भेरियाँ हैं, जो अपनी ध्वनि से बारह योजन पर्यन्त समस्त दिशाओं को व्याप्त कर देती हैं। इसी प्रकार चक्रेश के यहाँ विजयघोष नाम के बारह पटह और गम्भीरावर्त नाम के चौबीस शंख हैं ॥२७०-२८१॥

अब अन्य अवशेष वस्तुओं के नाम कहते हुए उनके भोज्य आदि पदार्थों का विवेचन करते हैं—

दीप्ता वीराङ्गदाभिख्या कटका मणिनिर्मिताः।
पताका अष्टचत्वारिंशत्कोट्योऽति मनोहराः ॥२८२॥
महाकल्याणकाभिख्यां तुङ्गं दिव्यासनं महत्।
अस्यान्यसारवस्तूनि गदितुं को बुधः क्षमः ॥२८३॥
भक्ष्यायेऽमृतगर्भाख्याः सद्गन्धस्वादुशालिनः।
शक्ता जरयितुं तस्य नान्ये तान् सुरसोत्कटान् ॥२८४॥
स्वाद्यं चामृतकल्पाख्यं हृद्यास्वादं सुसंस्कृतम्।
रसायनरसं दिव्यं पानकं ह्यमृताह्वयम् ॥२८५॥

अर्थ—मणियों से निर्मित और विशाल कान्तिमान वीरांगद नाम का कड़ा है। अड़तालीस करोड़ प्रति मनोज्ञ पताकाएँ होती हैं। महाकल्याण नाम का उन्नत, दिव्य और विशाल आसन होता है।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

चक्रवर्ती के पास और भी अनेक सार वस्तुएँ होतीं हैं जिनका कथन करने के लिये कौन बुद्धिमान् समर्थ हो सकता है? अर्थात् कोई नहीं। चक्रवर्ती के भोजन के लिये उत्तम गन्ध और शुभ स्वाद युक्त अमृतगर्भ नाम के मोदक होते हैं। उत्तम रसों से उत्कट उन मोदकों को पचाने की शक्ति चक्रवर्ती में ही होती है अन्य किसी में नहीं। चक्रवर्ती के द्वारा सेव्यमान अमृतकल्प नाम का स्वाद्य पदार्थ हृदय को प्रिय और भली-भाँति संस्कृत होता है तथा अमृत नाम के पेय पदार्थ भी दिव्य एवं रसायन रस के सदृश होते हैं ॥२८२-२८५॥

अब चक्रेश की सम्पदा पुण्य का फल है, ऐसा दिखाते हुए आचार्य धर्म करने की प्रेरणा देते हैं–

पुण्यकल्पद्रुमोद्भूता एताः सर्वाः सुसम्पदः।
फलभूता महाभोगा जानन्तु चक्रवर्तिनः ॥२८६॥
मत्वेति व्रतशीलाद्यैः शर्मकामाः सुयत्नतः।
अर्जयन्तु सदा धर्मं स्वर्मुक्तिश्रीवशीकरम् ॥२८७॥

अर्थ–चक्रवर्ती के पूर्वोपार्जित पुण्यरूपी कल्पवृक्ष से उत्पन्न होने वाली ये सब उत्तम सम्पदाएँ और उसी वृक्ष के फल स्वरूप ये उत्कृष्ट भोग हैं ऐसा जानो और सुख की इच्छा करने वाले मनुष्यों! इसे धर्म का प्रसाद मानते हुए ही व्रत और शील आदि के द्वारा समीचीन पुरुषार्थ द्वारा स्वर्ग और मोक्ष लक्ष्मी को वश करने वाले धर्म का निरन्तर अर्जन (संचय) करो ॥२८६-२८७॥

अब अन्य चक्रवर्तियों के नगरों एवं देशों का विवेचन करते हैं–

यथास्य चक्रिणः प्रोक्ता भूतयो दिग्जयादयः।
तथा ज्ञेया विदेहेऽस्मिन् सकले चक्रवर्तिनाम् ॥२८८॥
व्यावर्णनं कृतं यद्वत् क्षेमापुर्या मयाऽखिलम्।
विदेहेऽन्य पुरीणां च तद्वद्ज्ञेयं न चान्यथा ॥२८९॥
कच्छाविषयषट्खण्डानां प्रोक्तावर्णना यथा।
तथा द्विधा विदेहे स्याद्देशखण्डाऽखिलात्मनाम् ॥२९०॥

अर्थ–जिस प्रकार इस चक्रवर्ती की विभूति एवं दिग्विजय आदि का वर्णन किया गया है उसी प्रकार इस विदेह क्षेत्र सम्बन्धी समस्त चक्रवर्तियों का जानना चाहिए। मेरे (आचार्य) द्वारा क्षेमापुरी नगरी का सम्पूर्ण वर्णन जिस प्रकार किया गया है, विदेह क्षेत्र में स्थित अन्य पुरों का समस्त वर्णन इसी प्रकार जानना चाहिए, अन्य प्रकार नहीं। कच्छा देश में जिस प्रकार छह खण्डों का वर्णन किया गया है, पूर्व-पश्चिम विदेह स्थित देशों के छह खण्डों का समस्त वर्णन इसी प्रकार है ॥२८८-२९०॥

धर्म का फल कहते हैं–

इति सुकृतविपाकाच्चक्रिलक्ष्म्यो महत्यो,
निरुपमसुखसारा रत्ननिध्यादयश्च।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

त्रिजगतिसुपदाद्याः स्युः सतां हीति मत्वा,
भजत चरणयोगैः कोविदा! धर्ममेकम् ॥२९१॥

अर्थ—इस प्रकार महान् पुण्य विपाक से सज्जन पुरुषों को चक्रवर्ती की विशाल सम्पत्ति, निरुपम सुख, चौदह रत्न और नौ निधियाँ आदि तथा देवेन्द्र, धरणेन्द्र, खगेन्द्र आदि विविध प्रकार के उत्तम पद प्राप्त होते हैं, ऐसा मानकर-हे प्रवीण जनों! व्रत, तप, संयम आदि शुभ योगों के द्वारा निरन्तर एक धर्म का ही सेवन करो ॥२९१॥

धर्म प्रशंसा—

सद्धर्मः क्रियते मया प्रतिदिनं धर्मं भजे यत्नतो,
धर्मेणैव ममास्तु शाश्वतसुखं धर्माय कुर्वे तपः।
धर्मान्नापरमाश्रये सुगतये धर्मस्य सेवे गुणान्,
धर्मे चित्तमहं दधे भवभयं मे धर्म! दूरीकुरु ॥२९२॥

इति श्री सिद्धान्तसारदीपकमहाग्रन्थे भट्टारकश्रीसकलकीर्ति विरचिते देवकुरूत्तरकुरुकच्छादेश चक्रिदिग्विजय विभूति वर्णनोनाम सप्तमोऽधिकारः ॥७॥

अर्थ—मेरे द्वारा प्रतिदिन समीचीन धर्म का सेवन किया जाता है, मैं यत्नपूर्वक धर्म को धारण करता हूँ। धर्म के द्वारा ही मुझे शाश्वत सुख की प्राप्ति हो, मैं धर्म के लिये तप करता हूँ। उत्तम गति के लिये धर्म से अपर अन्य कोई आश्रय नहीं है। धर्म के गुणों को धारण करो। मैं अपने चित्त को धर्म में लगाता हूँ। हे धर्म! मेरे भव भय को दूर करो ॥२९२॥

इस प्रकार भट्टारक सकलकीर्तिविरचित सिद्धान्तसार दीपक नामक महाग्रन्थ में देवकुरु, उत्तरकुरु, कच्छादेश चक्रवर्ती की दिग्विजय एवं विभूति का वर्णन करने वाला सप्तम अधिकार समाप्त हुआ ॥

❑ ❑ ❑

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अष्टम अधिकार

विदेहक्षेत्रस्थ देशों का वर्णन

मंगलाचरण

देहातिगान् जिनाधीशान् वन्द्यान् सूरींश्च पाठकान्।
त्रिजगत्पतिभिः साधून् विदेहस्थान् नमाम्यहम् ॥१॥

अर्थ—तीन लोक के अधिपतियों द्वारा वन्दनीय देह रहित सिद्धों को, विदेह क्षेत्रों में स्थित अरहन्तों को, आचार्यों को, उपाध्याय परमेष्ठियों को और साधुओं को मैं सकलकीर्ति (आचार्य) नमस्कार करता हूँ ॥१॥

अब चित्रकूट नाम के प्रथम वक्षार पर्वत का वर्णन करते हैं—

अथ कच्छामहादेशात्पूर्वे वक्षारपर्वतः।
प्रथमश्चित्रकूटाख्यश्चतुः कूटविराजितः ॥२॥
भवेदश्वमुखाकारस्तप्तचामीकरच्छविः ।
तोरणैर्वनवेद्याद्यैर्जिनदेवालयैर्युतः ॥३॥
नद्यन्ते योजनानां च शतपञ्चभिरुन्नतः।
कुलाचलसमीपे योजनैश्चतुःशतप्रमैः ॥४॥
स्वोच्चतुर्यांश भूमध्यः कच्छादेशसमायतः।
शतपञ्चप्रमाणैश्च योजनैर्विस्तृतोऽद्भुतम् ॥५॥

अर्थ—कच्छा महादेश के पूर्व में चार कूटों से सुशोभित चित्रकूट नाम का प्रथम वक्षार पर्वत है, जो अश्व के मुख सदृश आकार वाला, तपाये हुए स्वर्ण के सदृश कान्तिवान् और तोरणों, वनों, वेदियों और जिनालयों से समन्वित है। इस पर्वत की ऊँचाई सीता नदी के समीप पाँच सौ योजन और नील कुलाचल के समीप चार सौ योजन प्रमाण है। भूमध्य (नींव) में इसकी ऊँचाई का चतुर्थ भाग प्रमाण पृथ्वी के भीतर है। पर्वत की लम्बाई कच्छा देश की लम्बाई के प्रमाण अर्थात् १६५९२ $\frac{२}{१९}$ योजन और विस्तार पाँच सौ योजन प्रमाण है ॥४-५॥

अब वक्षारपर्वतस्थ कूटों के नाम, स्थान एवं स्वामी आदि कहते हैं—

सिद्धकूटं च कच्छाख्यं सुकच्छासंज्ञकं ततः।
चित्रकूटाह्वयं कूटं चतुःकूटान्यमूनि वै ॥६॥
वक्षारोच्चचतुर्थांशतुङ्गानि स्युः शुभान्यपि।
अर्हत्सुरालयाढ्यानि सीतासमीपतः क्रमात् ॥७॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

दिव्योपकरणैः पूर्णः सिद्धकूटे जिनालयः।
नीलाद्र्यन्तेऽन्तिमे कूटे दिवकन्याः सन्ति धामसु ॥८॥
मध्यकूटद्वयस्थोच्चरत्नवेश्मसु पुण्यतः।
वसतः स्वस्वकूटोत्थ नामानौ व्यन्तरामरौ ॥९॥

अर्थ—चित्रकूट नामक प्रथम वक्षार पर्वत पर सिद्धकूट, कच्छाकूट, सुकच्छाकूट और चित्रकूट नाम के चार कूट हैं। इन शुभ कूटों की ऊँचाई वक्षार पर्वत की ऊँचाई के चतुर्थ भाग प्रमाण है अर्थात् सीता महानदी के समीप स्थित सिद्धकूट की ऊँचाई ($\frac{५००}{४}$=) १२५ योजन और नील पर्वत के समीप चित्रकूट की ऊँचाई ($\frac{४००}{४}$)=१०० योजन प्रमाण है, शेष दो कूटों की क्रमशः हानिवृद्धि को लिये हुए है। सीता के समीप से क्रमशः अर्हन्त भगवान और देवों से युक्त कूट हैं। सिद्धकूट के ऊपर दिव्य उपकरणों से परिपूर्ण जिन चैत्यालय है और नील पर्वत के समीप अन्तिम चित्रकूट पर अनेक प्रासाद हैं, जिनमें दिक्कुमारियाँ निवास करती हैं। मध्य में स्थित शेष दो कूटों में रत्न के प्रासाद हैं जिनमें पुण्योदय से अपने-अपने कूटों के सदृश ही नाम वाले व्यन्तर देव निवास करते हैं ॥६-९॥

अब कूटों का उत्सेध पृथक्-पृथक् कहते हैं—

कुलगिरि निकटस्थे प्रथमे कूटे उत्सेधः शतयोजनानि। द्वितीये च तृतीय भागाधिकाष्टोत्तर-शतयोजनानि। तृतीये षोडशाग्रशतयोजनानि योजनत्रिभागानां द्वौ भागौ। चतुर्थे कूटे उन्नतिः पञ्चविंशत्यधिक शतयोजनानि।

अर्थ—नील कुलाचल के समीप स्थित प्रथम कूट की ऊँचाई १०० योजन, द्वितीय कूट की १०८ $\frac{१}{३}$ योजन, तृतीय कूट की ११६$\frac{२}{३}$ योजन और चतुर्थ कूट की ऊँचाई १२५ योजन प्रमाण है।

अब शेष वक्षार पर्वतों, सुकच्छा देश और क्षेमपुरी का कथन करते हैं—

इत्थं सुवर्णना ज्ञेया विदेहे सकलेऽखिला।
षोडशप्रमवक्षाराणां सर्वेषां समानका ॥१०॥
ततः प्राग्वर्णनोपेतः सुकच्छाविषयो भवेत्।
द्विनदीविजयाद्र्धैश्च षट्खण्डीकृत ऊर्जितः ॥११॥
तस्यार्यखण्डमध्येऽस्ति रम्या क्षेमपुरी पुरी।
प्रागुक्तनगरीतुल्या व्यासाद्यैर्धर्ममातृका ॥१२॥

अर्थ—इस प्रकार विदेह क्षेत्र स्थित सोलह वक्षार पर्वतों का समस्त वर्णन भी इस चित्रकूट वक्षार पर्वत के सदृश ही जानना चाहिए। पूर्व कथित कच्छादेश के वर्णन के समान ही सुकच्छा देश का वर्णन है। इस देश के भी रक्ता-रक्तोदा और विजयार्ध पर्वत से छह खण्ड हुए हैं। इन छह खण्डों में से आर्य खण्ड के मध्य में व्यास आदि से क्षेमापुरी नगरी के समान अतिरम्य और धर्म की माता के सदृश क्षेमपुरी नाम की नगरी है ॥१०-१२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब विभंगा नदी का निर्गम स्थान, परिवार नदियाँ और लम्बाई आदि कहते हैं–

ततो नीलाद्रिपार्श्वस्थ कुण्डस्य शाश्वतस्य च।
निर्गत्य दक्षिणद्वारेण विभङ्गा नदी शुभा ॥१३॥
अष्टाविंशसहस्त्राणां परिवारसरिद्युता।
कुण्डहीनायता ग्राहवतीसंज्ञोर्मिसंकुला ॥१४॥

अर्थ–इसके बाद नील कुलाचल के पार्श्वभाग में एक शाश्वत कुण्ड स्थित है उस कुण्ड के दक्षिण द्वार से निकलकर ग्राहवती नाम वाली, अत्यन्त रमणीक विभंगा नदी अट्ठाइस हजार परिवार नदियों से युक्त होती हुई, कुण्ड व्यास से हीन आयत वाली अनेक उर्मियों से व्याप्त होकर बहती है ॥१३-१४॥

अब विभंगा के अवशेष वर्णन का कथन करते हैं–

रोहित्सरित्समव्यासा हेमसोपानशालिनी।
तोरणैर्वनवेदीभिरलंकृता मनोहरा ॥१५॥
योजनैः पञ्चविंशत्यग्रशतैक प्रमाणकैः।
विस्तीर्णान्ते हि सीतायाः प्रविष्टाभ्यन्तरे परा ॥१६॥
तस्याः प्रवेशसद्द्वारस्य पूर्वापरदीर्घता।
पञ्चविंशति संयुक्तशतैक योजनानि च ॥१७॥
तोरणस्योच्छ्रितः सार्धसप्ताशीत्यधिकं शतम्।
योजनानां तथास्मिन्स्युर्जिनेन्द्र प्रतिमादयः ॥१८॥
इत्येषा वर्णना सर्वा विभङ्गासरितां समा।
सीताप्रवेश सद्द्वाराणां विज्ञेया न चान्यथा ॥१९॥

अर्थ–ग्राहवती विभंगा नदी का व्यास रोहित् महानदी के सदृश है। स्वर्ण सोपानों से सुशोभित, तोरणों, वनों एवं वेदियों से अलंकृत यह मनोज्ञ नदी अन्त में एक सौ पच्चीस (१२५) योजन विस्तीर्ण होती हुई सीता महानदी के मध्य प्रवेश कर जाती है। इस नदी की सीता प्रवेश द्वार की पूर्व-पश्चिम दीर्घता एक सौ पच्चीस योजन है तथा जिस पर जिनेन्द्र आदि प्रतिमाएँ अवस्थित हैं, ऐसे तोरण की ऊँचाई एक सौ साढ़े सतासी ($१८७\frac{१}{२}$) योजन प्रमाण है। इस प्रकार का यह सब वर्णन सर्व विभंगा नदियों का और सीता प्रवेश द्वारों का सदृश ही जानना चाहिए, अन्यथा नहीं ॥१५-१९॥

अब महाकच्छ देश की अवस्थिति और उसके मध्य स्थित अरिष्टा नगरी का संक्षिप्त कथन करते हैं–

नद्याः पूर्वे महाकच्छाविषयः प्राक्तनोपमः।
धर्मशर्माकरीभूतः स्यात् षट्खण्डधराङ्कितः ॥२०॥
तस्य मध्ये परारिष्टानगरी विद्यते शुभा।
जिन जैनालयैस्तुङ्गैर्भूषिता धर्मकर्मभिः ॥२१॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अर्थ—ग्राहवती नदी की पूर्व दिशा में पूर्वोक्त (कच्छा देश सदृश) उपमाओं से युक्त महाकच्छ नाम का देश है। जो धर्म और सुख की खान तथा छह खण्ड पृथ्वियों से समन्वित है। उस देश के मध्य में एक अत्यन्त शुभ और श्रेष्ठ अरिष्टा नाम की नगरी है, जो जैन धर्मावलम्बियों के प्रासादों, उन्नत जिन चैत्यालयों एवं धर्म-कर्म से विभूषित है ॥२०-२१॥

अब पद्मकूट वक्षार पर्वत की अवस्थिति आदि कहते हैं—

ततोस्ति पद्मकूटाख्यो वक्षारपर्वतो महान्।
सिद्धकूटं महाकच्छाह्वयं कूटं ततः परम् ॥२२॥
कूटं च कच्छकावत्याख्यं पद्मकूटसंज्ञकम्।
एतैश्चतुर्महाकूटैः शिखरेऽलंकृतोऽस्ति सः ॥२३॥

अर्थ—महा कच्छ देश के आगे पद्मकूट नाम का एक महान वक्षार पर्वत है। सिद्धकूट, महाकच्छ कूट, कच्छकावती कूट और पद्मकूट इन चार महाकूटों के द्वारा उसका शिखर अलंकृत है ॥२२-२३॥

अब कच्छकावती देश, द्रहवती विभंगा, आवर्त देश और नलिनकूट वक्षार की अवस्थिति कहते हैं—

ततोऽस्ति विषयः कच्छकावती संज्ञकोऽद्भुतः।
मध्येऽरिष्टपुरी तस्य भवेद् धर्मसुखाकरा ॥२४॥
ततो द्रहवतीसंज्ञा विभङ्गा निम्नगा भवेत्।
पूर्वोक्तवर्णनायुक्ता कुण्डात्सीतान्तरागता ॥२५॥
तस्याः पूर्वे महान्देश आवर्त्ताख्योऽस्ति शाश्वतः।
तन्मध्ये नगरी रम्या खड्गाख्या च शुभाकरा ॥२६॥
ततो नलिनकूटाख्यो वक्षाराद्रिर्महान् भवेत्।
चतुःकूटाङ्कितो हेममयो जिनालयादिभृत् ॥२७॥
सिद्ध चावर्तसंज्ञं च लाङ्गलावर्तनामकम्।
नलिनाख्यं चतुःकूटैरमीभिर्मूर्द्ध्नसोऽन्वितः ॥२८॥

अर्थ—पद्म कूट वक्षार पर्वत के आगे कच्छकावती नाम का अनुपम देश है। उसके मध्य में धर्म और सुख की खान स्वरूप अरिष्ट नाम की नगरी है। कच्छकावती देश के आगे पूर्वोक्त (ग्राहवती नदी के) वर्णन युक्त द्रहवती नदी है जो कुण्ड से निकलकर सीता नदी पर्यन्त लम्बी है। इस द्रहवती विभंगा के पूर्व में एक आवर्ता नाम का महान और शाश्वत देश है, जिसके मध्य में अत्यन्त रम्य और कल्याणों की खान सदृश खड्गा नाम की नगरी है। उसके आगे (पूर्व में) नलिनकूट नाम का एक महान् वक्षार पर्वत है, जो चारकूटों से अञ्चित और स्वर्णमय जिन चैत्यालयों आदि से परिपूर्ण है। उस वक्षार पर्वत का शिखर सिद्ध, आवर्ता, लांगलावर्त और नलिन इन चारकूटों से समन्वित है ॥२४-२८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब इसके आगे-आगे के देश, विभंगा नदी और वक्षार पर्वतों का संक्षिप्त कथन करते हैं—

ततोऽस्ति विषयो लांगलावर्ताह्वय ऊर्जितः।
षट्खण्डमण्डितो युक्तो नदीकाननपर्वतैः ॥२९॥
तन्मध्ये नगरीरम्या मञ्जूषाख्या विराजते।
मञ्जूषेव नृरत्नानां जिनकेवलिधर्मिणाम् ॥३०॥
पुनः पङ्कवतीनाम्नी विभंगा प्रवरा नदी।
दशक्रोशावगाहास्याद्रोहित्समानविस्तृता ॥३१॥
नद्याः पूर्वे शुभोदेशः पुष्कलाख्योऽविनश्वरः।
ग्रामखेटादिभिः पूर्णो जिनैर्जैनैश्च धार्मिकैः ॥३२॥
औषधी नगरी रम्या तस्य मध्ये विभात्यलम्।
औषधीव सतां जन्मजरामृत्यु रुजापहा ॥३३॥
ततः स्यादेक शैलाख्यो वक्षाराद्रिर्मनोहरः।
चतुःकूटैर्युतो मूर्ध्नि जिनामरालयान्वितैः ॥३४॥
सिद्धं च पुष्कलाख्यं पुष्कलावती समाह्वयम्।
एकशैलाह्वयं ह्येतैश्चतुः कूटैः सभात्यलम् ॥३५॥
ततः पूर्वे भवेत् पुष्कलावती विषयो महान्।
नद्यद्रिग्रामसीमाद्यैर्भृतो धार्मिक योगिभिः ॥३६॥
तन्मध्ये नगरी नित्या राजते पुण्डरीकिणी।
तुङ्गचैत्यालयैर्भव्य पुण्डरीकैः सुकर्मभिः ॥३७॥
ततो रत्नमयी दिव्या शाश्वती वनवेदिका।
पूर्वोक्तवर्णनोपेतोत्सेधव्यासादि तोरणैः ॥३८॥

अर्थ—नलिन वक्षार के आगे लांगलावर्त नाम का श्रेष्ठ देश है, जो छह खण्डों से मण्डित तथा नदी, वन और पर्वत आदि से युक्त है। इस देश के मध्य में अति मनोज्ञ मंजूषा नाम की नगरी सुशोभित है, जो जिनेन्द्र देव, केवली और धार्मिक मनुष्यरूपी रत्नों को मञ्जूषा (पेटी) के सदृश सार्थक नाम वाली है। इसके आगे पंकवती नाम की श्रेष्ठ विभंगा नदी है, जो दस कोस गहरी और रोहित् नदी के सदृश विस्तृत है। इस विभंगा नदी के पूर्व में पुष्कल नाम का विनाश रहित और श्रेष्ठ देश है, जो ग्राम खेट आदि से तथा अर्हन्तों, जैनों और धर्मात्मा जनों से परिपूर्ण है। जिसके मध्य में औषधी नाम की मनोज्ञ नगरी शोभायमान है, जो सज्जन पुरुषों के जन्म, बुढ़ापा, मृत्यु और रोग आदि दोषों को दूर करने के लिये औषधि के सदृश है। इसके बाद एक शैल नाम का मन को हरण करने वाला वक्षार पर्वत है, जो शिखर पर जिनचैत्यालय और अन्य देवों के प्रासादों से समन्वित चार कूटों से युक्त है। सिद्धकूट,

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

पुष्कलकूट, पुष्कलावतीकूट और एक शैल इन चार कूटों से वह पर्वत शोभायमान है। इस वक्षार पर्वत के पूर्व में पुष्कलावती नाम का महान देश है, जो नदी, पहाड़, ग्राम की सीमा आदि से तथा मुनिराजों एवं धार्मिक पुरुषों से परिपूर्ण है। इसके मध्य में पुण्डरीकिणी नाम की शाश्वत नगरी सुशोभित होती है, जो उन्नत चैत्यालयों, भव्यों, तीर्थंकरों, गणधरादि योगियों एवं उत्तम क्रिया करने वाले सज्जन पुरुषों से व्याप्त है। इसके बाद शाश्वत, दिव्य और रत्नमय वनवेदिका है, जो पूर्व कथित उत्सेध एवं व्यासादि वाले तोरणों से युक्त है ॥२९-३८॥

इसके आगे देवारण्य वन का वर्णन करते हैं–

तस्याः पूर्वे समुद्रस्यापरेभागे मनोहरम्।
नाना द्रुमौघ संकीर्णं देवारण्याह्वयं वनम् ॥३९॥
द्वे सहस्त्रे शतान्येव नवद्वाविंशतिस्तथा।
योजनानामिति व्यासः पूर्वापरेण कथ्यते ॥४०॥
वनस्यास्याखिलायामो देशाद्यायामसन्निभः।
देवारण्यवने तस्मिन् प्रासादाः सन्त्यनेकशः ॥४१॥

अर्थ–उस रत्नमय वन वेदी के पूर्व में और लवण समुद्र के पश्चिम में अनेक प्रकार के वृक्ष समूहों से व्याप्त देवारण्य नाम का मनोहर वन है। जिसका पूर्व पश्चिम व्यास दो हजार नौ सौ बाईस (२९२२) योजन प्रमाण है और आयाम देश के आयाम सदृश अर्थात् १६५९२ $\frac{२}{१९}$ योजन प्रमाण है। इस देवारण्य वन में अनेक प्रकार के प्रासाद हैं ॥३९-४१॥

अब देवारण्यस्थ प्रासादों का वर्णन करते हैं–

नानारत्नमयास्तुङ्गा वनवेद्याद्यलंकृताः।
जिनालयाङ्किता दिव्या मणितोरणभूषिताः ॥४२॥
प्रचुराः पुष्करण्यश्च क्रीडाशालाः सभागृहाः।
उपपादालयास्तुङ्गा बाह्यान्तर्मणिचित्रिताः ॥४३॥
चतुर्विदिक्षुगेहाः स्युरात्मरक्षसुधाभुजाम्।
परिषत् त्रयदेवानां प्रासादा दक्षिणादिशि ॥४४॥
सप्तानीकामराणां च दिग्भागे पश्चिमे गृहाः।
किल्विषाह्वयदेवानामभियोगामृताशिनाम् ॥४५॥
सम्मोहनिर्जराणां च कन्दर्पाख्यसुरात्मनाम्।
प्रत्येकं स्युः पृथग्भूताः प्रासादाः शाश्वताः शुभाः ॥४६॥

अर्थ–देवारण्य वन में स्थित प्रासाद नाना रत्नमय, उन्नत, वन वेदी आदि से अलंकृत और जिनालयों से विभूषित हैं। वहाँ बहुत से तालाब, क्रीड़ा शालाएँ, सभागृह और बाह्य एवं अभ्यन्तर में

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

मणियों से रचित तथा उन्नत उपपाद भवन हैं। चारों विदिशाओं में आत्मरक्षक देवों के भवन हैं। दक्षिण दिशा में तीनों परिषद् देवों के प्रासाद हैं और पश्चिम दिशा में सात प्रकार के अनीक देवों के गृह हैं। किल्विष देवों,आभियोग, सम्मोह और कन्दर्प जाति के देवों में से प्रत्येक के पृथक्-पृथक् शाश्वत और शोभायुक्त प्रासाद हैं ॥४२-४६॥

अब अन्य देवारण्य का विस्तार करते हैं—

ततः सीतामहानद्या-भागेऽस्ति दक्षिणे परम्।
देवारण्यं च पूर्वोक्त व्यासाद्यैस्तत्समं महत् ॥४७॥
वनेऽस्मिन् सन्ति देवानां बहूनि नगराणि च।
प्राकारगोपुराद्यैश्च तुङ्गधामजिनालयैः ॥४८॥
अलंकृतानि वापीभिर्नगरेषु सुरोत्तमाः।
भूपाश्चतुर्महादेवीयुक्ता वसन्ति पुण्यतः ॥४९॥
परिषत् त्रितयैः सप्तसप्तानीकैः पृथग्विधैः।
सामान्यकात्मरक्षाद्यैर्वेष्टिताजिनभाक्तिकाः ॥५०॥

अर्थ—सीता महानदी के दक्षिण भाग में एक दूसरा देवारण्य नाम का वन है जिसके व्यास आदि का प्रमाण पूर्वोक्त देवारण्य के सदृश ही है। इस वन में भी देवों के बहुत से नगर हैं। प्राकार, गोपुर आदि, उत्तुंग प्रासाद, जिनालय और वापी आदि से अलंकृत इन नगरों में पूर्व पुण्य प्रताप से इन्द्र उत्तम देवों एवं चार महादेवियों से युक्त निवास करते हैं तथा तीन प्रकार के पारिषद देवों, पृथक्-पृथक् सात-सात अनीकों, सामानिक देवों और आत्मरक्षक आदि देवों से वेष्टित होकर जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति करते हैं ॥४७-५०॥

अब देवारण्य के बाद अन्य वेदी, देश, वक्षार एवं विभंगा आदि की अवस्थिति का वर्णन करते हैं—

ततः पश्चिमदिग्भागे दिव्यास्ति वनवेदिका।
क्रोशार्द्धेनावगाहा च प्रागुक्तोत्सेधविस्तृता ॥५१॥
वेद्याश्च पश्चिमाशायां वत्साख्यो विषयो महान्।
गंगासिन्धुनदीरूप्यादिभिः षट्खण्डसंयुतः ॥५२॥
तदार्यखण्डमध्ये स्यात् सुसीमानगरी परा।
धर्मसीमाकरीभूता यतिश्रावकधार्मिकैः ॥५३॥
ततो भवेत् त्रिकूटाख्यो वक्षारशैल ऊर्जितः।
चतुःकूटैर्युतोमूर्ध्नि चैत्यदेवालयाङ्कितैः ॥५४॥
सिद्धकूटं च वत्साख्यं सुवत्साकूटसंज्ञकम्।
त्रिकूटाह्वयमेतानि कूटानि शिखरेऽस्य वै ॥५५॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

तदनन्तरमेवास्ति सुवत्सा विषयः शुभः।
मुनिकेवलिसंघाद्यैर्भूषितोऽद्रिसरिद्वनैः ॥५६॥
तन्मध्ये विद्यते दिव्या कुण्डला नगरी युता।
रत्नशालप्रतोल्याद्यैश्चैत्यालयैश्च धर्मिभिः ॥५७॥
ततस्तप्तजलाभिख्या विभंगा निम्नगा भवेत्।
कुण्डोत्थादेशसीमान्ता वनवेद्यादिवेष्टिता ॥५८॥
पुनर्महान्महावत्सा विषयोऽस्ति शुभाकरः।
ग्रामपत्तनखेटाद्यैर्जिनेन्द्रभवनांकितैः ॥५९॥
तन्मध्ये नाभिवद्भाति नगरी चापराजिता।
जितेन्द्रियैर्जिनागारैर्जिनकल्याणकोत्सवैः ॥६०॥
ततो वैश्रवणोनाम्ना वक्षारोहेमसन्निभः।
सिद्धकूटं महावत्सानामकूटं द्वितीयकम् ॥६१॥
कूटं च वत्सकावत्याख्यं वैश्रवणसंज्ञकम्।
एतैश्चैत्यसुरागारैर्युतैः कूटैः स मण्डितः ॥६२॥

अर्थ—देवारण्य के आगे पश्चिम दिशा में अर्ध कोश अवगाह (नींव) और पूर्वोक्त उत्सेध एवं विस्तार से युक्त एक दिव्य वन वेदी है। वेदी की पश्चिम दिशा में महान् वत्सा नामक देश है, जिसके गंगा, सिन्धु नदी और विजयार्ध पर्वत के द्वारा छह खण्ड हुए हैं, उनमें से आर्य खण्ड के मध्य में सुसीमा नाम की एक श्रेष्ठ नगरी है, जो धर्म की सीमा को करने वाली अर्थात् धर्म की सीमा यहीं तक ही है मानो ऐसे सार्थक नाम को धारण करने वाली और मुनिगणों एवं धार्मिक श्रावक गणों के द्वारा सुशोभित है। वत्सा देश के आगे पश्चिम में त्रिकूट नामक श्रेष्ठ वक्षार पर्वत है, जिसके शिखर पर जिनचैत्यालय और देवालयों से अंकित चार कूट हैं। सिद्ध कूट, वत्सा कूट, सुवत्सा कूट और त्रिकूट ये चार कूट उस वक्षार पर्वत के शिखर पर हैं। इसके बाद ही मन को अभिराम सुवत्सा नाम का देश है, जो मुनिगणों, केवलियों और चतुर्विध संघों से विभूषित तथा पर्वतों, सरिताओं और वनों आदि से संयुक्त है। उस देश के मध्य में रत्नों के शाल (परकोटा) प्रतोली आदि से एवं चैत्यालयों से युक्त तथा धार्मिक जनों से व्याप्त कुण्डला नाम की दिव्य नगरी है। सुवत्सा देश के पश्चिम में तप्तजला नाम की विभंगा नदी है, जो कुण्ड से निकली है, देश के बराबर लम्बी है और वन वेदी आदि से वेष्टित है। इस विभंगा के पश्चिम में कल्याण की खान सदृश महान् महावत्सा नाम का देश है, जो ग्राम पत्तन और खेटों आदि से युक्त और जिनेन्द्र भवनों से सम्पन्न है। उसके मध्य में नाभि सदृश अपराजिता नाम की नगरी है, जो जितेन्द्रियों, जिन साधुओं और जिन कल्याणक महोत्सवों से विभूषित रहती है। महावत्सा देश के पश्चिम में कञ्चन सदृश वैश्रवण नाम का वक्षार पर्वत है, जिसका शिखर सिद्धकूट, महावत्सा कूट, वत्सकावती कूट और वैश्रवण कूट जो कि जिन चैत्यालयों और व्यन्तर देवों के प्रासादों से मण्डित

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

है ॥५१-६२॥

पूर्व विदेह क्षेत्र के अवशेष देशों, पर्वतों एवं विभंगा नदियों की अवस्थिति कहते हैं—

ततः परं भवेद्वत्सकावतीविषयोऽद्भुतः।
षट्खण्डाद्रिनदीयुक्तः स्वर्मुक्तिसुखसाधनः ॥६३॥
तन्मध्ये महती नित्या प्रभंकरा पुरी भवेत्।
जिनेन्द्रजैनसंघाद्यैश्चैत्यागारैर्भृतापरैः ॥६४॥
ततो मत्तजलासंज्ञा विभङ्गा सरिदुत्तमा।
सीतामध्ये प्रविष्टा च कुण्डद्वारेण निर्गता ॥६५॥
तस्या अपरभागेऽस्ति रम्याख्यो विषयः शुभः।
रम्यो रम्यैर्जिनागारैर्धर्मकर्ममहोत्सवैः ॥६६॥
अंकाख्या नगरी रम्या तदार्य खण्डमध्यगा।
भातिधर्मखनीवोच्चैर्धर्मिधर्मप्रवर्तनैः ॥६७॥
ततोऽञ्जनगिरिर्नाम्ना वक्षारस्तुङ्गविग्रहः।
हेमवर्णश्चतुः कूट चैत्यदेवालयान्वितः ॥६८॥
सिद्धकूटं च रम्याख्यं कूटं सुरम्यनामकम्।
अञ्जनाह्वयमेतैः सकूटैरग्रेऽप्यलंकृतः ॥६९॥
ततः सुरम्य देशोऽस्ति रमणीयः शुभावहः।
चैत्यागारसुसङ्घाढ्यैर्ग्रामखेटपुरादिभिः ॥७०॥
पुरी पद्मावतीनाम्नी तदार्यखण्डभूस्थिता।
श्रीमद्भिर्धार्मिकैर्भव्यैर्भाति पद्मेव शाश्वता ॥७१॥
ततो नदीविभङ्गास्ति परोन्मत्तजलाभिधा।
जिनेन्द्रप्रतिमायुक्तैर्वेदिका तोरणैर्युता ॥७२॥
तस्या अपरभागेस्याद् रमणीयाभिधो महान्।
धर्मिधामजिनागारैः सार्थोदेशोऽतिसुन्दरः ॥७३॥
तन्मध्ये राजते रम्या शुभाख्या नगरी शुभा।
शुभध्यानशुभाचारैः शुभैः शुभखनीव च ॥७४॥

अर्थ—वैश्रवण वक्षार पर्वत के आगे वत्सकावती नाम का अद्भुत देश है। जो छह खण्डों, पर्वतों और नदियों से युक्त तथा स्वर्ग और मोक्ष सुख का साधन है। उस देश के मध्य में प्रभंकरा नाम की शाश्वत और महान् नगरी है, जो अर्हन्त परमेष्ठियों, जिनसंघों और जिनमन्दिरों से निरन्तर भरी रहती है। इस वत्सकावती देश के बाद मत्तजला नाम की उत्तम विभंगा नदी है, जो कुण्ड के द्वार से

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

निकलकर सीता महानदी के मध्य में प्रविष्ट हुई है। इस नदी के पश्चिम भाग में रम्या नाम का श्रेष्ठ देश है, जो मनोज्ञ जिनचैत्यालयों एवं धार्मिक और लौकिक महोत्सवों से निरंतर रम्य-शोभित रहता है, इस देश के मध्य में सुन्दर आर्य खण्ड है, जिसके मध्य में अंका नाम की नगरी है, जो धर्म की खान के सदृश है और धर्म प्रवर्तन करने वाले उत्कृष्ट धर्मात्माओं से सुशोभित है। रम्या देश के पश्चिम भाग में अञ्जनगिरि नाम का उत्तुंग वक्षार पर्वत है, जो हेमवर्ण का है और चार कूटों, चैत्यालयों तथा अन्य देवगणों के प्रासादों से समन्वित है। इस पर्वत का शिखर सिद्धकूट, रम्यकूट, सुरम्यकूट और अञ्जन इन चार कूटों से अलंकृत है। इस अंजनगिरि वक्षार के पश्चिम में मन को अभिराम और पुण्य प्रवेश का कारणभूत सुरम्य नाम का देश है, जो जिनचैत्यालयों, जिनसंघों, ग्रामों, खेटों और अनेक नगरों से युक्त है। इसके मध्य में आर्य खण्ड है, जिसके मध्य में शाश्वत पद्मावती नाम की नगरी है, जो धनवानों और धार्मिक भव्यजनों के द्वारा पद्म के समान शोभायमान होती है। इस सुरम्य देश के पश्चिम में उन्मत्तजला नाम की श्रेष्ठ विभंगा नदी है, जो जिनेन्द्र प्रतिमाओं, वेदिकाओं एवं तोरणों से संयुक्त है। इस नदी के पश्चिम में धर्म स्थानों एवं जिन चैत्यालयों से रम्य सार्थक नाम वाला रमणीय नाम का सुन्दर देश है, जिसके मध्य में शुभा नाम की शुभ शोभा युक्त नगरी है, जो शुभ-कल्याण की खान के सदृश, शुभ-उत्तम ध्यान और शुभ आचरणों से सुशोभित है ॥६३-७४॥

अब सुदर्शनमेरु पर्यन्त देशों, वक्षारों एवं नदियों का अवस्थान कहते हैं—

तत आदर्शनाभिख्यो वक्षारोऽतीवसुन्दरः।
सिद्धायतनकूटं च रमणीयसमाह्वयम् ॥७५॥
कूटं हि मङ्गलावत्याख्यमादर्शनसंज्ञकम्।
चैत्यदेवालयाग्रस्थैरेतैः कूटैः स संयुतः ॥७६॥
ततोऽस्तिविषयो मंगलावतीसंज्ञकोऽद्भुतः।
धर्मकर्मोत्थ माङ्गल्यैर्जिनाद्यैर्मङ्गलोत्तमैः ॥७७॥
तन्मध्येनगरी भाति महती रत्नसञ्चया।
दृग्ज्ञानव्रतरत्नाढ्यैर्नृस्त्रीरत्नैस्तथापरैः ॥७८॥
ततोत्परदिशाभागे नित्या प्राग्वेदिकासमा।
स्यात्पूर्वभद्रशालाख्य वनस्य रत्नवेदिका ॥७९॥
ततो नैऋत्य दिग्भागे मेरोश्चदक्षिणे तटे।
सीतोदाया महानद्या विदेहेऽपरसंज्ञके ॥८०॥

अर्थ—रमणीय महादेश के पश्चिम में आदर्शन नाम का अतीव सुन्दर वक्षार पर्वत है, जिसका शिखर जिनचैत्यालय एवं अन्य व्यन्तर देवों के प्रासादों से संयुक्त सिद्धायतन, रमणीय, मंगलावती और आदर्शन नामक कूटों से अलंकृत है। इस आदर्शन वक्षार के पश्चिम में धर्म और अन्य क्रियाओं

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

से उत्पन्न होने वाले मंगलों से तथा जिनेन्द्र भगवान् रूप उत्तम मंगलों से संयुक्त मंगलावती नाम का अद्‌भुत देश है। उसके मध्य में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप रत्नों से, स्त्री पुरुष रूप रत्नों से (वहाँ के स्त्री पुरुष रत्नों के समान हैं) और अन्य रत्नों से युक्त रत्नसञ्चया नाम की विशाल नगरी सुशोभित है। इस देश के पश्चिम भाग में पूर्वकथित भद्रशाल की वेदिका के समान पूर्व भद्रशालवन की शाश्वत, रत्नमय वेदिका है। इस पूर्व भद्रशाल वन वेदी के आगे मेरु पर्वत की नैऋत्य दिशा में और सीतोदा महानदी के दक्षिण तट पर पश्चिम विदेह क्षेत्र की अवस्थिति है ॥७५-८०॥

अब पश्चिम विदेहगत देशों, वक्षारों एवं नदियों का अवस्थान कहते हैं—

निषधस्योत्तरे भागे शाश्वता मणिवेदिका।
भवेत् पश्चिमसंज्ञस्य भद्रशालवनस्य च ॥८१॥
वेद्याः पश्चिमदिग्भागे पद्माख्यो विषयः शुभः।
स्याद् गंगासिन्धु रूपाद्रिभिः षड्खण्डीकृतोऽखिलः ॥८२॥
तन्मध्येऽश्वपुरी नाम्नी नगरी पुण्यमातृका।
पुण्यवद्भिर्बुधैः पूर्णा जिनधामादिशोभिता ॥८३॥
ततोऽस्ति शब्दवान्नाम्ना वक्षारो हाटकप्रभः।
चतुःकूटाङ्कितो मूर्ध्नि वनवेद्याद्यलंकृतः ॥८४॥
सिद्धकूटं च पद्माख्यं सुपद्माकूटनामकम्।
शब्दवत् कूटमेतानि स्युः कूटान्यस्य मस्तके ॥८५॥
ततो भवेत् सुपद्माख्य देशः पद्मालयोपमः।
साध्यते यत्र धर्माद्यैः पद्मालोकत्रये स्थिता ॥८६॥
तत्र सिंहपुरीसंज्ञा नगरी राजते तराम्।
कर्मेभहननोद्युक्तैःर्नरसिंहैः सुधार्मिकैः ॥८७॥
ततो नदी विभंगास्ति क्षीरोदाख्या मनोहरा।
कुण्डान्निर्गत्य सीतोदा मध्यायाता क्षयातिगा ॥८८॥
पुनर्देशो महापद्माह्वयः षट्खण्डराजितः।
नद्यद्रिवनसद्ग्रामपुराद्यैर्धर्मिभिःशुभैः ॥८९॥
तन्मध्ये नगरी रम्या महापुरी समाह्वया।
साधयन्ति महान्तोऽस्याः स्वर्गं मोक्षं तपोवृषात् ॥९०॥
ततो विकटवान्नाम्ना वक्षारोऽस्ति सुराश्रितः।
सिद्धायतनकूटं च महापद्माख्यकं ततः ॥९१॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

कूटं हि पद्मकावत्याह्वयं विकटवत् परम्।
नाम्नेमानि चतुःकूटानि सन्ति शिखरेऽस्य च ॥९२॥
ततोऽस्ति विषयः पद्मकावतीसंज्ञको महान्।
यत्र केवलिनः पुंसां विहरन्ति शिवाप्तये ॥९३॥
तन्मध्ये राजधानी स्यात् विजयापरमापुरी।
यस्यां मोक्षाय धर्माय स्वजन्मेच्छन्ति नाकिनः ॥९४॥

अर्थ—निषध पर्वत के उत्तर भाग में पश्चिम भद्रशाल की मणिमय और शाश्वत वेदी है। वेदी के पश्चिम भाग में पद्म नाम का सुन्दर देश है, जिसके विजयार्ध पर्वत और गंगा-सिन्धु नदियों के द्वारा छह खण्ड होते हैं। इस देश के मध्य में पुण्य की जननी के सदृश अश्वपुरी नाम की नगरी है, जो पुण्यवान् पुरुषों एवं विद्वज्जनों से परिपूर्ण और जिनचैत्यालयों से सुशोभित है। इस देश के पश्चिम में शिखर पर चार कूटों से युक्त एवं वन वेदी आदि से अलंकृत हेमवर्ण वाला शब्दवान् नामक वक्षार पर्वत है। इस पर्वत के अग्रभाग में सिद्धकूट, पद्मकूट, सुपद्म और शब्दवान् नाम के चार कूट अवस्थित हैं। इस वक्षार के पश्चिम में लक्ष्मी के आलय की उपमा को धारण करने वाला सुपद्म नाम का देश है, जहाँ भव्यजन धर्मादि के द्वारा त्रैलोक्य स्थित लक्ष्मी का साधन करते हैं। इस देश के मध्य में सिंहपुरी नाम की नगरी शोभायमान है, जहाँ के उत्तम धार्मिक मनुष्यरूपी सिंह निरन्तर कर्मरूपी हाथियों को मारने में उद्यत रहते हैं। इस देश के पश्चिम में क्षीरोदा नाम की मनोहर विभंगा नदी है, जो क्षय रहित है और कुण्ड से निकलकर सीतोदा महानदी के मध्य में प्रवेश करती है। इस विभंगा के पश्चिम में छह खण्डों से सुशोभित महापद्म नाम का देश है, जो नदी, पर्वत, वन, उत्तम ग्राम और नगरों से तथा शुभाचरण से युक्त धार्मिक जनों से परिपूर्ण है। इस देश के मध्य में अति रम्य महापुरी नाम की नगरी है, जहाँ पर महान् पुरुष तपरूपी वृक्ष से स्वर्ग और मोक्ष का साधन करते हैं। इस देश के पश्चिम में देवों के आश्रयभूत विकटवान् नाम का वक्षार पर्वत है, जिसके शिखर पर सिद्धायतन, महापद्म, पद्मकावती और विकटवान् नाम के चार कूट अवस्थित हैं। विकटवान् वक्षार की पश्चिम दिशा में पद्मकावती नाम का महान् देश है, जहाँ पर भव्यों को मोक्ष प्राप्त कराने के लिये केवली भगवान् निरन्तर विहार करते हैं। इस देश के मध्य में विजयापरमपुरी नामक नगरी है, जो देश की राजधानी है। धर्म और मोक्ष के लिये जिस नगरी में देवगण भी अपने जन्म लेने की वाञ्छा करते हैं ॥८१-९४॥

अब पद्मकावती देश के आगे अन्य-अन्य देशों, विभंगा नदियों एवं पर्वतों की अवस्थिति कहते हैं—

पुनर्नदी विभङ्गा स्यात् सीतोदाख्या विभूषिता।
कुण्डव्यासोनदेशस्य ह्यायामेन समायता॥९५॥
तस्याः पश्चिमभागेऽस्ति देशः शङ्खाख्य ऊर्जितः।
शलाकापुरुषा यत्र जायन्ते गणनातिगाः॥९६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

तन्मध्येऽस्त्यरजाभिख्या पुरी स्वर्मुक्तिदायिनी।
यस्याः सन्तोऽन्वहं यान्ति धर्माचारैर्दिवं शिवम् ॥९७॥
तत आशीविषोनाम्ना वक्षारः काञ्चनच्छविः।
देशायामसमायामश्चतुःकूटाश्रितोऽद्भुतः ॥९८॥
सिद्धकूटं च शङ्खाख्यं कूटं नलिनसंज्ञकम्।
कूटमाशीविषं हीति कूटानि तस्य मस्तके॥९९॥
ततो नलिनदेशोऽस्ति यत्र सन्मार्गवृत्तये।
विहरन्ति गणेशाश्च सूरयः पाठकाः सदा ॥१००॥
भवेत्तस्यार्यखण्डे च विरजा नगरी परा।
यस्यां कर्मरजांस्युच्चै र्निर्धूयस्युर्विदोऽमलाः ॥१०१॥
तदनन्तरमेवात्र स्यान्नदी श्रोतवाहिनी।
वनतोरणवेदीभिर्भूषिता तटयोर्द्वयोः ॥१०२॥
ततोऽस्ति कुमुदाभिख्यो देशोधर्मसुखाकरः।
दृश्यन्ते योगिनो धीरा यत्रारण्याचलादिषु ॥१०३॥
अशोकानगरी तत्रातीतशोकैर्बुधैर्भृता।
अर्जयन्ति सदा धर्मं यस्यां दक्षाव्रतादिभिः ॥१०४॥
ततः सुखावहो नाम्ना वक्षारोऽस्ति सुखाकरः।
तत्रत्यानामिहामुत्र संततं पुण्यकर्मभिः ॥१०५॥
सिद्धाख्यं कुमुदाभिख्यं सरिताह्वयमेव हि।
सुखावहमिमान्यस्य चतुःकूटानि मस्तके ॥१०६॥

अर्थ—पद्मकावती देश के आगे सीतोदा नाम की विभंगा नदी है, जिसका आयाम कुण्ड व्यास से हीन देश के आयाम प्रमाण है। विभंगा के पश्चिम भाग में शंखा नामक श्रेष्ठ देश है, जहाँ पर गणनातीत अर्थात् असंख्यात शलाका पुरुष उत्पन्न होते हैं। उसके मध्य में स्वर्ग और मोक्ष देने वाली अरजा नाम की नगरी है, जहाँ से भव्यजन धर्माचरण के द्वारा निरन्तर स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त करते हैं। इस देश के आगे देश की लम्बाई प्रमाण आयाम से युक्त, चार कूटों से अलंकृत और कञ्चन की आभा को धारण करने वाला आशीविष नाम का वक्षार पर्वत है। उसके मस्तक पर सिद्धकूट, शंखाकूट, नलिन और आशीविष नाम के चार कूट हैं। वक्षार पर्वत के आगे नलिन नाम का देश है, जहाँ पर धर्म मार्ग के प्रकाशन हेतु अथवा सन्मार्ग की प्रवृत्ति हेतु गणधरदेव, आचार्य और उपाध्याय निरन्तर विहार करते हैं। इस देश के आर्यखण्ड में विरजा नाम की श्रेष्ठ नगरी है, जहाँ पर विद्वज्जन कर्मरूपी रज-धूल को भली प्रकार नष्ट करके निर्मल होते हैं अर्थात् मोक्ष प्राप्त करते हैं। इस देश के बाद ही दोनों तटों पर वनों, तोरणों एवं वेदियों से विभूषित श्रोतवाहिनी विभंगा नदी है। विभंगा के पश्चिम में धर्म

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

और सुख का आकर (खान) कुमुद नाम का देश है, जहाँ के वनों और पर्वतों पर निरन्तर धीर-वीर योगिगण (साधु) दिखाई देते हैं। वहाँ शोक आदि से रहित बुद्धिमान् मनुष्यों से भरी हुई अशोक नामक नगरी है। जहाँ पर व्रत आदि करने में चतुर भव्यजन सदा धर्म का अर्जन करते हैं। उस कुमुद देश के आगे सुखोत्पादक सुखावह नाम का वक्षार पर्वत है, जहाँ के मनुष्य सदा पुण्य क्रियाओं के द्वारा इह लोक और परलोक में सुख प्राप्त करते हैं और जिसके शिखर पर सिद्ध कूट, कुमुद, सरिता और सुखावह नामक चार कूट हैं ॥९५-१०६॥

अब अन्य अवशेष देशों आदि के अवस्थान का दिग्दर्शन कराते हैं—

ततोऽस्ति सरिताभिख्यो महान् जनपदः शुभः।
यत्रायान्त्यन्वहं देवाः पूजाभवत्यै परात्मनाम् ॥१०७॥
वीतशोकापुरी तत्र यस्यां शोकातिगा विदः।
स्वर्गमोक्षसुखाद्याप्त्यै कुर्वन्ते धर्ममुत्तमम् ॥१०८॥
ततो हेममया रम्या स्यात् परा वनवेदिका।
पूर्वोक्तवेदिकातुल्या व्यासायामोच्छ्रितादिभिः ॥१०९॥
वेद्या अपरभागे स्याद् भूतारण्याख्यसद्वनम्।
देवारण्यसमं चैत्यालयदेवपुरान्वितम् ॥११०॥
तस्योत्तरदिशाभागे जिनेन्द्रभवनाश्रितम्।
भूतारण्यं भवेदन्यत्सुरसौधपुरान्वितम् ॥१११॥
वनात्पूर्वदिशाभागे सीतोदायास्तटोत्तरे।
नीलाद्रेर्दक्षिणे पार्श्वेस्याद्रत्नवनवेदिका ॥११२॥
ततः पूर्वे भवेद्देशो वप्राख्यो भृत उत्तमैः।
यतिश्रावकचैत्याद्यैः कुलिङ्ग्यादिविवर्जितः ॥११३॥
तस्य मध्ये पुरी रम्या विजयाख्या जयन्ति च।
दुःकर्माक्षकषायारीन् यस्यां योगैर्मुमुक्षवः ॥११४॥
ततः पूर्वेस्ति चन्द्राख्यो वक्षारोहेमभानिभः।
जिनेन्द्रसुरधामाग्रैश्चतुः कूटैः शिरोऽङ्कितः ॥११५॥
सिद्धकूटं च वप्राख्यं सुवप्राभिधमन्तिमम्।
चन्द्रकूटमिमानि स्युः शिखरेऽस्य शुभान्यपि ॥११६॥
ततः स्याद्विषयो रम्यः सुवप्राह्वय ऊर्जितः।
यत्रार्हद्गणियोगीन्द्रा विरहन्ति सुरार्चिताः ॥११७॥
तदार्य खण्डभूभागे वैजयन्तीपुरी परा।
वसन्ति तुङ्गसौधेषु यस्यां विजयशालिना ॥११८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

ततो नदी विभङ्गास्ति गम्भीरमालिनी परा।
नीलाद्र्यधःस्थकुण्डोत्था सीतोदामध्यमाश्रिता ॥११९॥
तस्याः पूर्वे महावप्राभिधो देशः शुभाकरः।
शुभैर्ग्रामपुराद्यैश्च सतां शुभप्रवर्तनैः ॥१२०॥
तन्मध्ये नगरी भाति जयन्ती संज्ञिका परा।
जिनेन्द्रापरधामौघैः पुण्यवद्भिर्जयोद्धतैः ॥१२१॥

अर्थ—सुखावह वक्षार पर्वत के पश्चिम में सरिता नाम का एक महान् श्रेष्ठ देश है, जहाँ पर जिनेन्द्र भगवान की पूजा भक्ति के लिये निरन्तर देवगण आते रहते हैं। इस देश के मध्य में वीतशोका नाम की नगरी है, जहाँ पर बुद्धिमान् जीव शोक से रहित होते हैं और स्वर्ग एवं मोक्ष की प्राप्ति के लिये सदा उत्तम धर्म का आचरण करते हैं। सरिता देश के आगे कञ्चनमय, अत्यन्त रम्य और श्रेष्ठ वेदिका है, जिसके व्यास आदि का प्रमाण पूर्वकथित वेदिका के व्यास, आयाम और ऊँचाई के सदृश है। इस वेदी के पश्चिम में भूतारण्य नाम का उत्तम वन है, जो देवारण्य के सदृश जिनचैत्यालयों और देवों के नगरों से संयुक्त है। इस वन की उत्तर दिशा में जिन चैत्यालयों से युक्त तथा प्रासादों से संयुक्त देवों के नगरों से समन्वित अन्य भूतारण्य वन है। इस भूतारण्य वन की पूर्व दिशा में, सीतोदा महानदी के उत्तर तट पर और नील कुलाचल के दक्षिण भाग में एक रत्नमय वेदिका है। इस वेदी की पूर्व दिशा में कुलिंगी साधुओं आदि से रहित और उत्तम मुनिगणों, श्रावकों एवं जिनचैत्यालयों से परिपूर्ण वप्रा नाम का देश है। जिसके मध्य में विजया नाम की अति रम्य नगरी है, जहाँ पर मोक्षाभिलाषी भव्यजन मन, वचन और काय की स्थिरता द्वारा अथवा ध्यान आदि के द्वारा दुष्ट कर्मों, इन्द्रियों और कषायरूपी बैरियों को जीतते हैं। इस वप्रा देश के पूर्व में स्वर्णाभा के सदृश कान्तिवान चन्द्रा नाम का वक्षार पर्वत है, जो जिनचैत्यालय और देवालयों से समन्वित चार कूटों से सुशोभित हैं। इसके शिखर पर सिद्धकूट, वप्रा, सुवप्रा और चन्द्रकूट नाम के चार उत्तम कूट हैं। इस वक्षार के पूर्व में सुवप्रा नाम का रम्य और श्रेष्ठ देश है, जहाँ पर अरहन्तदेव, गणधरदेव और मुनि समूह निरन्तर विहार करते हैं। इस देश के आर्य खण्ड में विजयन्ती नाम की श्रेष्ठ नगरी है, जहाँ के उन्नत भवनों में विजय स्वभावी भव्य जीव रहते हैं। इसके बाद गम्भीरमालिनी नाम की श्रेष्ठ विभंगा नदी है, जो नील कुलाचल के अधोभाग में स्थित कुण्ड से निकली है और सीतोदा के मध्य प्रवेश करती है। इसके पूर्व में उत्तम ग्राम, नगर आदि से युक्त और सज्जनों की शुभ प्रवृत्तियों से सुशोभित पुण्य की खान सदृश महावप्रा नाम का उत्तम देश है। जिसके मध्य में जयन्ती नाम की उत्तम नगरी शोभायमान होती है, जो जिनचैत्यालयों, अन्य प्रासाद समूहों, पुण्यवान भव्य जीवों एवं जितेन्द्रिय जीवों से सदा परिपूर्ण रहती है ॥१०७-१२१॥

अब पूर्वविदेहगत वक्षार पर्वतों आदि की अवस्थिति कहते हैं—

ततः सूराह्वयोऽद्रिः स्याद्वक्षारोऽमरसंयुतः।
सिद्धकूटं महावप्राभिधानकूटमेव हि ॥१२२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

कूटं च वप्रकावत्याख्यं सूरकूट मन्तिमम्।
तस्याग्रे स्यात्सुरोपेत मेतत्कूट चतुष्टयम् ॥१२३॥
ततो जनपदो वप्रकावत्याख्यो महान्भवेत्।
यत्र प्रवर्तते धर्मो मोक्षमार्गोऽविनश्वरः ॥१२४॥
धर्मशर्माकरा तस्य मध्येऽपराजिता पुरी।
कर्मारिनिर्जयोद्युक्तैर्विद्वद्भोराजतेतराम् ॥१२५॥
ततो नदी विभङ्गास्ति शाश्वता फेनमालिनी।
रत्नतोरणसद्वेदी वनाङ्कितततटद्वया ॥१२६॥
ततो गन्धाह्वयो देशा एकार्यखण्डभूषितः।
धर्मशर्माकरः पञ्चम्लेच्छखण्डयुतोऽक्षयः ॥१२७॥
तन्मध्ये नगरी चक्राह्वया भाति जिनालयैः।
शालगोपुरसौधाद्यैश्चक्रयादि पुरुषोत्तमैः ॥१२८॥
ततो नागाभिधः शैलो वक्षारः शिखरेऽङ्कितः।
अर्हत्सुरालयाग्रस्थैस्तुङ्गकूटचतुष्टयैः ॥१२९॥
सिद्धकूटं च गन्धाख्यं सुगन्धाह्वयमेव च।
नागकूटमिमान्युच्चैः स्फुरन्ति शैलमस्तके ॥१३०॥
तस्य पूर्वे भवेद्देशः सुगन्धाख्यो महोत्तमः।
धर्मचैत्यालयोपेतैः ग्रामारामपुरादिभिः ॥१३१॥
तन्मध्ये राजते खड्गापुरी रत्नजिनालयैः।
पुण्यवद्भिर्बुधैर्नित्यं धर्मोत्सवशतैः परैः ॥१३२॥
ततः पराविभङ्गा च नदीस्यादूर्मिमालिनी।
दक्षिणोत्तर दिग्दीर्घा पूर्वपश्चिमविस्तरा ॥१३३॥
तदनन्तरमत्रास्ति विषयो गन्धिलाख्यकः ॥
जिनधर्मोत्तमाचारैर्जैर्नैश्च धर्मिभिर्भृतः ॥१३४॥
तत्रायोध्यापुरी भाति भटैः कर्मजयोद्यतैः।
जिनचैत्यालयैर्दक्षैः खनीवधर्मधर्मिणाम् ॥१३५॥

अर्थ—महावप्रा देश के पूर्व में देवों से संयुक्त सूर नामक वक्षार पर्वत है। उसके शिखर पर जिनचैत्यालय और देव प्रासादों से युक्त सिद्धकूट, महावप्रा, वप्रकावती और सुर नाम वाले चार कूट अवस्थित हैं। सूर वक्षार के पूर्व में वप्रकावती नाम का श्रेष्ठ देश है, जहाँ पर धर्म और मोक्षमार्ग शाश्वत प्रवर्तते हैं। उस देश के मध्य में धर्म और सुख की खान स्वरूप अपराजित नाम की नगरी है, जो कर्म शत्रुओं को जीतने में उद्यत भव्य जीवों से और विद्वज्जनों से अत्यन्त शोभायमान रहती है। उस देश

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

के आगे शाश्वत बहने वाली फेनमालिनी नाम की विभंगा नदी है, जिसके दोनों तट रत्नों के तोरणों, उत्तम वेदियों और वनों से अञ्चित हैं। विभंगा नदी के आगे धर्म और सुख के आकर स्वरूप एक आर्य खण्ड से विभूषित और पाँच म्लेच्छ खण्डों से युक्त गन्ध नाम का शाश्वत देश है। जिसके मध्य में जिन चैत्यालयों, शाल, गोपुर एवं प्रासादों और चक्रवर्ती आदि महापुरुषों से विभूषित चक्र नाम की नगरी है। गन्ध देश के पूर्व में शिखर पर अंकित हैं जिनचैत्यालय और देवों के आलय जिनके, ऐसे चार कूटों से संयुक्त नागा (धिप) नाम का वक्षार पर्वत है। जिसके मस्तक पर सिद्धकूट, गन्धकूट, सुगन्धकूट और नागकूट नाम के चार महान् कूट स्फुरायमान होते हैं। नाग वक्षार के पूर्व में जिनचैत्यालयों, नगरों, ग्रामों और उद्यानों से सहित सुगन्ध नाम का महा उत्तम देश है। उसके मध्य में खड्गापुरी नगरी है, जो रत्नों के जिनालयों से, पुण्यवान् पुरुषों, बुद्धिमानों और धार्मिक महोत्सवों में तल्लीन ऐसे अन्य भव्यजनों से सदा शोभायमान रहती है। सुगन्ध देश के आगे ऊर्मि नाम की विशाल विभंगा नदी है, जो दक्षिण-उत्तर लम्बी और पूर्व-पश्चिम चौड़ी है। उसके बाद जैनधर्म जन्य उत्तम आचरणों, जैन बन्धुओं एवं धर्मात्माओं से परिपूर्ण गन्धिला नाम का देश है। उसके मध्य में धर्म और धर्मात्माओं की खान के सदृश अयोध्या नाम की नगरी है, जो पण्डित जनों, जिन चैत्यालयों एवं कर्मों पर विजय प्राप्त करने में प्रयत्नशील भव्यजनों से सदा सुशोभित रहती है ॥१२२-१३५॥

अब भद्रशाल की वेदी पर्यन्त देशों, वक्षारों एवं विभंगा नदियों का अवस्थान कहते हैं—

ततो देवाद्रिनामास्ति वक्षार ऊर्जितोऽव्ययः।
प्रथमं सिद्धकूटाख्यं द्वितीयं गन्धिलाह्वयम् ॥१३६॥
कूटं च गन्धमालिन्याख्यं देवकूटमन्तिमम्।
मणिकूटैरमीभिः सोऽलंकृतः शिखरे वरे ॥१३७॥
तत्पार्श्वे विषयो गन्धमालिनीसंज्ञकोऽद्भुतः।
द्विनदीविजयार्धैश्च षट्खण्डीकृत उत्तमः ॥१३८॥
तत्सीतोदोत्तरे भागे स्यादवध्यापुरी परा।
पुण्यकर्माकरीभूतास्वर्मुक्ति धर्ममातृका ॥१३९॥
तदन्ते शाश्वती दिव्या वेदिका स्थूलविग्रहा।
वनस्यापर भद्रादिशालस्यांघ्रिप-शालिनः ॥१४०॥

अर्थ—गन्धिला नाम देश के आगे अनादि निधन देवाद्रि नाम का श्रेष्ठ वक्षार पर्वत है। इसके शिखर पर सिद्धकूट, गन्धिला, गन्धमालिनी और देवकूट नाम के चार कूट हैं, इन्हीं मणिमय चार कूटों से वह पर्वत अलंकृत है। देवाद्रि वक्षार के आगे गन्धमालिनी नाम का अद्भुत देश है, जिसके दो नदियों और विजयार्ध पर्वत के द्वारा छह खण्ड हुए हैं। इस देश के मध्य में और सीता महानदी की उत्तर दिशा में अवध्या नाम की श्रेष्ठ नगरी है, जो पुण्यकर्म की खान स्वरूप और स्वर्ग मोक्ष देने वाले

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

धर्म की माता के समान है। इस देश के बाद अन्त में अंघ्रिप वृक्षों से सुशोभित, अनादि निधन, स्थूलकाय और दिव्य, पश्चिम भद्रशाल वन की वेदी है ॥१३६-१४०॥

अब वनों, वेदियों, वक्षार पर्वतों और देशों का आयाम कहते हैं—

देवारण्यद्वयोर्भूतारण्याख्ययोर्वनद्वयोः ।
अष्टानां वनवेदीनां द्व्यष्टवक्षारभूभृताम् ॥१४१॥
द्वात्रिंशद्विषयानां चायामः स कीर्तितो बुधैः।
सीताव्यासोन विस्तारो विदेहार्धस्य यो भुवि ॥१४२॥

अर्थ—सीता नदी के विस्तार (५०० यो.) को विदेह के विस्तार (३३६८४ $\frac{४}{१९}$ यो.) में से घटा (३३६८४ $\frac{४}{१९}$ -५००) कर शेष को आधा (३३१८४ $\frac{४}{१९}$ ÷ २) करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उतना ही आयाम प्रमाण (१६५९२ $\frac{२}{१९}$ यो.) दो देवारण्यों, दो भूतारण्य वनों, आठ वन वेदियों, सोलह वक्षार पर्वतों और बत्तीस देशों का है ऐसा विद्वानों के द्वारा कहा गया है ॥१४१-१४२॥

उसी का विशेष कहते हैं—

द्वि देवारण्यद्विभूतारण्याष्ट वेदिकाषोडशवक्षारद्वात्रिंशद्वेशानां प्रत्येकमायामः षोडशसहस्र पंचशतद्विनवतियोजनानि योजनैकोनविंशति भागानां द्वे कले च।

अर्थ—दो देवारण्यवनों, दो भूतारण्य वनों, (चार वनों की) आठ वेदिकाओं, सोलह वक्षार पर्वतों और बत्तीस देशों में से प्रत्येक का आयाम सोलह हजार पाँच सौ बानवे योजन और एक योजन के उन्नीस भागों में से दो भाग (१६५९२ $\frac{२}{१९}$ यो.) प्रमाण है।

अब कुण्डों का व्यास एवं गहराई कहते हैं—

द्वादशप्रमकुण्डानां विभङ्गोत्पत्तिकारिणाम्।
योजनानां शतं व्यासः पञ्चविंशतिसंयुतम् ॥१४३॥
सर्वत्र चावगाहो योजनविंशतिसम्मितः।
महांतस्तोरणद्वारवेद्याद्याः सन्ति शाश्वताः ॥१४४॥

अर्थ—बारह विभंगा नदियों की उत्पत्ति के कारण भूत बारह कुण्डों का व्यास एक सौ पच्चीस (१२५) योजन प्रमाण है और अवगाह सर्वत्र बीस योजन प्रमाण है। ये कुण्ड अनाद्यनिधन और विशाल तोरण द्वारों एवं वन वेदियों से युक्त हैं ॥१४३-१४४॥

अब विभंगा नदियों का आयाम कहते हैं—

द्विषट्प्रमविभङ्गानामायामः प्रोदितः श्रुते।
कुण्डव्यासोनदेशायामेन सादृश्य आश्रितः ॥१४५॥

द्वादशविभंगानदीनां प्रत्येकंदीर्घताषोडशसहस्रचतुःशतसप्तषष्टि योजनानि योजनैकोनविंशभागानां द्वे कले।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अर्थ—देश के आयाम (१६५९२$\frac{२}{१९}$यो.) में से कुण्ड का व्यास (१२५ यो.) घटाने पर जो प्रमाण (१६५९२$\frac{२}{१९}$–१२५=१६४६७$\frac{२}{१९}$यो.) रहता है, उसी के सदृश प्रत्येक विभंगा नदियों का आयाम आगम में कहा गया है। बारह विभंगा नदियों में से प्रत्येक विभंगा की दीर्घता (लम्बाई) सोलह हजार चार सौ सड़सठ योजन और एक योजन के उन्नीस भागों में से दो भाग प्रमाण अर्थात् १६४६७$\frac{२}{१९}$योजन है।

अब विदेहस्थ रक्तादि ६४ नदियों का आयाम कहते हैं—

चतु:षष्टिप्रमाणानां रक्तादिसरितां स्फुटम्।
स्वकुण्डविस्तरोनोयो देशायाम: स एव हि ॥१४६॥

रक्तारक्तोदागङ्गासिन्धुसंज्ञानां चतु:षष्टिनदीनामायाम: प्रत्येकं षोडशसहस्रपञ्चशतैकोन-त्रिंशद्योजनानि द्वौ क्रोशौ योजनैकोनविंशति भागानां द्वौ भागौ।

अर्थ—विदेहस्थ गंगा, सिन्धु, रक्ता और रक्तोदा इन ६४ नदियों में से प्रत्येक के आयाम का प्रमाण अपने-अपने कुण्ड के विस्तार (६२$\frac{१}{२}$यो.) से हीन देश के आयाम (१६५९२$\frac{१}{२}$–६२$\frac{१}{२}$=१६५२९ योजन और दो कोश) प्रमाण ही है ॥१४६॥

रक्ता, रक्तोदा, गंगा और सिन्धु इन ६४ नदियों में से प्रत्येक नदी की लम्बाई सोलह हजार पाँच सौ उन्तीस योजन दो कोस और एक योजन के उन्नीस भागों में से दो भाग प्रमाण है। अर्थात् १६५२९ $\frac{२}{१९}$योजन और दो कोस प्रमाण है।

इदानीं विदेहक्षेत्रस्य पूर्वापरेणायाम: कथ्यते—

मेरोर्विष्कम्भो दशसहस्रयोजनानि। भद्रशालवनद्वयो: चतुश्चत्वारिंशत्सहस्रयोजनानि च षोडश-विषयानामेकीकृते विस्तर: पञ्चत्रिंशत्सहस्रचतु:शतषडुत्तरयोजनानि। अष्टवक्षाराद्रीणां पिण्डीकृती व्यास: चतु:सहस्रयोजनानि। षड्विभङ्गनदीनामेकत्रीकृतो विष्कम्भ: सार्धसप्तशतयोजनानि। देवारण्य-भूतारण्यवन-द्वयोर्मेलिता विस्तृति: पञ्चसहस्राष्टशतचतुश्चत्वारिंशद्योजनानि। एवमेतेषां मेर्वादीनामेकत्री-कृतो व्यास: विदेहस्यायामो लक्षयोजनप्रमाणो भवति।

अर्थ—अब विदेह क्षेत्र का पूर्व-पश्चिम आयाम कहते हैं—सुदर्शनमेरु का विष्कम्भ १०००० योजन, दोनों भद्रशाल वनों का ४४००० योजन, सोलह देशों का एकत्रित विस्तार ३५४०६ योजन, आठ वक्षार पर्वतों का एकत्रित व्यास ४००० योजन, छह विभंगा नदियों का एकत्रित व्यास ७५० योजन और देवारण्य भूतारण्य दोनों वनों का एकत्रित व्यास ५८४४ योजन प्रमाण है। इन सब मेरु आदि का एकत्रित व्यास (१०००० + ४४००० + ३५४०६ + ४००० + ७५० + ५८४४ = एक लाख १००००० योजन होता है, विदेह क्षेत्र का पूर्व-पश्चिम आयाम भी यही एक लाख योजन प्रमाण है।

अब २६ श्लोकों द्वारा विदेह का विस्तृत वर्णन करते हैं—

विदेहक्षेत्रदेशेषु सर्वेषु च पुरादिषु।
मणिहेममयास्तुङ्ग जिनप्रासादपंक्तय: ॥१४७॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

उत्तुङ्गतोरणादीप्ता रत्नबिम्बशतैर्भृताः।
रत्नोपकरणैः पूर्णा न कुदेवालयाः क्वचित् ॥१४८॥
सन्ति बह्व्यः स्फुरद्द्वीपाजिनेन्द्रदिवयमूर्तयः।
नृसुरैश्चार्चिता वन्द्या न नीचदेवमूर्तयः ॥१४९॥
तत्रत्यैः सर्वदा दक्षैरर्च्यन्ते जिनमूर्तयः।
विश्वाभ्युदयसर्वार्थसिद्धयै नाना विधार्चनैः ॥१५०॥
विवाहजातकर्मादि मङ्गलेष्वखिलेषु च।
परमेष्ठिन एवाहो न क्षेत्रपालकादयः ॥१५१॥
जिनेन्द्राः समवस्तृत्याश्रिता द्विषड्गणावृताः।
सतां धर्मोपदेशादीन् ददतो विहरन्ति च ॥१५२॥
मुक्तिमार्गप्रवृत्यर्थं गणेशागणवेष्टिताः।
चतुर्ज्ञानमर्हद्धीशा विहारं कुर्वतेऽनिशम् ॥१५३॥
शिष्यादिपरिवारेणावृताः सूरय ऊर्जिताः।
विहरन्तोऽत्र दृश्यन्ते पञ्चाचारपराः सदा ॥१५४॥
पठन्तः पाठयन्तोऽन्यानङ्गपूर्वाण्यनेकशः।
रत्नत्रयतपोभूषाः सन्त्युपाध्याययोगिनः ॥१५५॥
गिरिकन्दरदुर्गादिवनेषु निर्जनेषु च।
साधवो ध्यानसंलीना महाघोरतपोऽङ्किताः ॥१५६॥
प्रवर्तकागुणैर्वृद्धा अन्ये वा संयतव्रजाः।
सुभव्यैर्वन्दिताः पूज्या दृश्यन्तेऽत्रपदे पदे ॥१५७॥
इत्याद्या जिनयोगीन्द्रा निर्ग्रन्थाः स्युरनेकशः।
मोक्षमार्गे स्थिता धीरा न स्वप्नेऽपि कुलिङ्गिनः ॥१५८॥
अङ्गपूर्वाणि सर्वाणि पठ्यन्ते यत्र योगिभिः।
श्रूयन्ते श्रावकैर्नित्यं न कुशास्त्राणि जातुचित् ॥१५९॥
अहिंसालक्षणो धर्म्मः शाश्वतो वर्ततेऽनिशम्।
सागारयमिनां द्वेधा स्वर्मुक्तिसुखसाधकः ॥१६०॥
व्रतशीलोपवासाद्यैर्जिनप्रणीत ऊर्जितः।
न धूर्तजल्पितश्चान्यो हिंसोत्थो दुर्गतिप्रदः ॥१६१॥
वैश्याश्चक्षत्रियाः शूद्रा इति वर्णत्रयान्विता।
प्रजा भद्रा विवेकज्ञा जिनधर्मपरायणा ॥१६२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

न्यायमार्गरता नित्यं दृक्सद्वृत्ताद्यलंकृता।
कुमार्गगा द्विजा नात्र न दुर्मतोत्थदुर्धियः ॥१६३॥
जैनसङ्घादिभेदो न पाखण्डदर्शनानि न।
न मतान्तर एकोपि ह्येकं जिनमतं विना ॥१६४॥
वहत्येवानिशं मोक्षमार्गोऽत्रानन्तसौख्यदः।
रत्नत्रयात्मकः सत्यो जिनेन्द्रोक्तो महात्मनाम् ॥१६५॥
अत्रत्याः श्रावका दक्षाः श्रावकव्रतधर्मतः।
षोडशस्वर्गपर्यन्तं गच्छन्ति श्राविकास्तथा ॥१६६॥
केचिद्भोगमहीं पात्रदानपुण्येन भद्रकाः।
जिनार्चा स्तुतिभक्त्याद्यैर्यान्ति चेन्द्रास्पदं विदः ॥१६७॥
नाकिनः कृतपुण्या येतेऽत्र स्वर्मोक्षसिद्धये।
सत्कुलेषु प्रजायन्ते बहुश्रीभोगिनो बुधाः ॥१६८॥
यत्रोत्पन्नैः प्रयत्नेन साक्षान्मोक्षो हि साध्यते।
रत्नत्रयतपोघोरैस्तत्र का वर्णना परा ॥१६९॥
यथैषां वर्णना प्रोक्ता विदेहे द्विविधेऽखिला।
तथा शेषविदेहेषु ज्ञेया द्वीपापरद्वये ॥१७०॥
द्वीपेष्वर्ध तृतीयेषूत्कृष्टेन श्रीजिनेश्वराः।
उत्पद्यन्ते क्वचित्सर्वे सप्तत्यग्रं शतं परम् ॥१७१॥
तावन्तश्चक्रिणश्चैव जायन्ते नृसुरार्चिताः।
सप्तत्यग्रशतेष्वार्यखण्डेष्वेकैकसंख्यकाः ॥१७२॥
जघन्येन जिनाधीशा भवन्ति विंशति प्रमाः।
चक्राधिपाश्च सर्वत्र नृदेवखचरार्चिताः ॥१७३॥

अर्थ—विदेहक्षेत्रस्थ देशों के सर्व नगरों एवं ग्रामों आदि में मणिमय और स्वर्णमय जिन चैत्यालयों की पंक्तियाँ हैं। वे जिनमन्दिर उन्नत और प्रकाशमान तोरणों से युक्त, रत्नमय सहस्त्रों जिन बिम्बों से भरे हुए और रत्नमय उपकरणों से परिपूर्ण हैं, वहाँ कहीं भी कुदेवालय नहीं हैं। वहाँ पर मनुष्यों एवं देवगणों से पूजित और वन्दित तथा प्रकाशमान दीप्ति से युक्त जिनेन्द्र भगवान् की दिव्यमूर्तियाँ ही प्रचुर मात्रा में हैं, नीच देवों की मूर्तियाँ नहीं हैं। वहाँ उत्पन्न होने वाले प्रवीण पुरुष समस्त अभ्युदय सुख एवं अन्य समस्त सर्व अर्थ की सिद्धि के लिये नानाप्रकार की पूजनविधि से जिनेन्द्र भगवान को ही पूजते हैं। विवाह एवं जन्म आदि कार्यों में तथा अन्य समस्त मंगल कार्यों में एक परमेष्ठी अर्थात् अर्हन्त, सिद्ध आदि का ही पूजन होता है, क्षेत्रपाल आदि का नहीं। समवसरण के आश्रित होने वाली बारह सभाओं से घिरे हुए जिनेन्द्र भगवान् सज्जन पुरुषों को उपदेश देते हैं और

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

विहार भी करते हैं। चार ज्ञान के धारी, महाऋद्धियों के अधीश्वर तथा मुनिगणों से वेष्टित गणधरदेव मुक्ति मार्ग की प्रवृत्ति के लिये निरन्तर विहार करते हैं। विदेह क्षेत्र में पञ्चाचार परायण तथा शिष्य आदि परिवार से वेष्टित महान् आचार्य निरंतर विहार करते हुए दिखाई देते हैं। वहाँ पर अंग और पूर्व रूप जिनागम को स्वयं पढ़ते हुए और अन्य मुनिगणों को पढ़ाते हुए तथा रत्नत्रय एवं तप से विभूषित अनेक उपाध्याय परमेष्ठी हैं। वहाँ पर उत्तम ध्यान में संलग्न तथा महाघोर तप से आलीढ़ साधु पर्वतों पर, कन्दराओं में, दुर्ग आदि में, वनों में तथा और भी अन्य निर्जन स्थानों में निवास करते हैं। विदेह क्षेत्र में उत्तम भव्य जीवों के द्वारा वन्दित एवं पूजित प्रवर्तक साधु, गुणसमूह से वृद्ध-महान् साधु तथा अन्य और भी यति समूह पद-पद पर दिखाई देते हैं। इस प्रकार इनको आदि लेकर जिनेन्द्र भगवान् योगियों के अधिनायक आचार्य आदि तथा अनेक प्रकार के धैर्यवान् निर्ग्रन्थ साधु मोक्षमार्ग में स्थित रहते हैं। वहाँ स्वप्न में भी कुलिंगी साधुओं के दर्शन नहीं होते। योगिजन अंग पूर्व आदि के समस्त आगम को पढ़ते हैं और श्रावक गण नित्य ही सुनते हैं। खोटे शास्त्र वहाँ पर कभी भी नहीं सुनते। स्वर्ग और मोक्ष सुख का जो साधक है, श्रावक धर्म और मुनि धर्म के भेद से जो दो प्रकार है तथा अहिंसा ही जिसका लक्षण है, ऐसा अनाद्यनिधन धर्म ही वहाँ निरंतर प्रवर्तित रहता है। वहाँ पर व्रत, शील और उपवास आदि के द्वारा जिनेन्द्र देव द्वारा प्रतिपादित श्रेष्ठ धर्म का ही सेवन होता है। धूर्तों के द्वारा कहा हुआ तथा अन्य हिंसा आदि से उत्पन्न और दुर्गति प्रदाता धर्म नहीं है। वहाँ की प्रजा क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णों से समन्वित है, भद्र परिणामी अर्थात् कुटिलता रहित है, विवेकवान एवं ज्ञानवान है, जिनधर्म परायण, न्यायमार्ग में आरूढ़ और सम्यग्दर्शन ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र से अलंकृत है। वहाँ पर मिथ्यामतों से उत्पन्न होने वाली खोटी बुद्धि को धारण करने वाले मनुष्य नहीं हैं तथा कुमार्गगामी द्विज-ब्राह्मण भी नहीं हैं ॥१४७-१६३॥

वहाँ जैन संघों में भेद नहीं हैं, न वहाँ पाखण्डी दर्शन हैं और न एक अद्वितीय जिनमत के बिना अन्य कोई मतान्तर हैं। वहाँ पर जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कहा हुआ, अनन्त सुख प्रदाता, रत्नत्रयात्मक सत्य मोक्षमार्ग का प्रवाह निरन्तर बहता रहता है। यहाँ उत्पन्न होने वाले निपुण श्रावक एवं श्राविकाएँ श्रावक धर्म के प्रभाव से सोलह स्वर्ग पर्यन्त जाते हैं। कोई भद्र परिणामी गृहस्थ पात्रदान के प्रभाव से भोगभूमि में उत्पन्न होते हैं और कोई बुद्धिमान् जन जिनेन्द्र भगवान् की पूजा, स्तुति एवं भक्ति आदि के द्वारा इन्द्र पद प्राप्त करते हैं। बहुत प्रकार के भोगों को भोगने वाले जो विवेकी देव स्वर्ग में पुण्यकर्मा हैं वे वहाँ से चय होकर स्वर्ग और मोक्ष की सिद्धि के लिये विदेह क्षेत्रस्थ उत्तम कुलों में जन्म लेते हैं। वहाँ उत्पन्न होने के बाद रत्नत्रय युक्त घोर तपश्चरण के द्वारा वे प्रयत्नपूर्वक साक्षात् मोक्ष को ही साधते हैं। वहाँ का अन्य और क्या वर्णन किया जाये। पूर्व विदेह और पश्चिम विदेह का यहाँ समस्त वर्णन जैसा किया गया है, वैसा ही धातकीखण्ड और पुष्करार्धगत विदेह क्षेत्रों का जानना चाहिए। अढ़ाई द्वीप में उत्कृष्ट रूप से एक साथ एक सौ सत्तर तीर्थंकर उत्पन्न हो सकते हैं। मनुष्यों और देवों

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

से अर्चित चक्रवर्ती भी एक साथ एक सौ सत्तर हो सकते हैं। पञ्च मेरु सम्बन्धी १६० विदेह देशों के १६० आर्य खण्ड और पाँच भरत एवं पाँच ऐरावत सम्बन्धी १० आर्य खण्ड, इस प्रकार एक सौ सत्तर आर्य खण्ड हैं, इनमें से एक एक आर्य खण्ड में एक-एक तीर्थंकर और एक-एक ही चक्रवर्ती उत्पन्न हों तो १७० हो सकते हैं। जघन्य रूप से सर्व क्षेत्रों में (सर्वत्र) मनुष्यों, देवों एवं विद्याधरों से पूजित तीर्थंकर एवं चक्रवर्ती मात्र बीस हो सकते हैं, बीस से कम कभी नहीं होते ॥१६४-१७३॥

अब जम्बूद्वीपस्थ समस्त पर्वतों की एकत्रित संख्या कहते हैं—

जम्बूद्वीपे महामेरुरेकः षट्कुलपर्वताः।
चत्वारो गजदन्ताश्च द्व्यष्टवक्षारभूधराः ॥१७४॥
अष्टौ दिग्गजशैलाः स्युश्चत्वारो यमकाद्रयः।
चत्वारो नाभिशैलाश्च द्वेशते काञ्चनाद्रयः ॥१७५॥
विजयार्धाश्चतुस्त्रिंशत्तावन्तो वृषभाद्रयः।
सर्वे पिण्डीकृता एते त्रिंशतैकादशोत्तराः ॥१७६॥

अर्थ—जम्बूद्वीप में एक सुदर्शनमेरु, छह कुलाचल पर्वत, चार गजदन्त, सोलह वक्षार पर्वत, आठ दिग्गज पर्वत, चार यमकगिरि, चार नाभिगिरि, दो सौ काञ्जन पर्वत, चौंतीस विजयार्ध और चौंतीस वृषभाचल पर्वत हैं। इन सबको एकत्रित करने पर जम्बूद्वीपस्थ (१ + ६ + ४ + १६ + ८ + ४ + ४ + २०० + ३४ + ३४) = ३११ पर्वत होते हैं ॥१७४-१७६॥

अब अवशेष द्वीपों के पर्वतों की संख्या कहते हैं—

एतेभ्यो द्विगुणाः सन्ति मेर्वाद्या अद्रयोऽखिलाः।
द्वीपे च धातकीखण्डे पुष्करार्धे तथापरे ॥१७७॥

अर्थ—धातकीखण्ड में और पुष्करार्ध द्वीप में मेरु आदि पर्वतों की संख्या जम्बूद्वीप से दूनी-दूनी है अर्थात् धातकीखण्ड में ६२२ पर्वत और पुष्करार्ध द्वीप में ६२२ पर्वत हैं ॥१७७॥

अब जम्बूद्वीपस्थ वन, वृक्ष, सरोवर एवं महादेशों आदि की संख्या का दिग्दर्शन कराते हैं—

जम्बूद्वीपे वनेद्वेस्तो भद्रशालाह्वये परे।
जम्बूशाल्मलिवृक्षौ च कुलाचलस्थ षट्द्रहाः ॥१७८॥
सीतासीतोदयोर्मध्ये ह्रदाः स्युर्विंशति प्रमाः।
जघन्यमध्यमोत्कृष्ट भेदैः षड् भोगभूमयः ॥१७९॥
चतुस्त्रिंशन्महादेशा भरतैरावतान्विताः।
स्युर्नगर्यश्चतुस्त्रिंशदार्यखण्डान्तर स्थिताः ॥१८०॥
भवन्त्युपसमुद्राश्चतुस्त्रिंशत्छाश्वतेतराः ।
देवारण्यवनेद्वेस्तो द्वे भूतारण्यसद्वने ॥१८१॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अर्थ—जम्बूद्वीप में पूर्व भद्रशाल और पश्चिम भद्रशाल नाम के दो वन हैं। जम्बू और शाल्मली नाम के दो वृक्ष हैं। छह कुलाचलों पर छह सरोवर हैं। सीता सीतोदा के मध्य में बीस ह्रद हैं। दो जघन्य भोगभूमियाँ, दो मध्यम और दो उत्कृष्ट, इस प्रकार छह भोगभूमियाँ हैं। भरतैरावत सहित चौंतीस महादेश हैं और आर्य खण्डों में स्थित चौंतीस ही नगरी (राजधानियाँ) हैं। अनाद्यनिधन चौंतीस उपसमुद्र हैं एवं देवारण्य नाम के दो तथा भूतारण्य नाम के दो उत्तम वन हैं ॥१७८-१८१॥

अब जम्बूद्वीपस्थ समस्त नदियों का विवेचन करते हैं—

द्वादशैव विभाङ्गाख्या नद्यस्तास्ताश्च पिण्डिताः।
परिवाराह्वयानद्यस्त्रिलक्षसहितान्यपि ॥१८२॥
स्युः षड्त्रिंशत्सहस्राणि विदेहक्षेत्रमध्यगाः।
गङ्गाद्याः क्षुल्लिका नद्यश्चतुःषष्टिप्रमाणकाः ॥१८३॥
आसां पिण्डीकृताः सर्वाः परिवाराख्यनिम्नगाः।
षण्णवतिसहस्राणिह्यष्टलक्षयुतान्यपि ॥१८४॥
चतुर्दशमहानद्यः सप्तक्षेत्रान्तराध्वगाः।
गङ्गादिप्रमुखास्तासां परिवारनदीव्रजाः ॥१८५॥
मेलिताः पञ्चलक्षाग्रसहस्रषष्टिसम्मिताः।
सप्ताग्रदशालक्षाणि द्वियुता नवतिस्तथा ॥१८६॥
सहस्राणि नवत्या सहेति संख्या जिनोदिताः।
मूलोत्तरनदीनां सर्वासां द्वीपे किलादिमे ॥१८७॥

अर्थ—विदेह क्षेत्र में विभंगा नदियाँ १२ हैं, (प्रत्येक नदी की सहायक नदियाँ २८००० हैं, अतः २८००० × १२) = इनकी समस्त परिवार नदियों का योग ३३६००० होता है। विदेह देशस्थ गंगा-सिन्धु और रक्ता-रक्तोदा ६४ हैं, (इनमें प्रत्येक की परिवार नदियाँ १४००० हैं) अतः इनकी परिवार नदियों का कुल योग (१४००० × ६४) = ८९६००० होता है। जम्बूद्वीपस्थ सात क्षेत्रों के मध्य में बहने वाली गंगादि चौदह महानदियाँ हैं, जिनकी परिवार नदियों का कुल योग (गंगा, सिन्धु, रक्ता और रक्तोदा की १४००० × ४ = ५६००० + रोहित, रोहितास्या, स्वर्णकूला, रूप्यकूला की २८००० × ४ = ११२००० + हरि, हरिकांता, नारी, नरकान्ता की ५६००० × ४ = २२४००० + और सीता, सीतोदा की १६८००० =) १७९२००० है। इनमें मूल नदियाँ (१४ + १२ + ६४ =) ९० और मिला देने से जम्बूद्वीपस्थ कुल नदियों का योग १७९२०९० होता है ॥१८२-१८७॥

अब इसी प्रमाण को पुनः कहते हैं—

सर्वजम्बूद्वीपस्य भरतादिसप्तक्षेत्रेषु सर्वाः मूलपरिवारनद्यः एकत्रीकृताः सप्तदशलक्ष-द्विनवति-सहस्रनवतिप्रमा ज्ञातव्याः।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अर्थ—जम्बूद्वीपस्थ भरतादि सात क्षेत्रों में मूल और परिवार नदियों का सर्व योग १७९२०९० प्रमाण जानना चाहिए।

अब कुण्डों का प्रमाण एवं शेष द्वीपों के भद्रशाल आदि का प्रमाण कहते हैं—

गङ्गादिपातदेशेषु कुण्डान्येव चतुर्दश।
विभंगाक्षुल्लकानिम्नगाश्च षट्सप्ततिः स्फुटम् ॥१८८॥
भद्रशालसरिज्जम्बूवृक्षादयोऽखिला अमी।
द्विगुणा धातकीखण्डे पुष्करार्धे भवन्ति च॥१८९॥

अर्थ—जम्बूद्वीप में गंगादि चौदह महानदियों के पतन स्वरूप चौदह कुण्ड हैं और बारह विभंगा एवं ६४ गंगादि छोटी नदियों के निकलने के (६४ + १२) छिहत्तर (७६) कुण्ड हैं। इस प्रकार कुल ९० कुण्ड हैं। जम्बूद्वीप में भद्रशाल आदि वन, जम्बू आदि वृक्ष एवं नदियों आदि का जो-जो प्रमाण कहा है, धातकीखण्ड और पुष्करार्ध द्वीप में वह सब प्रमाण दूना-दूना जानना चाहिए ॥१८८-१८९॥

अब आचार्य विदेहक्षेत्र के प्रति आशीर्वचन कहते हैं—

यत्रोच्चैः पदसिद्धये सुकृतिनोजन्माश्रयन्तेऽमरा,
यस्मान्मुक्तिपदं प्रयान्तितपसा केचिच्चनाकं व्रतैः।
तीर्थेशा गणनायकाश्च गणिनः श्रीपाठकाः साधवः,
सङ्घाढ्याविहरन्ति सोऽत्रजयतान्नित्यो विदेहो गुणैः ॥१९०॥

अर्थ—जहाँ पर पुण्यशाली देवगण मोक्षपद की प्राप्ति के लिये जन्म लेते हैं। जहाँ से कितने ही भव्य जन समीचीन तप के द्वारा मोक्षपद प्राप्त करते हैं, कितने ही व्रतों के द्वारा स्वर्ग प्राप्त करते हैं तथा जहाँ पर तीर्थंकर देव, गणधर देव, आचार्य, उपाध्याय और साधुगण संघ सहित विहार करते हैं और जहाँ से रत्नत्रय आदि गुणों के द्वारा देह से रहित होते हैं, ऐसा वह विदेह क्षेत्र नित्य ही जयवन्त रहे ॥१९०॥

अधिकारान्त मंगलाचरण

ये तीर्थेशाः सुरार्च्या जगति हितकराः सद्विदेहे च जाता,
अस्माद्ये मोक्षमाप्ता हतविधिवपुषोज्ञानरूपाश्च सिद्धाः।
आचार्याः पाठका ये गुणगणनिलयाः साधवः साधितार्था-
स्ते सर्वे सङ्गहीना निजगुणगतये वन्दिताः सन्तुमेऽद्य ॥१९१॥

इति श्रीसिद्धान्तसारदीपकमहाग्रन्थे भट्टारक श्रीसकलकीर्ति विरचिते विदेहाऽखिलदेशदिवर्णनो-नामाष्टमोध्याय ॥८॥

अर्थ—विदेह क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले, जगत् का सर्वोपरि हित करने वाले और देवसमूह से अर्चित तीर्थंकर देव, कर्म और शरीर को नाश करके मोक्ष प्राप्त करने वाले ज्ञानशरीरी सिद्ध परमेष्ठी,

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

गुणसमूह के आलय आचार्य और उपाध्याय परमेष्ठी तथा मोक्ष प्राप्ति का साधन करने वाले समस्त निर्ग्रन्थ साधु, जो कि आज मेरे द्वारा वन्दित हैं, वे सब मेरे निजगुणों की प्राप्ति के लिये हों, अर्थात् मुझे मोक्षगति प्राप्त करने में सहायक हों ॥१९१॥

इस प्रकार भट्टारक सकलकीर्ति विरचित सिद्धान्तसारदीपक नाम महाग्रन्थ में विदेहक्षेत्रस्थ सम्पूर्ण देशों आदि का वर्णन करने वाला अष्टम अधिकार समाप्त हुआ ॥

❑ ❑ ❑

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

नवम अधिकार

छह कालों का प्ररूपण

मंगलाचरण

आदिमध्यान्तसञ्जातान् तुर्ये काले जगद्धितान्।
त्रिजगद्दीपकान् वन्दे ज्ञानाय परमेष्ठिनः ॥१॥

अर्थ—चतुर्थकाल के आदि, मध्य और अन्त में उत्पन्न होने वाले, त्रैलोक्य का हित करने वाले और तीनों जगत् को प्रकाशित करने के लिये दीपक के सदृश पञ्च परमेष्ठियों को ज्ञान प्राप्ति के लिये नमस्कार करता हूँ ॥१॥

छह कालों का सामान्य वर्णन—

अथ येऽत्र प्रवर्तन्ते कालाः षट् षट् पृथग्विधाः।
उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यौ भरतैरावतेषु च ॥२॥
एकैकनित्यरूपेण विदेहादिजगत्त्रये।
वक्ष्ये तेषां पृथग्भूतं स्वरूपं वर्तनादिभिः ॥३॥

अर्थ—भरत एवं ऐरावत क्षेत्रों (के आर्य खण्डों) में उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी काल सम्बन्धी भिन्न-भिन्न छह-छह कालों का वर्तन होता है और विदेह आदि तीनों लोकों में अवस्थित रूप से एक-एक काल का वर्तन होता है। अब यहाँ मैं वर्तनादि के द्वारा उनका भिन्न-भिन्न स्वरूप कहूँगा ॥२-३॥

अब प्रथम काल का सामान्य वर्णन करते हैं—

अमीषां प्रथमः कालः सुषमासुषमाह्वयः।
सुखाकरोऽवसर्पिण्यामुत्कृष्टभोगभूमिवत् ॥४॥
सागराणां चतुःकोटि कोटिप्रमाणउत्तमः।
तस्यादौ तपनीयाभास्त्रिपल्योपमजीविताः ॥५॥
क्रोशत्रयोन्नता आर्या वदरीफलमात्रकम्।
भुञ्जना दिव्यमाहारं गते दिनत्रये सति ॥६॥
उत्कृष्टपात्रदानोत्थोत्कृष्टपुण्येन सन्ततम्।
भुञ्जन्त्युत्कृष्टसद्भोगान् दशांगकल्पवृक्षजान् ॥७॥

अर्थ—अवसर्पिणी काल के इन छह कालों में से सुख के आकर स्वरूप प्रथम काल का नाम सुषमा-सुषमा है, जहाँ की रचना उत्कृष्ट भोगभूमि के सदृश होती है। इस काल का प्रमाण चार कोड़ाकोड़ि सागरोपम (४०००००००००००००० सागर) होता है। इस काल के आदि में जीवों की आयु

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

का प्रमाण तीन पल्योपम, शरीर की कान्ति तपाये हुए स्वर्ण के सदृश और ऊँचाई तीन कोश (छह हजार धनुष) प्रमाण होती है। 'आर्य' इस नाम को धारण करने वाले मनुष्य तीन दिन बाद बदरीफल प्रमाण दिव्य आहार का भोजन करते हैं। उत्तम पात्रदान के फल से उत्पन्न उत्कृष्ट पुण्य के द्वारा यहाँ उत्पन्न होने वाले जीव दश प्रकार के कल्पवृक्षों से है उत्पत्ति जिनकी, ऐसे उत्कृष्ट भोगों को निरन्तर भोगते हैं ॥४-७॥

अब दस प्रकार के कल्पवृक्षों का वर्णन करते हैं—

मद्यवाद्यविभूषास्त्रग्दीपज्योतिर्गृहाङ्गकाः ।
भोजनाङ्गस्तथा भाजनवस्त्राङ्गा दशेत्यमी ॥८॥
मद्यांगा वितरन्त्येषां ततामोदान् रसोत्कटान्।
सारान् सुधोपमान् कामोद्दीपकान् मद्यवत्तराम् ॥९॥
भेरीपटहशंखादीन्नाना वाद्यान् फलन्ति च।
वाद्याङ्गागीतनृत्यादौ वीणामृदंग-झल्लरीः ॥१०॥
स्वर्णरत्नमयान् दीप्तान् दिव्यांश्च भूषणांगकाः।
हारकुण्डलकेयूरमुकुटादीन् ददत्यलम् ॥११॥
स्त्रजो नानाविधादिव्याः सर्वर्तु कुसुमांकिताः।
स्नुवन्ते भोगसौख्यायार्याणां सदा स्त्रगङ्गकाः ॥१२॥
ध्वस्तध्वान्ताश्च दीपांगामणिदीपैर्विभान्त्यलं।
ज्योतिरंगा महोद्योतमातन्वन्ति स्फुरद्रुचः ॥१३॥
तुंगसौधसभागेहमण्डपादीन् गृहांगकाः।
चित्रनर्तनशालाश्च विधातुं सर्वदा क्षमाः ॥१४॥
अन्नादिचतुराहारानमृतस्वादुदायिनः ।
दिव्यांश्च षड्रसान् पुण्याद् भोजनांगा ददत्यहो ॥१५॥
हेमस्थालानि भृंगारान् चषकान् करकादिकान्।
भाजनांगा दिशन्त्याविर्भवच्छाखाग्र सत्फलाः ॥१६॥
मृदुसूक्ष्माणिवस्त्राणि पट्टकूलानि संततम्।
वितरन्ति च वस्त्रांगाः प्रावारपरिधानकान् ॥१७॥
न वनस्पतयोऽत्रैते नापिदेवैरधिष्ठिताः।
केवलं पृथिवीसारमया निसर्गसुन्दराः ॥१८॥
अनादिनिधनाः कल्पद्रुमाः सत्पात्रदानतः।
संकल्पितमहाभोगान् दशभेदांश्च्युतोपमान् ॥१९॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

फलन्ति दानिनां प्रीत्यै यथैते पादपा भुवि।
सर्वरत्नमयं दीप्रं भात्यत्र भूतलं परम् ॥२०॥

अर्थ—प्रथम काल में मद्यांग (पानांग), वाद्यांग, भूषणांग, मालांग, दीपांग, ज्योतिरांग, गृहांग, भोजनांग, भाजनांग और वस्त्रांग ये दश प्रकार के कल्पवृक्ष होते हैं। इनमें से मद्यांग नाम के कल्पवृक्ष प्रमोद बढ़ाने वाले, मद्य के समान कामोद्दीपक, अमृत की उपमा को धारण करने वाले और श्रेष्ठ (वीर्यवर्धक) (३२ प्रकार के) उत्कृष्ट रसों को देते हैं। वाद्यांग कल्पवृक्ष, भेरी, पटह, शंख आदि तथा गीत नृत्य आदि के उपयोग में आने वाले वीणा, मृदंग और झल्लरी आदि वाद्यों को देते हैं। भूषणांग कल्पवृक्ष स्वर्ण और रत्नमय देदीप्यमान हार, कुण्डल, केयूर और मुकुट आदि दिव्य आभूषण देते हैं। स्रगंगकल्पवृक्ष वहाँ के आर्य मनुष्यों के भोग और सुख के लिये सर्व ऋतुओं के फूलों से बनी हुई नाना प्रकार की दिव्य मालाएँ देते हैं। दीपांग कल्पवृक्ष मणिमय दीपों के द्वारा अन्धकार को नष्ट करते हुए सुशोभित होते हैं। ज्योतिरांग कल्पवृक्ष देदीप्यमान ज्योति से महान् प्रकाश फैलाते हैं। गृहांग वृक्ष निरन्तर ऊँचे-ऊँचे प्रासाद सभागृह, मण्डप आदि तथा चित्र शालाएँ और नृत्य आदि शालाएँ देने में समर्थ हैं। भोजनांग कल्पवृक्ष पुण्य के प्रभाव से अन्न, पान, खाद्य और लेह्य यह चार प्रकार का अमृततुल्य, उत्तम स्वाद देने वाला, छह रसों से युक्त और दिव्य आहार देते हैं। भाजनांग कल्पवृक्षों की शाखाओं के अग्रभाग पर स्वर्णमय थालियाँ, भृंगार, कटोरा और करक (जलपात्र) आदि प्रकट होते हैं। वस्त्रांग कल्पवृक्ष निरन्तर मृदु एवं बारीक रेशम आदि के वस्त्र और धोती-दुपट्टा तथा अभ्यंतर में पहनने योग्य वस्त्रों को देते हैं। ये दसों प्रकार के कल्पवृक्ष न वनस्पतिकाय हैं और न देवों के द्वारा अधिष्ठित हैं, ये तो केवल पृथ्वी के सारमय, स्वाभाविक सुन्दर और अनादिनिधन हैं। सत्पात्र दान के प्रभाव से उपमा रहित ये कल्पवृक्ष मनोवांछित उत्तम भोगों को देते हैं। पृथ्वी पर जैसे अन्य वृक्ष फल देते हैं उसी प्रकार दानियों के फल प्राप्ति के लिए ये वृक्ष फलते हैं, यहाँ की सर्व रत्नमय चमकती हुई उत्कृष्ट भूमि अत्यन्त सुशोभित होती है ॥८-२०॥

भोगभूमि का अवशेष वर्णन—

मृगाश्चरन्ति तत्रत्या मृदुस्वादुतृणान्यपि।
चतुरंगुलमानानि रसायनरसास्थया ॥२१॥
न तत्रातपजा वाधा शीतो वृष्टिर्न जातुचित्।
ऋतवो नाप्यहोरात्रं किञ्चिन्नाशर्मकारणम् ॥२२॥

अर्थ—वहाँ पर मृदु और सुस्वादु चार अंगुल प्रमाण तृण उत्पन्न होता है जिसे मृग रसायन के स्वाद की वाञ्छा से चरते हैं। वहाँ पर न गर्मी जन्य बाधा होती है, न कभी शीत जन्य, न वर्षा जन्य और न कभी ऋतुओं के परिवर्तन जन्य बाधा होती है। उन्हें रात्रि दिन में दुःख के कारण किञ्चित् भी प्राप्त नहीं होते ॥२१-२२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब भोगभूमिज जीवों की उत्पत्ति एवं वृद्धि आदि का वर्णन करते हैं–

सद्यो जातार्यबालानां दिनसप्तान्तमुद्रसम्।
भवेदुत्तानशय्यायामंगुल्याहार उत्तमः ॥२३॥
ततः सप्तदिनान्येषां धरिणीरङ्गरिङ्गिणाम्।
दम्पतीनां मनोज्ञः स्यात्किञ्चिद्वृद्ध्या दशान्तरः ॥२४॥
सप्ताहेनापरेणैते प्रोत्थाय कलभाषिणः।
सञ्चरन्ति स्वयं भूमौ स्खलगति सहेलया ॥२५॥
पुनः स्थिरपदन्यासैर्व्रजन्ति दिनसप्तकम्।
सप्ताहं निर्विशंत्युच्चैः कलाज्ञानादिसद्गुणैः ॥२६॥
अन्यैः सप्तदिनैस्ते स्युः सम्पूर्णनवयौवनाः।
दिव्यांशुकसुभूषाढ्याः स्त्रीनरा भोगभागिनः ॥२७॥
स्थित्वातिनिर्मले गर्भे नवमासान् स्त्रियःशुभान्।
एत्य दम्पतितामत्रोत्पद्यन्ते दानिनो नराः ॥२८॥
यदा दम्पति सम्भूतिस्तदा मृत्युः स्फुटं भवेत्।
जनयित्रोस्ततोऽमीषां संकल्पो न सुतादिजः ॥२९॥

अर्थ–तत्काल उत्पन्न हुए आर्य बालकों का सात दिन पर्यन्त शय्या पर सीधे सोते हुए अंगुली में स्थित उत्कट एवं उत्तम रस का आहार होता है। इसके पश्चात् सात दिन पर्यन्त पृथ्वी पर रेंगते हुए वे अति मनोज्ञ स्त्री पुरुष किञ्चित् बुद्धि के द्वारा अन्य दशा को प्राप्त होते हैं अर्थात् कुछ बड़े हो जाते हैं। अन्य सात दिनों में वे उठकर सुन्दर वचन बोलते हैं और स्वयं अपनी इच्छा से क्रीड़ा करते हुए अस्थिर गति से भूमि पर चलते हैं। पुनः सात दिन पर्यन्त स्थिर पैर रखते हुए चलते हैं और अन्य सात दिनों में वे ज्ञान कला आदि सद्गुणों के द्वारा परिपूर्ण हो जाते हैं। अन्य सात दिनों के द्वारा दिव्य वस्त्राभूषणों से युक्त और अखण्ड भोग-भोगने वाले वे स्त्री पुरुष सम्पूर्ण नवयौवन सम्पन्न हो जाते हैं। दानी मनुष्य शुभयोग से भोगभूमिज स्त्रियों के अत्यन्त निर्मल गर्भ में नौ मास स्थित रहकर उत्पन्न होते हैं और पश्चात् वे ही दम्पतिपने को प्राप्त हो जाते हैं। जब नवीन दम्पति उत्पन्न होते हैं तभी उत्पन्न करने वाले दम्पति मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं, इसीलिए माता पिता पुत्रादि की उत्पत्ति के सुख से रहित होते हैं अर्थात् ये पुत्र-पुत्री हैं, इस संकल्प से रहित होते हैं ॥२३-२९॥

अब भोगभूमिज जीवों की अन्य विशेषताएँ कहते हैं–

आजन्ममरणान्तं नार्याणां रोगो मनाक् क्वचित्।
न चेष्टादिवियोगो नानिष्टसंयोगशोचनम् ॥३०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

न चिन्ता दीनता नैव नाप्युन्मेषनिमेषणम्।
न निद्रा नातितन्द्रा नो लाला स्वेदोद्भवो न च ॥३१॥
मलं मूत्रं न शारीरं कामभोगे न खण्डता।
विरहो नाशुभोन्मादो नेर्ष्या न च पराभवः ॥३२॥
विषादो न भयं ग्लानिर्न च किञ्चिद् विरूपकम्।
अन्यद् वा जायते दुःखहेतुः स्वप्नेऽपि भोगिनाम् ॥३३॥
आदि संहनना आदि संस्थाना दिव्यरूपिणः।
समभोगोपभोगास्ते सर्वे मन्दकषायिणः ॥३४॥
स्वभावसुन्दराकाराः स्वभावसौम्यमूर्तयः।
स्वभावमधुरालापाः स्वभावगुणभूषिताः ॥३५॥

अर्थ—भोगभूमिज मनुष्यों के जन्म से मरण पर्यन्त न कभी किंचित् भी रोग होता है, न इष्ट आदि का वियोग, न अनिष्ट आदि का संयोग और न शोक आदि होता है, न चिन्ता है, न दैन्यता है और न नेत्रों का उन्मेषनिमेष अर्थात् पलकों का झपकना है। न अति निद्रा है, न प्रतितन्द्रा, न मुख से लार और न शरीर से पसीना की उद्भूति होती है, शरीर सम्बन्धी मल-मूत्र भी नहीं होता, और न काम भोग में कभी खंडता आती है, न कभी विरह होता है, न अशुभ उन्माद होता है, न ईर्ष्या भाव है, न पराभव है, न विषाद है, न भय है, न ग्लानि है, और न शरीर आदि में किञ्चित् भी विरूपता होती है। उन भोगी जीवों के स्वप्न में भी अन्य कोई दुःख के कारण उत्पन्न नहीं होते। वे सर्व भोगभूमिज जीव प्रथम (वज्रवृषभवज्रनाराच) संहनन और प्रथम समचतुरस्र संस्थान से युक्त, दिव्य रूप सम्पन्न, मन्द कषायी एवं समान भोग उपभोग वाले होते हैं। वे स्वभावतः सुन्दर आकार वाले, स्वभावतः सौम्य मूर्ति, स्वभावतः मधुर भाषी और स्वभावतः अनेक गुण विभूषित होते हैं ॥३०-३५॥

दाता और पात्रदान के भेद से फल में भेद होता है, यह बताते हैं—

आर्या आर्यस्वभावास्ते सत्पात्रदानपुण्यतः।
दशधाकल्पवृक्षोत्थान् भोगान् भुञ्जन्त्यहर्निशम् ॥३६॥
भद्रकाः पात्रदानेन केचिद् दानानुमोदतः।
स्त्रीनरा चात्र तिर्यञ्चो जायन्ते भोगभागिनः ॥३७॥
अव्रता दृष्टिहीनाश्च कुपात्रदानतो मृगाः।
उत्पद्यन्तेऽल्पशर्माणो युग्मरूपेण भद्रकाः ॥३८॥

अर्थ—सत्पात्रदान के पुण्य से जीव भोगभूमि में आर्य और आर्या भाव से उत्पन्न होकर अहर्निश दश प्रकार के कल्पवृक्षों से उत्पन्न भोगों को भोगते हैं। कुटिलता रहित भद्र परिणामी कोई जीव पात्रदान के फल से और कोई दान की अनुमोदना से वहाँ पर भोग भोगने वाले स्त्री, पुरुष और तिर्यञ्च होते हैं। व्रत रहित और सम्यक्त्व रहित कोई जीव कुपात्रों को दान देते हैं और उसके फलस्वरूप भोगभूमि

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

में अल्प सुख से युक्त, युगल रूप से भद्र परिणामी मृग आदि पर्यायों में उत्पन्न होते हैं ॥३६-३८॥

अब भोगभूमिज जीवों के मरण का कारण और प्राप्त होने वाली गति कहते हैं–

आयुषोऽन्ते विमुच्यासून् क्षुता जृम्भकया ततः।
आर्याः स्त्रियो दिवं यान्त्यार्जवभावेन नान्यथा ॥३९॥

अर्थ–आयु के अन्त में पुरुष और स्त्री क्रमशः छींक एवं जम्भाई के द्वारा प्राणों को छोड़कर आर्जव (सरल) भावों के कारण स्वर्ग ही जाते हैं, अन्य गतियों में नहीं जाते ॥३९॥

अब द्वितीय और तृतीय कालों का संक्षिप्त वर्णन करते हैं–

ततः कालो द्वितीयोऽस्ति सुषमाख्यः सुखाङ्कितः।
त्रिकोटीकोटिवाराशिप्रमो मध्यमभोगकृत् ॥४०॥
तस्यादौ पूर्णचन्द्राभा द्विक्रोशोच्चसुविग्रहाः।
द्विपल्याखण्डितायुष्का अक्षमानान्नभोजिनः ॥४१॥
दिनद्वये गते मध्यमपात्रदानजाच्छुभात्।
भोगान् दशविधानार्या भजन्ति कल्पवृक्षजान् ॥४२॥
अन्यत्सर्वं समानं स्यादत्राद्यकालवर्तनैः।
ततस्तृतीयकालोऽस्ति सुषमादुःषमाभिधः ॥४३॥
जघन्यभोगभूयुक्त आद्यसौख्यान्तदुःखधृत्।
द्विकोटीकोटिपूर्णाब्धिस्थितिः कल्पद्रुमाश्रितः ॥४४॥
अस्यादौ मानवाः सन्ति पल्यैकाखण्डजीविनः।
प्रियंगुश्यामवर्णाङ्गाः क्रोशैकोन्नतविग्रहाः ॥४५॥
दिनान्तरेण सौख्यायामलकाभान्नभोगिनः।
कृत्स्नमन्यत्समानं स्यात्प्रागुक्तकालवर्तनैः ॥४६॥
कालत्रयोद्भवार्याणां सहसा स्वायुषः क्षये।
दिव्याङ्गानि विलीयन्ते यथाभ्रपटलानि च ॥४७॥

अर्थ–प्रथम काल के बाद सुखों से युक्त सुखमा नाम का दूसरा काल आता है, इसमें मध्यम भोगभूमि की रचना होती है और इसका प्रमाण तीन कोड़ाकोड़ी (३०००००००००००००) सागरोपम होता है। द्वितीय काल के प्रारम्भ में मनुष्यों के शरीर की प्रभा पूर्ण चन्द्रमा के सदृश और ऊँचाई दो कोश प्रमाण होती है। ये दो पल्य प्रमाण अखण्डित आयु से युक्त और दो दिन बाद अक्ष (हरड़) फल प्रमाण अन्न का भोजन करने वाले होते हैं। मध्यम पात्रदान से उत्पन्न पुण्य फल के प्रभाव से ये आर्य दस प्रकार के कल्पवृक्षों से उत्पन्न भोगों को भोगते हैं। अन्य और सर्व वर्णन प्रथम काल के वर्णन के सदृश ही होता है। इसके बाद सुखमा-दुखमा नाम का तृतीय काल आता है। इसकी रचना जघन्य

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

भोगभूमि के सदृश होती है और इस काल के प्रारम्भ में सुख तथा अन्त में दुःख होता है। इस काल की स्थिति दो कोड़ाकोड़ी (२०००००००००००००) सागरोपम प्रमाण होती है, तथा इस काल के प्रारम्भ में मनुष्य कल्पवृक्षों के आश्रय से अखण्डित एक पल्य पर्यन्त जीवित रहते हैं। मनुष्यों के शरीर की आभा प्रियंगुमणि सदृश हरित और श्याम वर्ण होती है, ऊँचाई एक कोस प्रमाण होती है। ये एक दिन के अन्तर से सुख प्राप्ति के लिए आँवले के बराबर भोजन करते हैं। इस काल का अन्य और समस्त वर्तन पहले कहे हुए प्रथम काल के वर्तन के सदृश ही होता है। तीनों कालों में उत्पन्न होने वाले आर्यों (जीवों) के दिव्य शरीर अपनी-अपनी आयु पूर्ण हो जाने पर सहसा अभ्रपटल (मेघों के समूह के) सदृश विलीन हो जाते हैं ॥४०-४७॥

अब कुलकरों की उत्पत्ति के समय का वर्णन करके सर्वप्रथम प्रतिश्रुत और सन्मति इन दो कुलकरों का सम्पूर्ण वर्णन करते हैं—

यदा तृतीयकालस्यान्तिमे पल्याष्टमे क्रमात्।
अवशिष्टे स्थिते भागेऽत्रेमे कुलकरास्तदा ॥४८॥
आर्याणां हितकर्तारो जाता दक्षाश्चतुर्दश।
बभूव प्रथमस्तेषां प्रतिश्रुत्यभिधानकः ॥४९॥
स्वयंप्रभापतिर्धीमान् हेमवर्णोऽतिरूपवान्।
अष्टादशशतानां च धनुषामुच्चविग्रहः ॥५०॥
पल्यस्य दशभागानामेकभागस्वजीवितः।
तत्काले ज्योतिरङ्गानां व्युच्छित्तौखेऽति भास्वरौ ॥५१॥
प्रादुर्बभूवतुश्चन्द्रादित्यौ ते दर्शनात्तयोः।
आर्या भीता द्रुतं प्रापुः शरणं तं प्रतिश्रुतिम् ॥५२॥
सोऽपि विद्वान् निरूप्याशु गिरा स्वरूपमञ्जसा।
चन्द्रेनोदयकालानां तेषां भयमपाकरोत् ॥५३॥
'हा' नीत्यादान्नृणां शिक्षां तदनन्तरमेव हि।
गते पल्योपमाशीत्येकभागेऽभून्महान्मनुः ॥५४॥
सन्मत्याख्यो द्वितीयोऽत्र भर्ता यशस्वतोस्त्रियः।
त्रयोदशशतानां च चापानां तुङ्गदेहभाक् ॥५५॥
पल्यस्य शतभागानामेकभागायुरूर्जितः।
स्वर्णवर्णस्तदा सर्व ज्योतिरङ्ग क्षयान्नभः ॥५६॥
आपूर्य ग्रहताराद्याः प्रादुरासन् स्फुरत्प्रभाः।
ते भीता दर्शनात्तेषां जग्मुस्तं सन्मतिं विभुम् ॥५७॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

भयनाशाय तेषां स इत्याख्यत्प्रवरं वचः।
हे भद्रका! ग्रहा एते ह्यमीतारादयः शुभाः ॥५८॥
ज्योतिश्चक्रेण वोऽनेन किञ्चिन्नास्तिभयादिकम्।
किंत्वद्यप्रभृति ज्योतिष्कैर्वर्तते दिनं निशा ॥५९॥
इति तद्वचनात्प्रीतास्तं स्तुत्वाऽगुर्निजास्पदम्।
क्वचित् तान् कृतदोषान् स हा नीत्यातर्जयेत्सुधीः ॥६०॥

अर्थ—जब तृतीय काल के अन्त में पल्य का आठवाँ भाग अवशेष रहता है तब यहाँ आर्यों का हित करने में प्रवीण ऐसे चौदह कुलकर क्रम से उत्पन्न होते हैं। उनमें से प्रथम कुलकर प्रतिश्रुति नाम के हुए, जिनकी पत्नी का नाम स्वयंप्रभा था। जो हेमवर्ण की आभा से युक्त अति रूपवान एवं बुद्धिमान् थे। उनके शरीर की ऊँचाई १८०० धनुष और आयु का प्रमाण पल्य के दश भागों में से एक भाग ($\frac{१}{१०}$ पल्य) प्रमाण थी। तत्काल ही अर्थात् पल्य का आठवाँ भाग अवशेष रहने पर ज्योतिरांग कल्पवृक्षों की कान्ति नष्ट हो जाने पर आकाश में (आषाढ़ी पूर्णिमा के दिन) सूर्य और चन्द्र का प्रादुर्भाव होता है, उन रवि शशि के दर्शन से भयभीत हुए वे सब आर्य और आर्या शीघ्र ही प्रतिश्रुति कुलकर की शरण में पहुँचते हैं, तब वे बुद्धिमान् प्रतिश्रुति कुलकर शीघ्र ही अपने प्रिय वचनों द्वारा सूर्य चन्द्र के उदयकाल आदि के स्वरूप का वर्णन करके उनका भय दूर करते हैं। उसी समय ही उन्होंने मनुष्यों को 'हा' इस दण्ड नीति की शिक्षा दी थी अर्थात् अपराध करने वाले मनुष्यों को 'हा' इस प्रकार के दण्ड का स्थापन किया था। इसके बाद अर्थात् इस कुलकर की मृत्यु के बाद पल्योपम के अस्सी भाग समाप्त हो चुकने पर यशस्वति स्त्री के स्वामी सन्मति नाम के द्वितीय महामनु यहाँ उत्पन्न हुए। इनके शरीर की ऊँचाई १३०० धनुष, आयु पल्य के सौ भागों में से एक भाग ($\frac{१}{१००}$ पल्य) प्रमाण और शरीर की कान्ति स्वर्ण सदृश थी। सर्व ज्योतिरांग कल्पवृक्षों के क्षय हो जाने से चमकती हुई प्रभा से युक्त प्रकट होते हुए ग्रहों एवं तारागणों ने आकाश मण्डल को आपूर्ण कर दिया अर्थात् भर दिया, जिसके दर्शन से भयभीत हुए लोक जन सन्मति प्रभु की शरण को प्राप्त हुए। उनके भय को नाश करने के लिए वे इस प्रकार श्रेष्ठ वचन बोले कि–हे भद्र जनों! ये ग्रह हैं, और ये शुभ तारा गण आदि हैं। इस ज्योतिष चक्र से आप लोगों को किंचित् भी भय नहीं करना चाहिए, क्योंकि अब इन्हीं ज्योतिषी देवों के द्वारा आप लोगों को दिन और रात्रि के भेद का ज्ञान होगा। इस प्रकार मनु के वचनों से सन्तोष को प्राप्त होकर तथा उनकी स्तुति करके वे सब अपने अपने स्थान को चले गये। दोष करने वाले लोगों को वे उत्तम बुद्धि के धारक सन्मति मनु 'हा' इसी दण्ड नीति से तर्जन करते थे ॥४८–६०॥

अब क्षेमङ्कर आदि तीन कुलकरों की आयु आदि का तथा उनके कार्यों का वर्णन करते हैं–

ततोऽष्टशतभागानां पल्यस्यातिक्रमे सति।
एकभागे मनुर्जज्ञे क्षेमङ्करो विशारदः ॥६१॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सुनन्दायाः स्त्रियोभर्त्ताप्रोद्यमी काञ्चनच्छविः।
शताष्टधनुरुत्तुङ्ग एकभागायुरुत्तमः ॥६२॥
पल्यस्य कृतभागानां सहस्त्रसंखयया तदा।
तत्रत्याः भद्रकाः प्रापुः क्रूरतां कालतो मृगाः ॥६३॥
तद् बाधामक्षमाः सोढुमार्याः क्षेमङ्करं भयात्।
आश्रित्याशु स्ववाधानाशायेदं सद्वचोऽवदन् ॥६४॥
प्रभो! ये प्राग्मृगा भद्रा अस्माभिर्लालिताः करैः।
अधुना क्रूरतां प्राप्तास्ते घ्नन्त्यस्मान् नखादिभिः ॥६५॥
तान् प्रत्याह मनुश्चेत्थमेतेऽहो कालदोषतः।
सहसा परिहर्तव्या अन्तरे विकृतिं गताः ॥६६॥
भवद्भिर्नाद्य विश्वासः कर्तव्यः क्रूरजन्मनाम्।
एतान् स्वक्षेमशिक्षादीन् श्रुत्वा ते तत्स्तवं व्यधुः ॥६७॥
प्रीतः सोपि प्रजानां स्वहाकारदण्डमादिशेत्।
पुनर्भागे गते पल्याष्टसहस्त्रैकमानके ॥६८॥
धीमान् कुलकरोऽत्रासीत् क्षेमन्धरः सुक्षेमकृत्।
विमलाभामिनीकान्तः कनत्काञ्चनभाङ्गभृत् ॥६९॥
तस्योन्नतिश्च दण्डानां पादोनाष्टशतप्रमा।
पल्यस्य दशसहस्त्रैकभागाभङ्गजीवितम् ॥७०॥
तदाति क्रूरताप्तेभ्यो मृगादिभ्यः स धीरधीः।
यष्ट्यादिताडनैस्तासां वाधां न्यवारयद्द्रुतम् ॥७१॥
प्रजानां कृतदोषाणां सोऽपि हाकारदण्डभृत्।
पल्याशीतिसहस्त्रैकभागे गते ततोऽभवत् ॥७२॥
मनुः सीमङ्करो ज्ञानी पतिर्मनोहरीस्त्रियः।
सार्धसप्तशतैश्चापैरुन्नतः कनकप्रभः ॥७३॥
पल्यलक्षैकभागायुर्हाकारदण्डदायकः ।
कल्पवृक्षा यदा चासन् विरला मन्दकाः फलैः ॥७४॥
तदार्याणां विसम्वादस्तत्कृतोऽभूत् परस्परम्।
ततः सीमावधिं तेषां स व्यधात् क्षेमवृत्तये ॥७५॥

अर्थ—इसके बाद पल्य के ८०० भाग व्यतीत हो जाने पर एक भाग में क्षेमङ्कर नाम के प्रति निपुण मनु हुए, जो सुनन्दा स्त्री के स्वामी, उद्यमवान और स्वर्णाभा के सदृश सुन्दर शरीर के धारक थे। इनके शरीर की ऊँचाई ८०० धनुष और आयु का प्रमाण पल्य के एक हजार भागों में से एक भाग

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

($\frac{१}{१०००}$ पल्य) था। इन्हीं मनु के जीवन काल में वहाँ रहने वाले मृग, शेर आदि काल दोष के प्रभाव से क्रूरता को प्राप्त हो गये तब उनकी बाधा को सहन करने में असमर्थ होते हुए आर्यजन भय से शीघ्र ही क्षेमंकर के समीप जाकर अपनी बाधा नाश करने के लिये इस प्रकार उत्तम वचन बोले हे प्रभो! ये मृग, सिंह आदि पहले भद्र परिणामी थे और हम लोगों के हाथों से इनका लालन पालन किया गया है, किन्तु आज ये क्रूरता को प्राप्त होकर हमें अपने नाखूनों से मारते हैं। उन आर्यजनों को प्रति उत्तर देते हुए मनु बोले–कि काल दोष के प्रभाव से इनके मनों में विकार उत्पन्न हो गया है, अतः इनको शीघ्र ही छोड़ देना चाहिए! आप लोगों को अब इनका विश्वास नहीं करना चाहिए। इस प्रकार अपने कल्याण की शिक्षा आदि को सुनकर उन्होंने मनु की बहुत स्तुति की।

प्रजा जनों को प्रीति (कल्याण) के लिए उन्होंने भी 'हा' दण्ड नीति का ही आदेश दिया। पुनः पल्य के आठ हजार (८०००) प्रमाण भाग व्यतीत हो जाने पर अत्यन्त कल्याण करने वाले, बुद्धिमान क्षेमन्धर नाम के कुलकर उत्पन्न हुए, जो विमला महादेवी के स्वामी और स्वर्ण सदृश आभा को धारण करने वाले थे। उनके शरीर की ऊँचाई ७७५ धनुष और आयु पल्य के दश हजार भागों में से एक भाग ($\frac{१}{१००००}$ पल्य) प्रमाण थी। उस समय मृगादि पशु अत्यन्त क्रूरता को प्राप्त हो गये थे, अतः उन उत्तम बुद्धि को धारण करने वाले मनु ने लकड़ी आदि के द्वारा ताड़न आदि करने की शिक्षा देकर शीघ्र ही उनकी बाधा को दूर किया। प्रजा के द्वारा किये हुए दोषों पर उन्होंने भी 'हा' इस दण्ड नीति का प्रयोग किया। पल्य के अस्सी हजार भाग व्यतीत हो जाने के बाद मनोहारी स्त्री के अत्यन्त विद्वान् पति सीमंकर नाम के मनु हुए। जिनके शरीर की ऊँचाई ७५० धनुष और कान्ति स्वर्ण के सदृश थी। इनकी आयु पल्य के एक लाख भागों में से एक भाग ($\frac{१}{१००००}$ पल्य) प्रमाण थी, तथा ये भी 'हा' दण्ड नीति का ही प्रयोग करते थे। आपके समय में जब कल्पवृक्ष विरले और मन्द फल देने वाले हो गये तब आर्य जन परस्पर में विसम्वाद करने लगे, उस समय आपने प्रजा के कल्याण के लिये उनकी अलग सीमा बाँध दी थी ॥६१-७५॥

अब सीमन्धर आदि चार कुलकरों के स्वरूप एवं कार्यों का वर्णन करते हैं–

ततः पल्याष्टलक्षैकभागे गतेऽभवन्मनुः।
सीमन्धरोऽङ्गहेमाभोऽत्र यशोधारिणीप्रियः ॥७६॥
पल्यस्य दशलक्षैकभागायुस्तुङ्गविग्रहः।
शतसप्तप्रमैश्चापैः पञ्चविंशति संयुतैः ॥७७॥
हा-मा-नीतिकरस्तस्मिन् कालेऽतिविरलाः स्वयम्।
जाताः कल्पद्रुमा मन्दफलाश्च कालहानितः ॥७८॥
तत्कारणैस्तदाऽमीषां विसमवादः परोऽजनि।
ततो गुल्मादि चिह्नैः स तेषां सीमां न्यधात् सुधीः ॥७९॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

पल्यस्याशीति लक्षैकभागे गते ततोऽभवत्।
सुमतिस्त्रीप्रभुर्दक्षो मनुविमलवाहनः ॥८०॥
स्वर्णकान्तिर्महाँस्तुङ्गः शतसप्तशरासनैः।
पल्यकोट्येकभागायुर्हा-मा-नीतिकृतोद्यमः ॥८१॥
अकारयत्प्रजानां तदांकुशाद्यायुधैर्बुधः।
आरोहणं गजादीनामुपरि स्फुटमञ्जसा ॥८२॥
पुनः पल्याष्टकोट्येकभागे गतेऽभवत्सुधीः।
चक्षुष्मान् कुलकर्तात्र धारिणीप्रिय उन्नतः ॥८३॥
दण्डैः षट्शतसंख्यानैः पञ्चसप्ततिसंश्रितैः।
पल्यस्य दशाकोट्येकभागजीव्यवधीक्षणः ॥८४॥
प्रियंगुवर्णदीप्राङ्गस्तदा सुसूनुदर्शनैः।
बभूवादृष्टपूर्वैश्चार्याणां भयं सुजीविनाम् ॥८५॥
तत् क्षणं स निवेद्य स्वपुत्रोत्पत्तिं सुखाप्तये।
सन्तानवृद्धिभूतां च तेषां निराकरोद्भयम् ॥८६॥
तेनैष सार्थनामाभूद्धा-मा-नीतिप्रदोऽङ्गिनाम्।
पल्यस्याशीतिकोट्येकभागेऽतीते ततः शुभात् ॥८७॥
यशस्वी कुलकर्तासीत् कान्तिमालापतिर्बुधः।
सार्धषट्शतचापोच्च प्रियंगुप्रभदेहवान् ॥८८॥
पल्यस्य शतकोट्येकभागायुर्ज्ञानलोचनः।
यशसा भूषितो वाग्मी हा-मा-नीतिप्रवर्तकः ॥८९॥
तदासौ कारयामास पुत्रजातमहोत्सवम्।
अनन्तरं प्रसूतेस्तुक् पितॄणां चिरजीविनाम् ॥९०॥

अर्थ—इसके बाद पल्य के आठ लाख भाग व्यतीत हो जाने के बाद यहाँ पर हेम सदृश आभा को धारण करने वाले, यशोधारणी प्रिया के स्वामी सीमन्धर नाम के मनु उत्पन्न हुए थे। इनकी आयु पल्य के दस लाख भागों में से एक भाग ($\frac{१}{१०००००}$ पल्य) प्रमाण एवं शरीर की ऊँचाई ७२५ धनुष प्रमाण थी। आपके द्वारा ''हा-मा'' दण्डनीति निर्धारित की गई थी। इस समय में काल हानि के प्रभाव से कल्पवृक्ष अत्यन्त विरले एवं अत्यन्त मन्द फल प्रदान करने वाले हो गये थे, इस कारण से आर्य जनों के परस्पर में बहुत कलह होने लगा था, तब अति निपुण आपने झाड़ी, डाली, भौंरा, गुच्छा एवं फल आदि चिह्नों के द्वारा उनकी सीमा बाँध दी थी। इसके बाद पल्य के अस्सी लाख भाग व्यतीत हो जाने पर सुमति महादेवी के स्वामी अत्यन्त निपुण विमलवाहन नाम के मनु उत्पन्न हुए। इनके शरीर की कान्ति स्वर्ण के सदृश और ऊँचाई ७०० धनुष थी। आयु पल्य के एक करोड़ भागों में से एक भाग

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

($\frac{१}{१०००००००}$ पल्य) प्रमाण थी। आपके द्वारा भी ''हा-मा'' नीति निर्धारित की गई थी। इन्होंने प्रजा को अंकुश आदि आयुधों का धारण व प्रयोग करना तथा हाथी आदि पर चढ़ना (सवारी करना) बतलाया था। पश्चात् पल्य के आठ करोड़ भाग व्यतीत हो जाने के बाद यहाँ पर धारिणी प्रिया के स्वामी महान् कुलकर चक्षुष्मान् हुए। आपके शरीर की ऊँचाई ६७५ धनुष और कान्ति प्रियंगुमणि के सदृश हरित वर्ण की थी। आयु का प्रमाण पल्य के दश करोड़ भागों में से एक भाग ($\frac{१}{१००००००००}$ पल्य) प्रमाण था। अवधिज्ञान ही आपके नेत्र थे अर्थात् आप अवधिज्ञान से देखते थे। उस समय पूर्व में कभी नहीं देखे हुए अपने पुत्र के दर्शन से जीवित रहने वाले आर्य जनों को बहुत भय उत्पन्न हुआ, उसी क्षण कुलकर ने अपने पुत्र की उत्पत्ति सुख प्राप्ति के लिए होती है, ऐसा कहकर सन्तान वृद्धि से होने वाले उन जीवों के भय को दूर कर दिया।

सार्थक नाम को धारण करने वाले उन चक्षुष्मान् कुलकर के द्वारा भी प्रजाजनों को ''हा-मा'' का ही दण्ड दिया जाता था। इसके पश्चात् पल्य के अस्सी करोड़ भाग व्यतीत हो जाने पर कान्तिमाला के पति बुद्धिमान् यशस्वी नाम के कुलकर उत्पन्न हुए। आपके शरीर की ऊँचाई ६५० धनुष और कान्ति प्रियंगु मणि के सदृश थी। पल्य के सौ करोड़ भागों में से एक भाग ($\frac{१}{१०००००००००}$ पल्य) प्रमाण आयु थी। ज्ञान नेत्र एवं यश से विभूषित आपने भी ''हा-मा'' दण्ड नीति का ही प्रवर्तन किया था। उस समय पुत्र उत्पत्ति के बाद माता पिता बहुत काल तक जीवित रहने लगे तब कुलकर ने पुत्र उत्पत्ति का महामहोत्सव करने का उपदेश दिया अर्थात् पुत्र उत्पत्ति के बाद लोगों से महोत्सव करवाये ॥७६-९०॥

अब अभिचन्द्र और चन्द्राभ इन दो कुलकरों की उत्पत्ति आदि का एवं कार्यों का वर्णन करते हैं–

पल्याष्टशतकोट्येकभागेऽतीते ततोऽभवत्।
अभिश्चन्द्रो मनुर्ज्ञानी श्रीमतीकान्त उन्नतः ॥९१॥
पञ्चविंशतिसंयुक्तैश्चापैः षट्शतसम्मितैः।
पल्यकोटिसहस्त्रैकभागायुः कनकच्छविः ॥९२॥
चन्द्रादिदर्शनैः रात्रौ चिरजीविप्रजात्मनाम्।
सूनोर्वीक्ष्य मुखं प्रीत्यै क्रीडनं वचसादिशत् ॥९३॥
तेन तत्कृतनामासीद्धा-मा-नीतिविधिं व्यधात्।
पल्यस्याष्टसहस्त्रप्रमकोट्येकप्रमाणके ॥९४॥
गते भागे ततोऽत्राभूच्चन्द्राभश्चन्द्रवर्णवान्।
प्रभावतीप्रियस्तुङ्गो दण्डैः षट्शतसंख्यकैः ॥९५॥
पल्यस्य दशसहस्त्रकोट्यैकांशात्मजीवितः।
आर्याणां कृतदोषाणां हा-मा-धिक्कारदण्डकृत्॥९६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

तदासौ स्वगिरा दक्षः पितॄणां चिरजीविनाम्।
व्यवहारं व्यधात् प्रीत्यै पितृपुत्रादिकल्पनैः॥९७॥

अर्थ—तत्पश्चात् पल्य के आठ सौ करोड़ भाग व्यतीत हो जाने के बाद श्रीमती कान्ता के पति, ज्ञानवान एवं श्रेष्ठ मनु अभिचन्द्र उत्पन्न हुए। इनकी ऊँचाई ६२५ धनुष, आयु पल्य के हजार करोड़ भागों में से एक भाग ($\frac{१}{१०००००००००}$ पल्य) प्रमाण एवं शरीर की कान्ति स्वर्णाभा सदृश थी। सार्थक नाम को धारण करने वाले इन कुलकर ने अपनी वाणी द्वारा बहुत काल तक जीवित रहने वाली अपनी प्रजा को रात्रि में चन्द्रमा आदि के दर्शन द्वारा अर्थात् अपने बालकों को चन्द्रमा दिखा-दिखाकर प्रीतिपूर्वक उनका मुख देखकर क्रीड़ा कराने (रमाने) का उपदेश दिया। इनके द्वारा भी ''हा-मा'' दण्ड नीति का ही विधान किया गया था। पश्चात् पल्य के आठ हजार करोड़ प्रमाण भाग बीत जाने पर यहाँ चन्द्रमा की कान्ति को धारण करने वाले प्रभावती प्रिया के स्वामी चन्द्राभ नाम के मनु हुए। इनके शरीर की ऊँचाई ६०० धनुष प्रमाण और आयु पल्य के दश हजार करोड़ भागों में से एक भाग ($\frac{१}{१००००००००००}$ पल्य) प्रमाण थी। दोष करने वाले आर्यों को ये हा-मा और धिक्कार का दण्ड देते थे। उस समय आपने अपने वचनों द्वारा बहुत काल तक जीवित रहने वाले माता पिता को पिता पुत्र आदि के सम्बन्ध की कल्पना द्वारा प्रीतिपूर्वक व्यवहार करने का उपदेश दिया ॥९१-९७॥

अब मरुदेव, प्रसेनजित और नाभिराय कुलकरों का वर्णन करते हैं—

पल्याशीति सहस्त्रादि कोट्येक सम्मिते गते।
भागे ततो मरुद्देवो बभूवानुपमाप्रियः ॥९८॥
पञ्चसप्ततिसंयुक्त धनुः पञ्चशतोन्नतः।
पल्यस्य लक्षकोट्येकभागायुः कनकद्युतिः ॥९९॥
हा-मा-धिक्कारनीत्युक्तस्तत्काले वार्धयः स्वयम्।
प्रादुरासंश्च नद्यौघा-मेघा-नानाविधाः शुभाः ॥१००॥
नद्यब्ध्युत्तरणे पोतनौ द्रोण्यादीन् ह्यकारयत्।
आरोहणे स गिर्यादि सुधीः सोपानमालिकाः ॥१०१॥
पल्याष्टलक्षकोट्येकभागे व्यतिक्रमे ततः।
प्रियंगुकान्ति सत्कायो जज्ञे मनुः प्रसेनजित् ॥१०२॥
तुङ्गः शरासनैः सार्धशतपञ्चप्रमैर्बुधः।
पल्यस्य दशलक्षादिःकोट्येकभागजीवितः ॥१०३॥
हा-मा-धिग्नीति दण्डोक्तस्तस्यामितगतिः पिता।
वरकन्यकयासार्धं विवाहं विधिना व्यधात् ॥१०४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

कुलकृच्चैक एवात्रोत्पन्नः स युगलं विना।
तदा प्रभृति युग्मानामुत्पत्तौ नियमो गतः ॥१०५॥
कालेऽस्यैव सुतोत्पत्तिर्जरायुपटलावृता।
अभूत् तत् कर्षणस्नानान् प्रजानां सोऽदिशद्गिरा ॥१०६॥
पल्यस्याशीति लक्षादिकोट्येकप्रमिते गते।
भागे ततोऽभवत्पुण्यान् नाभिः कुलकरोऽद्भुतः ॥१०७॥
मरुदेवीप्रियो विद्वान् हेमकान्तिः सुरार्चितः।
पंचविंशतिसंयुक्त धनुः पंचशतोच्छ्रितः ॥१०८॥
पूर्वकोटिप्रमायुष्को हा-मा-धिग्नीतिकारकः।
काले तस्य सुतोत्पत्तिर्नाभिनालयुताजनि ॥१०९॥
तत्कर्तनं स पितॄणां सुखाय विधिनादिशत्।
ततोऽसौ सार्थकं स्वस्य नाम प्रापप्रजोदितम् ॥११०॥
तस्मिन् काले नभो व्याप्य तडिदम्बरगर्जनैः।
सार्धं मुहुर्महावृष्टीर्मेघाधाराव्रजैर्व्यधुः ॥१११॥
तदा शनैः शनैर्भूषु सर्वतो विरलं स्वयम्।
वृद्धान्यासंश्च सस्यानि पूर्णपक्वान्यनेकशः ॥११२॥
षाष्टिकाः कलमब्रीहियवगोधूम कङ्गवः।
श्यामाक कोद्रवोद्दालनीबारवरकास्तथा ॥११३॥
तिलालस्यौमसूराश्च सर्षपा धान्य जीरकाः।
माषमुद्गाढकीराजमाषां निष्पावकाश्चणाः ॥११४॥
कुलत्थास्त्रिपुटा धान्यभेदा एते तदाभवन्।
कुसुम्भाद्याश्च कर्पासाः प्रजाजीवनकारिणः ॥११५॥
सामस्त्येन तदा जग्मुर्व्युच्छित्तिं कल्पशाखिनः।
महत्याहारसंज्ञासीत् तेषां सर्वाङ्गशोषिणी ॥११६॥
तयान्तराकुलीभूताः प्रजाः क्षुद्वेदनाक्षताः।
नाभिमभ्येत्य नत्वेति प्रोचुर्दीनगिरा बुधाः ॥११७॥
स्वामिन्! कल्पद्रुमा विश्वेऽद्यास्मत्पुण्यक्षयात् क्षयम्।
ययुरन्ये द्रुमाः केचिज्जाता नानाविधाः स्वयम् ॥११८॥
किमेते परिहर्तव्या भोग्याः किं वा तदादिश।
सदुपायं च वृत्तान्तं जीविकायेन नो भवेत् ॥११९॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

तदाख्यन् नाभिरित्थं हे भद्रकाः! सद्द्रुमा इमे।
कार्या भोग्या अमी शीघ्रंस्त्याज्या विषादिपादपाः ॥१२०॥
काश्चिदेता महौषध्य एते पुण्ड्रेक्षुदण्डकाः।
प्रपातव्या रसीकृत्य यन्त्रैः खाद्या इमे द्रुमाः ॥१२१॥
आम्राद्या इति तत्प्रोक्तं श्रुत्वा प्रीता प्रशस्यतम्।
नत्वा तद् दर्शितां वृत्तिं भेजुः कालोचितां प्रजाः ॥१२२॥

अर्थ—पश्चात् पल्य के अस्सी हजार करोड़ भाग समाप्त हो जाने पर अनुपमा प्रिया के स्वामी मरुदेव कुलकर उत्पन्न हुए। आपकी ऊँचाई ५७५ धनुष, आयु पल्य के एक लाख करोड़ भागों में से एक भाग ($\frac{1}{100000000000}$ पल्य) प्रमाण एवं शरीर की कान्ति स्वर्णाभा सदृश थी। आपने भी हा-मा और धिक्कार दण्ड नीति का ही प्रयोग किया था। इस समय समुद्र, नदियों के समूह और नाना प्रकार के श्रेष्ठ मेघों का स्वयं ही प्रादुर्भाव हुआ था। मरुदेव कुलकर ने नदी और समुद्र आदि को पार करने के लिए पुल, नाव और द्रोणी आदि का तथा पर्वत आदि पर चढ़ने के लिए सोपान मालिका-सीढ़ियों की पंक्तियों का विधान किया था। इसके पश्चात् पल्य के आठ लाख करोड़ भाग व्यतीत हो जाने पर प्रियंगुमणि की हरित आभा के सदृश उत्तम शरीर द्युति से युक्त प्रसेनजित् मनु उत्पन्न हुए। आपके शरीर की ऊँचाई ५५० धनुष और आयु पल्य के दस लाख करोड़ भागों में से एक भाग ($\frac{1}{1000000000000}$ पल्य) प्रमाण थी। प्रसेनजित् मनु के द्वारा भी हा-मा और धिक्कार नीति का ही प्रयोग किया गया था। आपके पिता अमितगति ने आपका विवाह उत्तम कन्या से विधिपूर्वक किया था। यह एक ही कुलकर बिना युगल के उत्पन्न हुए हैं और इसी समय से युगल उत्पत्ति का नियम समाप्त हुआ है, अर्थात् युगल ही उत्पन्न हों, ऐसा नियम नहीं रहा। इसी समय में पुत्रों (सन्तानों) की उत्पत्ति जरायु पटल से आवृत्त होने लगी थी। उस समय आपने अपनी मृदु वाणी के द्वारा प्रजा को जरायु आदि काटने का तथा स्नान आदि कराने का उपदेश दिया था। पश्चात् पल्य के अस्सी लाख करोड़ भाग व्यतीत हो जाने पर पुण्य उदय से चौदहवें कुलकर नाभिराय उत्पन्न हुए। मरुदेवी कान्ता के स्वामी, विद्वान्, हेमकान्ति को धारण करने वाले और देवों द्वारा पूजित आपकी ऊँचाई ५२५ धनुष प्रमाण तथा आयु एक पूर्व कोटि प्रमाण थी। आप भी हा-मा और धिक् दण्ड नीति का ही प्रयोग करते थे। इस काल में सन्तान की उत्पत्ति नाभि नाल से युक्त होने लगी थी। आपने माता-पिता के सुख के लिए उस नाल को काटने का उपदेश दिया था, इसीलिये प्रजा ने आपका सार्थक नाम नाभिराय रखा था।

इसी काल में नभ को व्याप्त करके बिजली सहित मेघ गम्भीर गर्जना के साथ-साथ स्थूल जलधारा के द्वारा बार-बार महावृष्टि करने लगे थे। वर्षा होने के बाद ही पृथ्वी पर धीरे-धीरे चारों ओर पूर्णरूपेण पके हुए अनेक प्रकार के धान्य की वृद्धि होने लगी थी, जिसमें शालि चावल, कलम, ब्रीहि

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

आदि और अनेक प्रकार के चावल, जौ, गेहूँ, कांगणी, श्यामक (एक प्रकार का धान्य) कोदों, मोट, नीवार (कोई धान्य), वरवटी, तिल, अलसी, मसूर, सरसों, धना, जीरा, उड़द, मूँग, अरहड़, चौला, निष्पावक (बालोर), चना, कुलथी और त्रिपुटा (तेवड़ा) आदि भेद वाले धान्य हो गये थे तथा कल्पवृक्षों की सम्पूर्णरूपेण समाप्ति हो जाने पर प्रजा के जीवनोपयोगी कौसुम्भ और कपास आदि की भी उसी समय उत्पत्ति हो गई थी। कल्पवृक्षों का अभाव हो जाने से जीवों में आहार की तीव्र वाञ्छा उत्पन्न होने लगी, उस समय सर्व अंगों का शोषण करने वाली क्षुधा वेदना से प्रजा अन्तरंग में अत्यन्त दुःखी होती हुई नाभिराय मनु के समीप जाकर तथा नमस्कार करके दीन वचनों से इस प्रकार कहने लगी कि–हे स्वामिन्! हम लोगों का पुण्य क्षय हो जाने से समस्त कल्पवृक्ष नष्ट हो गये हैं और उनके स्थान पर और कोई नाना प्रकार के अनेक वृक्ष स्वयमेव उत्पन्न हुए हैं, इनमें से कौन से वृक्ष छोड़ने योग्य हैं और कौन से भोगने योग्य हैं, यह समझाते हुए आप हमें ऐसा सर्वोत्तम उपाय बतलाइए जिससे हम लोगों की जीविका चले। इसके बाद नाभिराय इस प्रकार बोले कि हे भद्र! इनमें ये तो उत्तम वृक्ष भोगने योग्य और काम में लेने योग्य हैं तथा ये विष आदि के वृक्ष हैं, जो शीघ्र ही छोड़ने योग्य हैं। इनमें ये वृक्ष महा औषधि रूप हैं, ये आम्र आदि खाने योग्य हैं और ये गन्ना आदि हैं, जिनका यन्त्र के द्वारा रस निकालकर पीना चाहिए। इस प्रकार राजा के वचनों को सुनकर और भली प्रकार प्रीतिपूर्वक उन्हें नमस्कार करके प्रजा उनके द्वारा दर्शायी हुई कालोचित वृत्ति का सेवन करने लगी ॥९८-१२२॥

अब कुलकरों की उत्पत्ति आदि का कुछ वर्णन करते हैं–

प्रतिश्रुत्यादयोयेऽत्र वर्णिता मनवोऽखिलाः।
ते प्राग्भाग्विदेहेषु ज्ञेया नृपाः महान्वयाः ॥१२३॥
सम्यक्त्वग्रहणात्पूर्वं पात्रदानशुभार्जनैः।
भोगभूमिमनुष्याणां बद्ध्वायुस्ते शुभाशयाः ॥१२४॥
पश्चात् क्षायिकसम्यक्त्वं जिनान्ते काललब्धितः।
गृहीत्वा स्वायुरन्तेऽत्र सर्वे जाता विचक्षणाः ॥१२५॥
तेषु जातिस्मराः केचित्केचिच्चावधिलोचनाः।
एतान् हितोपदेशादीन् प्रजानामादिशन् बुधाः ॥१२६॥

अर्थ–यहाँ पर जिन प्रतिश्रुति आदि कुलकरों का वर्णन किया गया है, वे सभी पूर्व भव में विदेह क्षेत्र में उत्तम कुलोत्पन्न श्रेष्ठ राजा थे। सम्यक्त्व ग्रहण के पूर्व पात्रदान से अर्जित पुण्य फल के द्वारा उन पवित्र चित्तवृत्ति वाले सभी मनुओं ने भोगभूमि के मनुष्यों की आयु का बन्ध कर लिया था। पश्चात् काललब्धि के योग से जिनेन्द्र भगवान् के पादमूल में क्षायिक सम्यक्त्व ग्रहण करके विचक्षण बुद्धि को धारण करने वाले वे सभी आयु के अन्त में वहाँ से मरण कर यहाँ उत्पन्न होते हैं। उनमें से

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

किन्हीं को जातिस्मरण और किन्हीं को अवधिज्ञान होता है, जिससे वे विद्वज्जन प्रजा को हितोपदेश देते हैं ॥१२३-१२६॥

अब ऋषभदेव और भरत चक्रवर्ती की दण्डनीति तथा ऋषभदेव के मोक्ष जाने का वर्णन करते हैं—

नाभेः कुलकरस्यान्तिमस्यात्रासीत्सुतः परः।
ऋषभस्तीर्थकृत् पूज्यः कुलकृत् त्रिजगद्धितः ॥१२७॥
हा-मा-धिग्नीतिमार्गोक्तोऽस्य पुत्रो भरतोऽग्रजः।
चक्री कुलकरो जातो बधबन्ध्यादि दण्डभृत् ॥१२८॥
ततश्चतुर्थकालाच्च पूर्वं श्रयादिजिनेश्वरः।
मुक्ते मार्गं द्विधा धर्मं प्रकाश्य ध्वनिना सताम् ॥१२९॥
हत्वा कृत्स्नाङ्गकर्माणि प्राप्य देवाधिपार्चनम्।
अनन्तगुणशर्माब्धिंजगामान्ते शिवालयम् ॥१३०॥
विश्वाग्रस्थं तृतीयस्य कालान्तेऽस्यान्तिमे सति।
वर्षत्रयेऽवशिष्टे च सार्धाष्टमाससंयुते ॥१३१॥

अर्थ—अन्तिम कुलकर नाभिराय के ऋषभदेव नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ, जो तीर्थंकर, पूज्य, कुलकर और त्रैलोक्य का हित करने वाला था। आपने भी हा-मा और धिक् दण्डनीति का ही प्रयोग किया था। आपके पुत्र प्रथम चक्रवर्ती भरत, कुलकर रूप में उत्पन्न हुए जिन्होंने दोष करने वाली प्रजा पर बध, बन्धन आदि दण्ड नीति का प्रयोग किया। चतुर्थ काल से पूर्व ही अंतरंग बहिरंग लक्ष्मी से युक्त प्रथम तीर्थंकर हुए, जो भव्य जनों को अपनी दिव्यध्वनि के द्वारा मोक्षमार्ग को तथा मुनि और श्रावक के धर्म को प्रकाश कर, सम्पूर्ण कर्मों को नष्टकर तथा देवेन्द्रों से पूजा को प्राप्त कर सम्पूर्ण तृतीय काल के अन्त में तीन वर्ष साढ़े आठ मास अवशेष रहने पर अनन्त गुण और अनन्त सुख के सागर मोक्ष को प्राप्त हुए ॥१२७-१३१॥

अब चतुर्थ काल का सविस्तृत वर्णन करते हैं—

ततश्चतुर्थकालोऽभूत् दुःषमासुषमाह्वयः।
दुःखसौख्यकरो ह्येक कोटीकोट्यम्बुधिप्रमः ॥१३२॥
ऊनो वर्षद्विचत्वारिंशत्सहस्त्रप्रमैर्महान्।
शुभः कर्मधरोत्पन्नः स्वर्मोक्षसुखसाधनः ॥१३३॥
अस्यादौ मानवाः सन्ति पूर्वकोटिपरायुषः।
पञ्चवर्णा लसद्देहाश्चापपञ्चशतोच्छ्रिताः ॥१३४॥
वारैकं पूर्णमाहारं दिनं प्रत्याहरन्ति ते।
षट्कर्मकारिणोऽन्ते मोक्षचतुर्गतिगामिनः ॥१३५॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

आद्यकालत्रये भोगभूमिभागेषु येऽङ्गिनः।
न भूता दुःखदा द्वित्रिचतुरिन्द्रियजातयः ॥१३६॥
मांसाशिपक्षिणः क्रूरा अन्ये जलचरादयः।
ते सर्वे विकलाक्षाद्याः कालेऽस्मिन्स्वयमुद्गताः ॥१३७॥
चतुर्विंशतितीर्थेशाश्चक्रेशा द्वादशोत्तमाः।
बलदेवा नवैवासन् वासुदेवा नवोत्कटाः ॥१३८॥
तच्छत्रवोऽत्र तावन्तो रुद्रा एकादशाशुभाः।
चतुर्विंशतिकामाश्च दुर्वेषां नारदा नव ॥१३९॥

अर्थ—तृतीय काल के अन्त में दुखमा-सुखमा नाम का चतुर्थ काल प्रारम्भ हुआ, जो दुख और सुख दोनों का सम्पादन करने वाला था और उसका प्रमाण बयालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागर (१०००००००००००००० सागर-४२००० वर्ष) था। इसमें शुभ कर्मों द्वारा पुण्य उपार्जन करने वाले तथा स्वर्ग और मोक्ष का साधन करने वाले जीव उत्पन्न होते थे। चतुर्थ काल के प्रारम्भ में मनुष्यों की उत्कृष्ट आयु एक पूर्व कोटि (७०५६ के आगे १७ शून्य), शरीर की आभा पंच वर्ण की और ऊँचाई ५०० धनुष प्रमाण थी। उस समय जीव दिन में एक बार पूर्ण आहार करते थे तथा षट्कर्मों में तत्पर रहते थे और आयु के अन्त में मोक्ष एवं कर्मानुसार चारों गतियों को प्राप्त होते थे। प्रारम्भ के भोगभूमि सम्बन्धी तीनों कालों में दुखदाई द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय अर्थात् विकलत्रय जीव, मांसभक्षी एवं अन्य क्रूर पक्षी तथा जलचर आदि जो जीव उत्पन्न नहीं होते थे, वे सब इस काल में स्वयमेव उत्पन्न होने लगे थे। इस काल में चौबीस तीर्थंकर, द्वादश चक्रवर्ती, नव नारायण और नव ही प्रतिनारायण उत्कट बल के धारी हुए। ग्यारह रुद्र, शुभकार्य करने वाले चौबीस कामदेव और दुर्बुद्धिधारी नव नारद भी इसी काल में होते हैं ॥१३२-१३९॥

अब चौबीस तीर्थंकरों का सविस्तृत वर्णन करते हैं—

वृषभोऽजिततीर्थेशः सम्भवाख्योऽभिनन्दनः।
सुमतिः श्रीजिनः पद्मप्रभसुपार्श्वतीर्थकृत् ॥१४०॥
चन्द्रप्रभजिनः पुष्पदन्तः शीतलसंज्ञकः।
श्रेयान् श्रीवासुपूज्योऽर्हद्विमलोऽनन्ततीर्थकृत् ॥१४१॥
धर्मः शान्तीश्वरः कुन्थुनाथोऽरो मल्लिनामकः।
मुनिसुव्रततीर्थेशो नमिर्नेमिजिनेश्वरः ॥१४२॥
पार्श्वः श्रीवर्द्धमानाख्य एते श्रीजिननायकाः।
त्रिजगन्नाथवन्द्यार्च्याश्चतुर्विंशतिरेव च ॥१४३॥
चन्द्राभपुष्पदन्तौ द्वौ चन्द्रकान्तमणिप्रभौ।
पद्माभवासुपूज्यौ च पद्मरागमणिच्छवी ॥१४४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सुपार्श्वपार्श्वतीर्थेशौ स्फुरन्मरकतद्युती।
नेमीशसुव्रतौ श्यामौ शेषास्ते कनकप्रभाः ॥१४५॥
मुनिसुव्रतनेमीशौ हरिवंशशिरोमणी।
शान्तिकुन्थ्वरतीर्थेशा कुरुवंशविभूषणाः ॥१४६॥
उग्रवंशाग्रणीः पार्श्वो वीरो नाथान्वयोद्भवः।
इक्ष्वाकुकुलसञ्जाता जिनाः सप्तदशापरे ॥१४७॥
चापपञ्चशतान्याद्ये चोनं पञ्चाशदष्टसु।
दश-पञ्चसु चापानि हीनानि पञ्च चाष्टसु ॥१४८॥
नव सप्तकराः प्रोक्ताः क्रमेण पार्श्ववीरयोः।
उत्सेधास्तीर्थकर्तृणां दिव्याङ्गेषु भवन्त्यमी ॥१४९॥
आयुश्चतुरशीतिश्च प्रथमश्रीजिनेशिनः।
ततो द्वासप्ततिः षष्टिः पूर्वलक्षाणि चार्हताम् ॥१५०॥
तेभ्यो दशविहीनानि पञ्चानां हि क्रमात् तथा।
पूर्वलक्षद्वयं जेष्ठायुः पूर्वलक्षमर्हतः ॥१५१॥
लक्षाश्चतुरशीतिः सम्वत्सराणां द्विसप्ततिः।
षष्टिस्त्रिद्वशैवायुस्ततो लक्षैकमञ्जसा ॥१५२॥
पंचाग्रा नवतिर्वर्षाण्यशीतिश्चतुरुत्तरा।
आयुश्च पंचपंचाशत् सहस्राणि पृथक् ततः ॥१५३॥
त्रिंशद्वशसहस्राणि सहस्रैकं ततः परम्।
वर्षाण्यायुः शतैकं स्याद्वर्द्धमाने द्विसप्ततिः ॥१५४॥

अर्थ—वृषभनाथ, अजितनाथ तीर्थंकर, सम्भवनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ जिनेन्द्र, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ, पुष्पदन्त, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य अर्हन्त, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और वर्द्धमान नाम के ये चौबीस तीर्थंकर हुए हैं। ये चौबीसों तीर्थंकर तीनों लोकों के स्वामियों द्वारा अर्थात् सुरेन्द्र, धरणेन्द्र और नरेन्द्रों के द्वारा वन्दनीय एवं अर्चनीय हैं। इन चौबीस तीर्थंकरों में से चन्द्रप्रभ और पुष्पदन्त भगवान् के शरीर की कान्ति चन्द्रकान्तमणि की प्रभा के सदृश श्वेत, पद्मप्रभ और वासुपूज्य भगवान् के शरीर की आभा पद्मरागमणि की आभा के सदृश लाल, सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ तीर्थंकरों की कान्ति मरकत मणि की कान्ति सदृश हरित, नेमिनाथ और मुनिसुव्रतनाथ के शरीर की द्युति श्याम तथा अन्य अवशेष सोलह तीर्थंकरों के शरीर की कान्ति कनकप्रभा के सदृश थी ॥१४०-१४५॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

मुनिसुव्रतनाथ और नेमिनाथ हरिवंश के शिरोमणि थे। शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथ कुरुवंश के विभूषण थे, पार्श्वनाथ उग्रवंश के अग्रणी थे, वीरनाथ नाथवंश के एवं अन्य शेष सत्रह जिनेश्वर इक्ष्वाकु वंश के आभूषण थे अर्थात् इन-इन वंशों में उत्पन्न हुए थे ॥१४६-१४७॥

प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ भगवान् के शरीर की ऊँचाई ५०० धनुष प्रमाण थी, द्वितीयादि आठ तीर्थंकरों की ५०-५० धनुष कम अर्थात् ४५०, ४००, ३५०, ३००, २५०, २००, १५० और १०० धनुष थी। दशवें आदि पाँच तीर्थंकरों की १०-१० धनुष कम अर्थात् ९०, ८०, ७०, ६० और ५० धनुष थी। पन्द्रहवें आदि आठ तीर्थंकरों की क्रमशः ५-५ धनुष कम अर्थात् ४५, ४०, ३५, ३०, २५, २०, १५ और १० धनुष थी। पार्श्वनाथ भगवान् की ९ हाथ और वीर नाथ भगवान् की ७ हाथ प्रमाण ऊँचाई थी, इस प्रकार चौबीस तीर्थंकरों के दिव्य शरीरों का उत्सेध था ॥१४८-१४९॥

चौबीस तीर्थंकरों में से प्रथम तीर्थंकर की आयु चौरासी लाख पूर्व, द्वितीय की बहत्तर लाख पूर्व और तृतीय की साठ लाख पूर्व थी। इसके आगे पाँच-पाँच तीर्थंकरों की क्रमशः १०-१० लाख पूर्व कम, पुष्पदन्त की दो लाख पूर्व और शीतलनाथ की एक लाख पूर्व की आयु थी। श्रेयांसनाथ की ८४ लाख वर्ष, वासुपूज्य की ७२ लाख वर्ष, विमलनाथ की ६० लाख वर्ष, अनन्तनाथ की ३० लाख वर्ष, धर्मनाथ की १० लाख वर्ष, शान्तिनाथ की एक लाख वर्ष, कुन्थुनाथ की ९५ हजार वर्ष, अरनाथ की ८४ हजार वर्ष, मल्लिनाथ की ५५ हजार वर्ष, मुनिसुव्रतनाथ की ३० हजार वर्ष, नमिनाथ की १० हजार वर्ष, नेमिनाथ की एक हजार वर्ष, पार्श्वनाथ की १०० वर्ष और वर्धमान स्वामी की ७२ वर्ष प्रमाण आयु थी ॥१५०-१५४॥

अथ कायायुषोः सुखबोधाय विस्तरमाह-

वृषभस्याङ्गोत्सेधःपञ्चशतधनूंषि। आयुश्चतुरशीति लक्षपूर्वाणि। अजितस्योन्नतिः सार्धचतुःशत-चापानि। आयुर्द्वासप्ततिर्लक्षपूर्वाणि। सम्भवस्योत्सेधः चतुःशतधनूंषि, आयुः षष्टिलक्षपूर्वाणि। अभिनन्दन-स्याच्छ्रितिः सार्धत्रिशतचापानि, आयुः पञ्चाशल्लक्षपूर्वाणि। सुमतेरुन्नतिः त्रिशतधनूंषि, आयुश्चत्वारिंशल्लक्ष पूर्वाणि। पद्मप्रभस्योत्सेधः सार्धद्विशतचापानि, आयुस्त्रिंशल्लक्षपूर्वाणि।

क्रम	नाम	आयु	उत्सेध
१	ऋषभनाथ	८४ लाख पूर्व	५०० धनुष
२	अजितनाथ	७२ लाख पूर्व	४५० धनुष
३	सम्भवनाथ	६० लाख पूर्व	४०० धनुष
४	अभिनन्दननाथ	५० लाख पूर्व	३५० धनुष
५	सुमतिनाथ	४० लाख पूर्व	३०० धनुष
६	पद्मनाथ	३० लाख पूर्व	२५० धनुष

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

७	सुपार्श्वनाथ	२० लाख पूर्व	२०० धनुष
८	चन्द्रप्रभ	१० लाख पूर्व	१५० धनुष
९	पुष्पदन्त	२ लाख पूर्व	१०० धनुष
१०	शीतलनाथ	१ लाख पूर्व	९० धनुष
११	श्रेयांशनाथ	८४ लाख वर्ष	८० धनुष
१२	वासुपूज्य	७२ लाख वर्ष	७० धनुष
१३	विमलनाथ	६० लाख वर्ष	६० धनुष
१४	अनन्तनाथ	३० लाख वर्ष	५० धनुष
१५	धर्मनाथ	१० लाख वर्ष	४५ धनुष
१६	शान्तिनाथ	१ लाख वर्ष	४० धनुष
१७	कुन्थुनाथ	९५ हजार वर्ष	३५ धनुष
१८	अरनाथ	८४ हजार वर्ष	३० धनुष
१९	मल्लिनाथ	५५ हजार वर्ष	२५ धनुष
२०	मुनिसुव्रतनाथ	३० हजार वर्ष	२० धनुष
२१	नमिनाथ	१० हजार वर्ष	१५ धनुष
२२	नेमिनाथ	१ हजार वर्ष	१० धनुष
२३	पार्श्वनाथ	१०० वर्ष	९ हाथ
२४	वर्धमान	७२ वर्ष	७ हाथ

सुपार्श्वस्योन्नतिर्द्विशतधनूंषि, आयुर्विंशतिलक्षपूर्वाणि। चन्द्रप्रभस्योत्सेधः सार्धशतचापानि, आयुर्द्वशलक्ष-पूर्वाणि। पुष्पदन्तस्योन्नतिः शतधनूंषि, आयुर्द्विलक्षपूर्वाणि। शीतलोत्सेधः नवतिचापानि, आयुरेकलक्ष-पूर्वाणि। श्रेयसः उन्नतिरशीतिधनूंषि, आयुश्चतुरशीतिलक्षवर्षाणि। वासुपूज्योत्सेधः सप्ततिचापानि, आयुर्द्वासप्ततिलक्षवर्षाणि। विमलस्योत्सेधः षष्टिधनूंषि, आयुः षष्टिलक्षवर्षाणि। अनन्तस्योन्नतिः पञ्चाशच्चापानि, आयुस्त्रिंशल्लक्षवर्षाणि। धर्मस्योत्सेधः पञ्चचत्वारिंशद्धनूंषि, आयुर्दशलक्षवर्षाणि। शान्तेरुन्नतिश्चत्वारिंशच्चापानि, आयुरेकलक्षवर्षाणि। कुन्थोरुत्सेधः पञ्चत्रिंशद्धनूंषि, आयुः पञ्चनवतिसहस्रवर्षाणि। अरस्योन्नतिस्त्रिंशच्चापानि, आयुश्चतुरशीतिसहस्रवर्षाणि। मल्लिनाथस्योत्सेधः पञ्चविंशतिधनूंषि, आयुः पञ्चपञ्चाशत्सहस्रवर्षाणि। मुनिसुव्रतस्योन्नतिविंशति चापानि, आयुस्त्रिंशत्सहस्रवर्षाणि। नमेरुत्सेधः पञ्चदशधनूंषि, आयुर्दशसहस्रवर्षाणि। नेमेरुन्नतिर्दशचापानि,

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

आयुः सहस्रवर्षाणि। पार्श्वस्योत्सेधः नवहस्ताः, आयुः शतवर्षाणि। वर्धमानस्योन्नतिः सप्तकराः आयुर्द्विसप्ततिवर्षाणि।

उपर्युक्त गद्य में वर्णित चौबीस तीर्थंकरों के शरीर के उत्सेध का प्रमाण और आयु का प्रमाण निम्नलिखित तालिका द्वारा दर्शाया जा रहा है–

चौबीस तीर्थंकरों की आयु एवं उत्सेध–

अब तीर्थंकरों का अन्तरकाल कहते हैं–

गतेऽत्र वृषभे निर्वाणं जातेऽजितनायके।
तयोस्तीर्थेशयोर्मध्ये गतकालो जिनान्तरः ॥१५५॥
पञ्चाशल्लक्षकोट्यश्च सागराः प्रथमान्तरम्।
सार्धाष्टमाससंयुक्त त्रिवर्षाग्रमतं परम् ॥१५६॥
ज्ञेयं मध्येऽन्तरस्यास्यैवाजितस्यायुरञ्जसा।
इत्यन्तरस्य मध्ये स्यादायुः शेषजिनेशिनाम् ॥१५७॥
ततोऽब्धिलक्षकोटीनां त्रिंशद्दश नव क्रमात्।
तथा सहस्रकोटीनां नवतिः क्रमतो नव ॥१५८॥
कोट्यो नवशतान्येव कोट्यो नवतिर्नव।
ततः शतोन कोट्येका, जिनेन्द्रस्यान्तरं पृथक् ॥१५९॥
षट्षष्टिलक्षषड्विंशसहस्रवत्सरोनितम् ।
सागरा हि चतुः पञ्चाशत्त्रिंशच्च नवान्तरम् ॥१६०॥
चत्वारोऽम्बुधयः पादोनपल्यवर्जितास्त्रयः।
पल्यार्धं पल्य पादं सहस्रकोटिसमोनितम् ॥१६१॥
सहस्रकोटिवर्षाणि मध्येऽर्हतो जिनान्तरम्।
सम्वत्सराश्चतुः पञ्चाशल्लक्षाः षट् च पञ्च हि ॥१६२॥
सार्धसप्तशताग्रास्त्र्यशीतिसहस्रवत्सराः ।
सार्धद्विशतवर्षाणि ततोऽपरं जिनान्तरम् ॥१६३॥
हीनं सार्धाष्टमासाधिकवर्ष त्रिभिरंजसा।
चतुर्विंशार्हतामित्थं पृथक् पृथग्जिनान्तरम् ॥१६४॥
इत्युक्त कालमध्येषु जगन्नाथा जिनेश्वराः।
हत्वा कृत्स्नाङ्गकर्माणि जग्मुर्मोक्षं जगद्धिताः ॥१६५॥
यदा चतुर्थकालस्य सार्धाष्टमाससंयुते।
सति वर्षत्रये शेषे तदा वीरोऽगमच्छिवम् ॥१६६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

एषां जिनान्तराणां च मध्ये क्षिप्तेषु सत्सु वै।
ह्येकविंशसहस्राब्देषु पंचमान्त्यकालयोः ॥१६७॥
जिनान्तराणि सर्वाणि पिण्डितानि भवन्ति च।
कोटीकोट्यब्धयः कालसंख्ययात्र जिनेशिनाम् ॥१६८॥

अर्थ—वृषभदेव भगवान् के मोक्ष जाने के बाद अजितनाथ भगवान् मोक्ष गये, इन दोनों तीर्थंकरों के मध्य में जो काल व्यतीत होता है, वही तीर्थंकरों का अन्तरकाल-कहलाता है। प्रथम अन्तर पचास लाख करोड़ सागर तीन वर्ष और साढ़े आठ माह प्रमाण था। इस ऋषभनाथ और अजितनाथ के प्रथम अन्तर के मध्य में अजितनाथ भगवान् की आयु सम्मिलित ही जानना। इसी प्रकार अन्य अन्तरालों में अन्य तीर्थंकरों की आयु भी सम्मिलित है। इसके बाद दूसरे आदि अन्तराल क्रमशः तीस लाख करोड़ सागर, दश लाख करोड़ सागर, नव लाख करोड़ सागर, ९० हजार करोड़ सागर, नव हजार करोड़ सागर, ९०० करोड़ सागर, ९० करोड़ सागर, ९ करोड़ सागर और ६६ लाख २६ हजार एक सौ सागरों से हीन एक करोड़ (३३७३९००) सागर था। इस ग्यारहवें अन्तराल के बाद क्रमशः चौवन सागर, तीस सागर, नौ सागर, चार सागर, पौन पल्य कम तीन सागर, अर्ध पल्य, हजार करोड़ वर्ष कम चौथाई पल्य, हजार करोड़ वर्ष, चौवन लाख वर्ष, छह लाख वर्ष और पाँच लाख वर्ष प्रमाण जिनान्तर जानना चाहिए। इसके बाद तेरासी हजार सात सौ पचास वर्ष और अन्तिम अन्तर दो सौ पचास वर्षों में से तीन वर्ष, साढ़े आठ मास कम अर्थात् दो सौ छियालीस वर्ष तीन मास और एक पक्ष प्रमाण था। इस प्रकार चौबीस तीर्थंकरों का यह पृथक्-पृथक् अन्तरकाल जानना चाहिए। इस उपर्युक्त काल में त्रैलोक्य हितकर्ता, तीन लोक के स्वामी जिनेश्वर भगवान् द्रव्य कर्म, नोकर्म और भाव कर्मों का नाश कर मोक्ष गये। जब चतुर्थ काल के तीन वर्ष, साढ़े आठ मास अवशेष थे तब वीर प्रभु ने मोक्ष प्राप्त किया था। चौबीस जिनेन्द्रों के सम्पूर्ण अन्तर कालों को एकत्रित करके उसमें पंचम और छठे काल के ४२००० वर्ष और मिला देने पर एक कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण हो जाता है ॥१५५-१६८॥

विशेष—पूर्व-पूर्व तीर्थंकर के अन्तर में उत्तर-उत्तर तीर्थंकर की आयु संयुक्त रहती है अतः सम्पूर्ण अन्तराल काल में ४२००० वर्ष जोड़ देने से एक कोड़ाकोड़ी सागरोपम हो जाता है।

इदानीं पृथक् पृथग्बालावबोधाय जिनान्तराण्युच्यन्ते—

वृषभे निर्वाणं गते सति जिनान्तरं सागरोपमानां सार्धाष्टमासत्रिवर्षाधिक पंचाशल्लक्षकोटयः। अजिते च त्रिंशल्लक्षकोटयः। सम्भवे दशलक्ष कोटयः। अभिनंदने नवलक्षकोटयः। सुमतौ नवतिसहस्रकोटयः। पद्मप्रभे नवसहस्रकोटयः। सुपार्श्वे नवशतकोटयः। चन्द्रप्रभे नवतिकोटयः। पुष्पदन्ते नवकोटयः। शीतले षट्षष्टिलक्षषड्विंशतिसहस्रवर्षहीन नवनवति सहस्रनवशतकोटयः। श्रेयसि जिनान्तरं सागराणां चतुःपंचाशत्। वासुपूज्ये त्रिंशत्। विमले नव। अनन्ते चत्वारः। धर्मे पादोनपल्यहीनत्रिसागराः।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

शान्तौ पल्यार्धम्। कुन्थौ सहस्त्रकोटि वर्षोनपल्य पादं। अरे सहस्त्रकोटि वर्षाणि। मल्लिनाथे चतु:पञ्चाशल्लक्षवर्षाणि। मुनिसुव्रते षड्लक्षवर्षाणि। नमिनाथे पञ्चलक्षवर्षाणि। नेमिनाथे सार्धसप्तशताधिकत्र्यशीतिसहस्त्रवर्षाणि। पार्श्वे निर्वाणं गते श्री वर्द्धमाने उत्पन्ने सति तयोः पार्श्ववर्द्धमानयोर्मध्ये जिनांतरं सार्धाष्टमासाग्रत्रिवर्षहीनसार्धद्विशतवर्षाणि। यदा वीरनाथो मोक्षं गतः तदा चतुर्थकालः सार्धाष्टमास त्रिवर्षप्रमोऽवशिष्टोऽभूत्। पञ्चमषष्टसमानकालयोर्द्वयोः संख्या द्विचत्वारिंशत्सहस्त्रवर्षाणि। एवं सर्वे जिनान्तरकालाः एकत्रीकृताः कोटीकोटिसागरोपमाः भवति।

अर्थ—वृषभनाथ भगवान् के मोक्ष चले जाने पर ५० लाख करोड़ सागर ३ वर्ष ८ $\frac{१}{२}$ माह व्यतीत हो जाने पर अजितनाथ भगवान् मुक्ति गये। अजितनाथ के मोक्ष जाने के बाद तीस लाख करोड़ सागर का, सम्भवनाथ भगवान् के बाद दश लाख करोड़ सागर का, अभिनन्दन नाथ के जाने पर ९ लाख करोड़ सागर का, सुमतिनाथ के बाद ९० हजार करोड़ सागर का, पद्मप्रभ के बाद नौ हजार करोड़ का, सुपार्श्वनाथ के बाद ९ सौ करोड़ सागर का, चन्द्रप्रभ के बाद ९० करोड़ सागर का, पुष्पदन्त के मोक्ष जाने के बाद ९ करोड़ सागर का, शीतलनाथ के मोक्ष जाने के बाद (एक करोड़ सागर) १०००००००–६६२६१०० = ३३७३९०० सागर का, श्रेयांसनाथ भगवान के मोक्ष जाने के बाद ५४ सागर का, वासुपूज्य भगवान् के ३० सागर का, विमलनाथ के ९ सागर का, अनन्तनाथ के चार सागर का, धर्मनाथ के मोक्ष जाने के बाद $\frac{३}{४}$ पल्य कम तीन सागर–अर्थात् ३ सागर $\frac{३}{४}$ पल्य=२ सागर और ९९९९९९९९९९९९ $\frac{१}{४}$ पल्य का, शान्तिनाथ के मोक्ष गमन के बाद अर्ध पल्य का, कुन्थुनाथ के बाद हजार करोड़ वर्ष कम $\frac{१}{४}$ पल्य ($\frac{१}{४}$ पल्य – १००० करोड़ वर्ष) का, अरनाथ के एक हजार करोड़ वर्ष का, मल्लिनाथ के ५४००० वर्ष का, मुनिसुव्रतनाथ के ६००००० वर्षों का, नमिनाथ के ५००००० वर्षों का, नेमिनाथ के ८३७५० वर्षों का और पार्श्वनाथ भगवान् के मोक्ष जाने के बाद तीन वर्ष साढ़े आठ मास कम २५० वर्ष अर्थात् (२५०–३ वर्ष ८ $\frac{१}{२}$ मास)=२४६ वर्ष, ३ मास और एक मास बाद वीर प्रभु मोक्ष गये अतः यह पार्श्वजिनेन्द्र और वीरजिनेन्द्र इन दोनों के मध्य का अन्तर है। जब वर्धमान स्वामी मोक्ष गये तब चतुर्थकाल के तीन वर्ष ८ $\frac{१}{२}$ मास अवशेष थे पञ्चम और षष्ठ ये दोनों काल इक्कीस–इक्कीस हजार वर्ष के हैं, इन दोनों का एकत्रित काल ४२००० वर्ष प्रमाण है, जिनेन्द्रों के सर्व अन्तर कालों को एकत्रित करके उसमें दोनों कालों के ४२००० वर्ष जोड़ देने पर एक कोड़ाकोड़ी सागरोपम का प्रमाण हो जाता है।

अब जिनधर्म का उच्छेदकाल दर्शाते हैं—

पुष्पदन्तस्य कालान्ते धर्मव्युच्छित्तिरंजसा।
पल्यस्यासीच्चतुर्थांशः पल्यार्धं शीतलस्य च ॥१६९॥
श्रेयसः प्रोक्त तीर्थान्ते पादोनपल्यमेव च।
वासुपूज्यस्य पल्यैकं धर्मनाशो द्विधाभवत् ॥१७०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

पादोनपल्यमिव श्रीविमलस्य जिनान्तरे।
धर्मनाशोऽप्यनन्तस्य पल्यार्धं कालदोषतः ॥१७१॥
धर्मनाथजिनेन्द्रस्य भागे जिनान्तरान्तिमे।
पल्यपादोऽभवद् वक्तृश्रोतृयत्पाद्यऽभावतः ॥१७२॥

अर्थ—पुष्पदन्त भगवान् के काल के अन्त में $\frac{१}{४}$ पल्य तक धर्म का व्युच्छेद रहा। शीतलनाथ के अन्तराल में अर्धपल्य, श्रेयांसनाथ के तीर्थकाल के अन्त में $\frac{३}{४}$ पल्य और वासुपूज्य भगवान् के तीर्थकाल के अन्त में एक पल्य पर्यन्त मुनि और श्रावक इन दोनों प्रकार के धर्म का अभाव रहा। विमल जिनेन्द्र के अन्तर काल के अन्त में $\frac{३}{४}$ पल्य तक तथा कालदोष से अनन्तनाथ के तीर्थ में अर्ध पल्य पर्यन्त धर्म का नाश रहा और धर्मनाथ जिनेन्द्र के अन्तरकाल के अन्तिम भाग में $\frac{१}{४}$ पल्य पर्यन्त वक्ता और श्रोता दोनों का सर्वथा अभाव रहा अर्थात् सुविधिनाथ और शीतलनाथ के अन्तराल में $\frac{१}{४}$ पल्य तक, शीतलनाथ और श्रेयांसनाथ के अन्तराल में $\frac{१}{२}$ पल्य तक, श्रेयांस एवं वासुपूज्य के अन्तराल में $\frac{३}{४}$ पल्य तक, वासुपूज्य और विमलनाथ के अन्तराल में एक पल्य तक, विमल एवं अनन्तनाथ के अन्तराल में $\frac{३}{४}$ पल्य तक, अनन्तनाथ एवं धर्मनाथ के अन्तराल में $\frac{१}{२}$ और धर्मनाथ एवं शांतिनाथ के अन्तराल में $\frac{१}{४}$ पल्य तक जैनधर्म का अत्यन्त विच्छेद रहा। अर्थात् चतुर्थकाल में ४ पल्य तक जैन धर्म के अनुयायियों का सर्वथा अभाव रहा ॥१६९-१७२॥

अब हुण्डावसर्पिणी काल की विशेषताओं को दर्शाते हैं—

उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यसंख्यातेषु गतेष्वपि।
हुण्डावसर्पिणीकाल इहायाति न चान्यथा ॥१७३॥
तस्यां हुण्डावसर्पिण्यां पंचपाखण्डदर्शनम्।
शलाकापुरुषा ऊनाः सङ्घभेदा अनेकशः ॥१७४॥
जिनशासनमध्ये स्युर्विपरीता मतान्तराः।
चीवराद्यावृता निन्द्याः सग्रन्थाः सन्ति लिङ्गिनः ॥१७५॥
उपसर्गा जिनेन्द्राणां मानभङ्गश्च चक्रिणाम्।
कुदेवमठमूर्त्त्याद्याः कुशास्त्राणि दुरागमाः ॥१७६॥
दुर्मार्गा गुरवः काम-लालसा दुर्दृशोजनाः।
इत्याद्या अपरेऽनिष्टा जायन्ते बहवोऽशुभाः ॥१७७॥

अर्थ—असंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणियों के व्यतीत हो जाने पर इह अर्थात् भरतैरावत क्षेत्रों में एक हुण्डावसर्पिणी काल आता है, इसके पूर्व नहीं आता। इस हुण्डावसर्पिणी काल में पाँच प्रकार के पाखण्डों के दर्शन होते हैं। शलाका पुरुष कम अर्थात् ६३ न होकर ५८ होते हैं। जिनशासन के मध्य भी मूलसंघ, काष्ठासंघ आदि अनेक भेद हो जाते हैं। जैनधर्म से अत्यन्त विपरीत प्रवृत्ति वाले

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अनेक मतान्तरों का जन्म हो जाता है। वस्त्र आदि से युक्त तथा परिग्रह से युक्त अनेक निन्दनीय लिंग को धारण करने वाले साधु बहुत होते हैं। तीर्थंकरों पर उपसर्ग और चक्रवर्ती का मानभंग होता है। खोटे देवों के मठ तथा उनकी मूर्तियाँ, खोटे शास्त्र, खोटा आगम, खोटे मार्ग पर चलने वाले गुरु और काम आदि लालसा से युक्त तथा अत्यन्त दयनीय दशा को प्राप्त मनुष्य बहुत होते हैं। इस प्रकार और भी अनेक प्रकार के अनिष्ट और अशुभ कार्य आदि इस काल में स्वयमेव उत्पन्न होते हैं ॥१७३-१७७॥

अब बारह चक्रवर्तियों के नाम, उत्सेध एवं उनकी आयु का कथन करते हैं–

प्रथमो भरतश्चक्री सगरो मघवाह्वयः।
सनत्कुमारचक्रेशः शान्तिकुन्थ्वरचक्रिणः ॥१७८॥
सुभौमश्च महापद्मो हरिषेणो जयोऽन्तिमः।
ब्रह्मदत्तोद्विषट् ह्येते हेमाभाः सन्ति चक्रिणः ॥१७९॥
भरतस्य समुत्सेधो धनुः पंचशतप्रमः।
आयुश्चतुरशीतिश्च पूर्वलक्षाण्यखण्डितम् ॥१८०॥
उन्नतिः सगरेशस्य सार्धशतचतुष्टयम्।
चापानां पूर्वलक्षाण्यायुर्द्विसप्ततिरेव च ॥१८१॥
उच्छ्रितिर्मघवाख्यस्य धनुः सार्धद्विसंयुता।
चत्वारिंशत्प्रमायुश्च पंचलक्षाब्द सम्मितम् ॥१८२॥
कायोत्तुङ्गश्च सार्धैक चत्वारिंशद्धनुः प्रमः।
आयुर्वर्षत्रिलक्षाणि सनत्कुमारचक्रिणः ॥१८३॥
शान्तेर्देहोन्नतिश्चत्वारिंशच्चापानि निश्चितम्।
आयुर्वत्सरलक्षैकं जिनकामपदेशिनः ॥१८४॥
कुन्थोः शरीरतुङ्गोऽस्ति पंचत्रिंशद्धनुः प्रमः।
आयुर्वर्षसहस्त्राणि पंचाग्रनवतिः परम् ॥१८५॥
अरस्य वपुरुत्सेधो भवेत् त्रिंशद्धनुः प्रमः।
आयुश्चतुरशीतिश्चाब्दसहस्त्राण्यखण्डितम् ॥१८६॥
सुभौमस्योच्छ्रितिश्चापान्यष्टाविंशतिरेव च।
आयुः षष्टिसहस्त्राणि वर्षाणां खण्डवर्जितम् ॥१८७॥
महापद्मस्य चोत्सेधो द्वाविंशतिधनुः प्रमः।
आयुस्त्रिंशत्सहस्त्राणि वत्सराणां परं ततः ॥१८८॥
प्रोन्नतिर्हरिषेणस्य चापविंशतिसम्मिता।
आयुर्दशसहस्त्राणि वर्षाणां चक्रवर्तिनः ॥१८९॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

जयस्य वपुरुत्तुङ्गे धनुः पञ्चदशप्रमः।
आयुः सम्वत्सराणां च त्रिसहस्राणि चक्रिणः ॥१९०॥
उत्सेधो ब्रह्मदत्तस्य चापसप्तप्रमाणकः।
आयुः सप्तशतान्येव वर्षाणां रत्नभोगिनः ॥१९१॥

अर्थ—चतुर्थकाल में (१) भरत, (२) सगर, (३) मघवान्, (४) सनत्कुमार, (५) शांतिजिन, (६) कुन्थुजिन, (७) अरजिन, (८) सुभौम, (९) महापद्म, (१०) हरिषेण, (११) जय और अन्तिम (१२) ब्रह्मदत्त ये बारह चक्रवर्ती हुए हैं। इन सर्व चक्रवर्तियों के शरीर की आभा स्वर्ण वर्ण के सदृश थी। भरत चक्रवर्ती के शरीर का उत्सेध ५०० धनुष और आयु ८४००००० पूर्व की थी। सगर चक्रवर्ती का उत्सेध ४५० धनुष और आयु ७२००००० पूर्व की थी। मघवा का उत्सेध ४२$\frac{१}{२}$ धनुष और आयु ५००००० वर्ष की थी। सनत्कुमार चक्रवर्ती का उत्सेध ४१$\frac{१}{२}$ धनुष और आयु ३००००० वर्ष की थी। शान्तिनाथ का उत्सेध ४० धनुष और आयु १००००० वर्ष की थी, ये चक्रवर्ती, तीर्थंकर और कामदेव इन तीन पदों के धारी थे। कुन्थुनाथ का उत्सेध ३५ धनुष और आयु ९५००० वर्ष प्रमाण थी (आप भी तीन पदधारी थे)। अरनाथ का उत्सेध ३० धनुष और आयु ८४००० वर्ष की थी। सुभौम चक्रवर्ती का उत्सेध २८ धनुष और आयु ६०००० वर्ष प्रमाण थी। महापद्म का उत्सेध २२ धनुष और आयु ३०००० वर्ष की थी। हरिषेण का उत्सेध २० धनुष और आयु १०००० वर्ष की थी। जय चक्रवर्ती का उत्सेध १५ धनुष और आयु ३००० वर्ष प्रमाण थी। अन्तिम चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त का उत्सेध ७ धनुष प्रमाण और आयु ७०० वर्ष प्रमाण थी, ये सभी चौदह रत्नों के भोक्ता हुए हैं ॥१७८-१९१॥

अब पाँच श्लोकों द्वारा चक्रवर्तियों के वर्तना काल का कथन करते हैं—

काले प्रवर्तमानेऽभूद् भरतो वृषभस्य च।
सगरोऽजितनाथस्य वर्तमानस्य सम्प्रति ॥१९२॥
सञ्जातौ मघवाभिख्यसनत्कुमारचक्रिणौ।
जिनान्तरेऽत्र धर्मस्य चक्रिणः स्युर्जिनास्त्रयः ॥२९३॥
सुभौमचक्रभृज्जातोऽत्रारनाथजिनान्तरे ।
महापद्मसमुत्पन्नो मल्लिनाथजिनान्तरे ॥१९४॥
चक्रेशो हरिषेणो मुनिसुव्रतजिनान्तरे।
अभूच्चक्री जयाख्यश्च नमिनाथजिनान्तरे ॥१९५॥
ब्रह्मदत्ताह्वयो जातो नेमीशस्य जिनान्तरे।
इति चक्राधिपा जाता जिनकाले जिनान्तरे ॥१९६॥

अर्थ—वृषभनाथ तीर्थंकर के काल में भरत चक्रवर्ती और अजितनाथ के काल में सगर चक्रवर्ती हुए थे। मघवा और सनत्कुमार ये दो चक्रवर्ती धर्मनाथ और शान्तिनाथ के अन्तराल में, शान्ति, कुन्थु

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

और अरनाथ ये तीन चक्रवर्ती स्वयं जिन थे। सुभौम चक्री, अरनाथ और मल्लिनाथ के अन्तराल में, महापद्म चक्रवर्ती मल्लिनाथ और मुनिसुव्रत के अन्तराल में, हरिषेण चक्रवर्ती मुनिसुव्रत और नमिनाथ के अन्तराल में उत्पन्न हुए थे। जय चक्री नमि और नेमिनाथ के अन्तराल में तथा ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती नेमिनाथ और पार्श्वनाथ के अन्तराल में उत्पन्न हुए थे, इस प्रकार बारह चक्रवर्तियों में से कोई तो जिनेन्द्र के काल में और कोई अन्तराल में उत्पन्न हुए थे ॥१९२-१९६॥

अब चक्रवर्तियों की गति विशेष कहते हैं—

सुभौमब्रह्मदत्ताख्यौ बह्वारम्भपरिग्रहैः।
जात पापैर्विना धर्मं सप्तमं नरकं गतौ ॥१९७॥
चक्रेशौ मघवाभिख्यसनत्कुमारसंज्ञकौ।
सनत्कुमारकल्पं च जग्मतुर्व्रतपुण्यतः ॥१९८॥
शेषाष्टचक्रिणो हत्वा तपो ध्यानासिना वलात्।
कृत्स्नकर्मरिपून् जग्मुर्मोक्षं रत्नत्रयाङ्किताः ॥१९९॥

अर्थ—सुभौम और ब्रह्मदत्त ये दो चक्रवर्ती बहुत प्रारम्भ और बहुत परिग्रह से उपार्जित पाप के कारण धर्म भावना से रहित होते हुए सप्तम नरक में गये हैं। मघवा और सनत्कुमार नाम के दो चक्रवर्ती व्रत और धर्म (पुण्य) के प्रभाव से सनत्कुमार स्वर्ग में गये हैं। रत्नत्रय से अलंकृत शेष आठ चक्रवर्ती तप एवं ध्यानरूपी तलवार के बल से सम्पूर्ण कर्मरूपी शत्रुओं का नाश करके मोक्षपद को प्राप्त हुए हैं ॥१९७-१९९॥

अब नव बलदेवों के नाम, उनका उत्सेध और आयु का कथन करते हैं—

विजयोऽथाचलो धर्मः सुप्रभाख्यः सुदर्शनः।
नन्दी च नन्दिमित्रोऽत्र रामः पद्म इमे बलाः ॥२००॥
उत्सेधो विजयेशस्य चापाशीतिप्रमः स्मृतः।
सप्ताग्राशीतिलक्षाणि वर्षाणामायुरञ्जसा ॥२०१॥
कायोत्सेधोऽचलस्यास्ति धनुः सप्ततिमानकः।
सप्तसप्ततिलक्षाण्यब्दानामायुरखण्डितम् ॥२०२॥
धर्मस्य वपुरुत्तुङ्गः षष्टिचापप्रमाणकः।
सप्ताग्रषष्टिलक्षाणि वर्षाणि चायुरुत्तमम् ॥२०३॥
तुङ्गत्वं सुप्रभाख्यस्य पञ्चाशद्धनुषां समम्।
आयुरखण्डितं सप्तत्रिंशल्लक्षाब्दमानकम् ॥२०४॥
सुदर्शनस्य देहः पञ्चचत्वारिंशदुन्नतः।
चापानि जीवितं सप्तदशलक्षाब्दगोचरम् ॥२०५॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

उन्नतिर्नन्दिनश्चैकोनत्रिंशद्धनुण्डसम्मिता ।
सप्तषष्टिसहस्राण्यायुर्वर्षाणामखण्डितम् ॥२०६॥
उच्छ्रायोर्नन्दिमित्रस्य द्वाविंशतिधनुः समः।
त्रिंशत्सहस्रवर्षाणि ह्यायुर्बलपदेशिनः ॥२०७॥
रामस्याङ्गसमुत्सेधः चापषोडशसंख्यकः।
सप्ताग्रदशसंख्यान्यऽब्दसहस्राणि जीवितम् ॥२०८॥
अङ्गोन्नतिश्च पद्मस्य दशदण्डप्रमा मता।
आयुर्वर्षाणि च द्वादशशतप्रमितान्यपि ॥२०९॥

अर्थ—विजय, अचल, धर्म, सुप्रभ, सुदर्शन, नन्दी, नन्दिमित्र, राम और पद्म ये बलदेव हैं। विजय बलदेव का उत्सेध ८० धनुष और आयु ८७ लाख वर्ष की थी। अचल का उत्सेध ७० धनुष और आयु ७७ लाख वर्ष, धर्म का उत्सेध ६० धनुष और आयु ६७ लाख वर्ष, सुप्रभ का उत्सेध ५० धनुष और आयु ३७ लाख वर्ष, सुदर्शन का उत्सेध ४५ धनुष और आयु १० लाख वर्ष, नन्दी बलदेव का उत्सेध २९ धनुष और आयु ६७ हजार वर्ष, नन्दिमित्र का उत्सेध २२ धनुष और आयु ३७ हजार वर्षा, राम बलदेव का उत्सेध, १६ धनुष और आयु १७ हजार वर्ष तथा नवमें बलभद्र पद्म का उत्सेध १० धनुष और आयु १२०० वर्ष प्रमाण थी ॥२००-२०९॥

अब बलभद्रों के रत्न, अन्य सम्पदा, शरीर का वर्ण और प्राप्त होने वाली गति का दिग्दर्शन कराते हैं—

गदा सद् रत्नमाला च मुशलं हलमूर्जितम्।
सुररक्षाणि चत्वारीमानि रत्नानि सन्ति वै ॥२१०॥
सर्वेषां बलभद्राणां दिव्यरूपाः स्त्रियोऽखिलाः।
सहस्राष्टप्रमा अन्याः सम्पदः स्युश्च्युतोपमाः ॥२११॥
कुन्देन्दुवर्णा दिव्याङ्गा धर्मशीलाः शुभाशयाः।
बलेशाः सकला ज्ञेया निसर्गेणोर्ध्वगामिनः ॥२१२॥
हलिनोऽष्टौ विजयाद्यास्तपोध्यानायुधैर्बलात्।
निहत्य कृत्स्नकर्माणि ययुर्मुक्तिं सुखावनिम् ॥२१३॥
पद्मोऽन्तिमो गतो ब्रह्मस्वर्गसोऽप्यमरस्ततः।
कृष्णं तीर्थेशमभ्येत्य मोक्ष यास्यति दीक्षया ॥२१४॥

अर्थ—सर्व बलभद्रों के, देवों द्वारा रक्षित गदा, रत्नमाला, मूसल और उत्कृष्ट हल ये चार रत्न, दिव्य रूप को धारण करने वालीं आठ-आठ हजार रानियाँ तथा उपमा रहित और भी अन्य बहुत सम्पत्तियाँ होती हैं। सभी बलदेवों के दिव्य शरीर की आभा कुन्द पुष्प एवं चंद्रमा सदृश होती है। धर्म स्वभावी, शुभ चित्त वाले सभी बलदेवों की स्वभावतः ऊर्ध्वगति ही होती है। विजयादि आठ बलभद्र तप एवं ध्यानरूपी शस्त्रों के बल से द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्मों का नाश कर सुख की भूमि

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

स्वरूप मोक्ष पद को प्राप्त हुए, अन्तिम बलभद्र पद्म ब्रह्मस्वर्ग में देव हुए हैं। कृष्ण नारायण का जीव जब तीर्थंकर होगा तब ये भी दीक्षा धारण करके मोक्ष प्राप्त करेंगे ॥२१०-२१४॥

अब बलभद्रों का वर्तना काल दर्शाते हैं—

श्रेयसो वर्तमानेऽत्र कालेऽभूद्विजयो बलः।
वासुपूज्य जिनेशस्या चलः काले प्रवर्तिनि ॥२१५॥
बभूव वर्तमानस्य विमलस्य जिनेशिनः।
काले धर्मोऽप्यनन्तस्य वर्तमाने च सुप्रभः ॥२१६॥
धर्मस्य वर्तमानेऽभूत्काले सुदर्शनो बलः।
जिनान्तरेऽरनाथस्य जातो नन्दी नरेश्वरः ॥२१७॥
नन्दिमित्रो बभूब श्रीमल्लिनाथजिनान्तरे।
मुनिसुव्रतनाथस्य जातो रामो जिनान्तरे ॥२१८॥
नेमिनाथस्य कालेऽभूत्पद्मः प्रवर्तमानकः।
इत्यत्रोत्पत्तिकालाः स्युर्बलभद्रादिभूभृताम् ॥२१९॥

अर्थ—विजय नामक प्रथम बलदेव श्रेयांसनाथ स्वामी के विद्यमान काल में, अचल बलभद्र वासुपूज्य स्वामी के काल में, धर्म बलभद्र विमलनाथ स्वामी के काल में, सुप्रभ अनन्तनाथ स्वामी के काल में और सुदर्शन बलदेव धर्मनाथ स्वामी के विद्यमान काल में उत्पन्न हुए थे। नन्दी बलदेव अरनाथ स्वामी के अन्तरकाल में, नन्दिमित्र मल्लिनाथ स्वामी के अन्तर काल में और राम मुनिसुव्रतनाथ के अन्तर काल में उत्पन्न हुए थे तथा अन्तिम बलभद्र-पद्म, नेमिनाथ स्वामी के विद्यमान काल में उत्पन्न हुए थे। इस प्रकार यहाँ बलभद्र आदि राजाओं के उत्पत्ति काल हैं ॥२१५-२१९॥

अब नौ नारायणों के नाम, स्वभाव, शरीर का वर्ण और उत्सेध का कथन करते हैं—

त्रिपृष्टाख्यो द्विपृष्टोऽथ स्वयम्भूः पुरुषोत्तमः।
ततः पुरुषसिंहश्च पुण्डरीकस्त्रिखण्डभाक् ॥२२०॥
दत्ताख्यो लक्ष्मणः कृष्णो वासुदेवा इमे नव।
रौद्राशयाः प्रकृत्या स्युस्त्रिखण्डभरताधिपाः ॥२२१॥
व्रतशीलतपोहीनाः पञ्चाक्षसुखलोलुपाः।
उल्लसत्कृष्णवर्णाङ्गा-बलाङ्गोच्चसमोन्नताः ॥२२२॥

अर्थ—१ त्रिपृष्ठ, २ द्विपृष्ठ, ३ स्वयम्भू, ४ पुरुषोत्तम, ५ पुरुषसिंह, ६ (पुरुष) पुण्डरीक, ७ (पुरुष) दत्त, ८ लक्ष्मण और ९ कृष्ण ये नव वासुदेव स्वभावतः रौद्र परिणामी, व्रत, शील एवं तप से हीन, पंचेन्द्रिय सुखों के लोलुपी तथा भरतक्षेत्र में आर्यखण्ड आदि तीन खण्डों के अधिपति हुए हैं। इन सभी के शरीरों का वर्ण कृष्ण एवं उत्सेध बलदेवों के सदृश अर्थात् क्रमशः ८०, ७०, ६०, ५०,

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

४५, २९, २२, १६ और १० धनुष प्रमाण था ॥२२०-२२२॥

अब सर्व नारायणों की आयु का कथन करते हैं—

लक्षाश्चतुरशीतिश्च वर्षाणामायुरञ्जसा।
त्रिपृष्टस्य द्विपृष्टस्यायुर्लक्षाणि द्विसप्ततिः ॥२२३॥
स्वयंभूभूभृतोऽब्दानां षष्टिलक्षाणि जीवितम्।
स्यात्पुरुषोत्तमस्यायुः त्रिंशलक्षाब्दसम्मितम् ॥२२४॥
आयुः पुरुषसिंहस्य दशलक्षाब्दगोचरम्।
पञ्चषष्टिसहस्राब्दाः पुण्डरीकस्य जीवितम् ॥२२५॥
दत्तस्यायुः परं द्वात्रिंशत्सहस्राब्दमानकम्।
वर्षाणां लक्ष्मणस्यायुः सहस्रद्वादशप्रमम् ॥२२६॥
कृष्णस्य वासुदेवस्य सहस्रवर्षजीवितम्।
इत्यत्र वासुदेवानां सन्त्यायूंषि क्रमात् तथा ॥२२७॥

अर्थ—प्रथम नारायण त्रिपृष्ट की आयु ८४ लाख वर्ष की, द्विपृष्ट की ७२ लाख वर्ष की, स्वयम्भू की ६० लाख वर्ष की, पुरुषोत्तम की ३० लाख वर्ष की, पुरुषसिंह की १० लाख वर्षा की, पुण्डरीक की ६५००० वर्षा की, दत्त नारायण की ३२००० वर्ष की, लक्ष्मण की १२००० वर्ष की और अन्तिम वासुदेव कृष्ण की आयु १००० वर्षा प्रमाण थी। इस प्रकार वासुदेवों की यह आयु क्रम से होती है ॥२२३-२२७॥

अब नारायणों के सात रत्नों का एवं अन्य विभूति का वर्णन करते हैं—

धनुः शङ्खो गदा चक्रं दण्डोऽसिः शक्तिरेव च।
इमानि सप्तरत्नानि रक्षितानि सुरव्रजैः ॥२२८॥
दिव्यरूपाः सुदेव्यः स्युः सहस्रषोडशप्रमाः।
नृपा मुकुटबद्धाश्च सहस्र द्व्यष्टसम्मिताः ॥२२९॥
अमीषां वासुदेवानां सर्वेषां भूतयोऽपराः।
गजादिगोचरा बह्वयो विज्ञेया आगमे बुधैः ॥२३०॥

अर्थ—प्रत्येक नारायण के पास देव समूह के द्वारा रक्षित धनुष, शंख, गदा, चक्र, दण्ड, असि, और शक्ति ये सात रत्न एवं दिव्य रूप को धारण करने वाली सोलह हजार श्रेष्ठ रानियाँ होती हैं तथा मुकुटबद्ध सोलह हजार राजा इनकी सेवा करते हैं। इन सभी वासुदेवों के अन्य बहुत जनसमुदाय एवं हाथी घोड़े आदि होते हैं, जो विद्वानों के द्वारा आगम से जानने योग्य हैं ॥२२७-२३०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब नारायणों की गति विशेष का वर्णन करते हैं–

त्रिपृष्टोऽपि महापापैः सप्तमीभूमिमाश्रितः।
द्विपृष्टाख्यः स्वयंभूश्च पुरुषोत्तमसंज्ञकः ॥२३१॥
ततः पुरुषसिंहाख्यः पुण्डरीक इमेऽशुभात्।
पंचार्धचक्रिणो जग्मुः षष्ठीपृथ्वीं व्रतातिगाः ॥२३२॥
दत्तोऽगात् पंचमीं चान्ते चतुर्थीं लक्ष्मणः क्षितिम्।
तृतीयां पृथिवीं कृष्णः स्वकर्मवशगो विधिः ॥२३३॥

अर्थ–महत्पाप के भार से प्रथम नारायण त्रिषृष्टि सप्तम नरक, द्विपृष्ट, स्वयम्भू, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह और पुण्डरीक ये पाँच नारायण अर्थात् अर्धचक्रवर्ती अशुभ योग एवं व्रतरहित होने से छठे नरक, दत्तनारायण पाँचवें नरक, लक्ष्मण चौथे नरक और कृष्ण नारायण अपने स्वकर्म के वशीभूत होते हुए तीसरे नरक गये हैं ॥२३१-२३३॥

अब प्रतिवासुदेवों के नाम, उत्सेध, वर्ण एवं स्वभाव आदि का कथन करते हैं–

अश्वग्रीवस्त्रिखण्डेशस्तारको मेरकाह्वयः।
निशुम्भः कैटभारिस्तु मधुसूदननामकः ॥२३४॥
बलिहन्ता ततो रावणो जरासिन्धसंज्ञकः।
वासुदेवद्विषोऽमी प्रतिवासुदेवभूभृतः ॥२३५॥
बलेशाङ्गसमोत्तुङ्गः श्यामकायाः सुरूपिणः।
रौद्रध्यानाः प्रकृत्या स्युः समदा ऊद्धताशयाः ॥२३६॥
अश्वग्रीवादयोऽत्राष्टौ तेषां मध्ये वियच्चराः।
सन्त्यर्धं चक्रिणोऽन्त्यः स्याज्जरासंधो महीचरः ॥२३७॥

अर्थ–अश्वग्रीव, तारक, मेरक, निशुम्भ, कैटभ, मधुसूदन, बलिहन्ता, रावण और जरासिन्ध नाम के ये नौ अर्धचक्री प्रतिवासुदेव हैं। ये प्रतिवासुदेव राजा वासुदेवों के शत्रु होते हैं। इनके शरीर की कान्ति श्याम वर्ण एवं उत्सेध बलदेवों के उत्सेध सदृश होता है। ये स्वभाव से रौद्र परिणामी, गर्व युक्त और उद्धत प्रकृति के होते हैं। इनमें से अश्वग्रीव आदि आठ प्रतिनारायण विद्याधर हैं और अन्तिम अर्धचक्री जरासिन्ध भूमिगोचरी हैं ॥२३४-२३७॥

अब प्रतिवासुदेवों की आयु और गति आदि का कथन करते हैं–

पञ्चानां वासुदेवानामादिमानां सुजीवितैः।
सममायूंषि पंचानां तच्छत्रूणां भवन्ति च ॥२३८॥
षष्टस्यैवात्र पंचाशत्सहस्रवर्षजीवितम्।
सप्तमे वत्सराणां द्वात्रिंशत्सहस्रजीवितम् ॥२३९॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

चतुर्दशसहस्राब्दान्यायुश्च रावणस्य वै।
जरासिंधनृपस्यायुः सहस्रवत्सरप्रमम् ॥२४०॥
त्रिखण्डस्वामिनोऽप्येते बह्वारम्भधनार्जनैः।
अतीव विषयासक्त्योपार्ज्य पापं महत्परम् ॥२४१॥
धर्मादृतेनवैवागुस्ताः पृथ्वीर्दुःखपूरिताः।
रौद्रध्यानेन मृत्वा या वासुदेवा गता नव ॥२४२॥
वासुदेवप्रक्षिप्तेन स्वचक्रेणाखिला अमी।
अवश्यं मरणं प्राप्य श्वभ्रं यान्ति न चान्यथा ॥२४३॥
शलाकापुरुषा एते त्रिषष्टिसंख्यकाः परे।
तुर्यकालेऽत्र जायन्ते नृपदेवखगार्चिताः ॥२४४॥

अर्थ—अश्वग्रीव आदि पाँच प्रतिवासुदेवों की आयु त्रिपृष्ठि आदि पाँच वासुदेवों के सदृश ही है। अर्थात् क्रमशः ८४ लाख वर्ष, ७२ लाख वर्ष, ६० लाख वर्ष, ३० लाख वर्ष और १० लाख वर्ष प्रमाण है। छठवें मधुसूदन प्रतिवासुदेव की ५० हजार वर्ष, बलि की ३२००० वर्ष, रावण की १४००० वर्ष और नवमें प्रतिवासुदेव जरासिन्ध की आयु १००० वर्ष प्रमाण थी। ये सब तीन खण्ड के स्वामी बहु आरम्भ, परिग्रह एवं धनार्जन के द्वारा तथा अत्यन्त विषयासक्ति से अति महान् पाप का उपार्जन करके धर्म के बिना, रौद्र ध्यान से मरण कर दुःख पूरित जिस-जिस नरक पृथ्वी में नव वासुदेव जाते हैं, उसी पृथ्वी को ये प्राप्त होते हैं। ये सभी प्रतिवासुदेव अपना चक्र वासुदेव पर छोड़ते हैं पश्चात् वासुदेव के द्वारा छोड़े हुए उसी चक्र से ये अवश्यमेव मृत्यु को प्राप्त होकर नरक जाते हैं। अन्य और किसी गति को प्राप्त नहीं होते। यहाँ चतुर्थकाल में नरेन्द्रों, देवों एवं विद्याधरों से पूजित ये त्रेसठ शलाका के पुरुष उत्पन्न होते हैं ॥२३८-२४४॥

अब रुद्रों के नाम, उनका उत्सेध एवं आयु का कथन करते हैं—

भीमो बलिर्जितारिश्च विश्वानलाह्वयस्ततः।
सुप्रतिष्ठोऽचलाभिख्यः पुण्डरीकोऽजितन्धरः ॥२४५॥
जितनाभिस्ततः पीठः सात्वकीतनयोऽप्यमी।
व्रतभ्रष्टात्मजारुद्रा भवन्त्येकादशाशुभाः ॥२४६॥
भीमस्याङ्गसमुत्सेधो धनुः पञ्चशतानि च।
त्र्यशीतिलक्षपूर्वाण्यायुर्दीक्षापतितात्मनः ॥२४७॥
उच्छ्रितिश्च बलेश्चापसार्धचतुःशतप्रमा।
एकसप्ततिलक्षाणि पूर्वाणामायुरञ्जसा ॥२४८॥
जितारेर्वपुरुत्सेधो धनुःशतप्रमाणकः।
आयुर्द्विलक्षपूर्वाणि चारित्रचलितात्मनः ॥२४९॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

विश्वानलस्य देहोच्चो धनुर्नवतिसम्मितः।
आयुर्लक्षैकपूर्वाणि भ्रष्टरत्नत्रयात्मनः ॥२५०॥
सुप्रतिष्ठस्य कायोच्चश्चापाशीतिप्रमो मतः।
लक्षाश्चतुरशीतिश्च वर्षाणामायुरुत्तमम् ॥२५१॥
देहोत्सेधोऽचलस्यास्ति दण्डसप्ततिमानकः।
आयुश्च षष्टिलक्षाणि वत्सराणां चलात्मनः ॥२५२॥
उन्नतिः पुण्डरीकस्य षष्टिचापप्रमा स्मृता।
पञ्चाशल्लक्षवर्षायुस्त्यक्तदीक्षात्मजात्मनः ॥२५३॥
तुङ्गोऽजितन्धरे कायः पंचाशद्दण्डमानकः।
आयुर्वर्षाणि चत्वारिंशल्लक्षप्रमितानि च ॥२५४॥
उच्छ्रितिर्जितनाभेश्चाष्टाविंशतिधनुःप्रमा ।
आयुर्विंशतिलक्षाणि वर्षाणां चंचलात्मनः ॥२५५॥
चतुर्विंशतिचापानि पीठस्याङ्गसमुन्नतिः।
आयुश्च लक्षवर्षाणि व्रतशीलच्युतस्य वै ॥२५६॥
सात्वकीतनयस्याङ्गोत्सेधः सप्तकरप्रमः।
जीवितं त्यक्तवृत्तस्य वर्षाण्येकोनसप्तति ॥२५७॥

अर्थ—१ भीम, २ बलि, ३ जितारि, ४ विश्वानल, ५ सुप्रतिष्ठ, ६ अचल, ७ पुण्डरीक, ८ अजितन्धर, ९ जितनाभि, १० पीठ और ११ सात्विकीतनय ये ११ रुद्र अशुभ चित्तवृत्ति के धारी और चारित्र से भ्रष्ट होने वालों के पुत्र हैं। प्रथम रुद्र भीम का उत्सेध ५०० धनुष और आयु ८३ लाख पूर्व की थी, यह दीक्षा से च्युत होने वाले मुनि आर्यिका की सन्तान है। बलिरुद्र का उत्सेध ४५० धनुष और आयु ७१ लाख पूर्व की थी। जितारि का उत्सेध १०० धनुष और आयु दो लाख पूर्व की थी, यह भी चारित्र भ्रष्ट होने वालों का पुत्र है। विश्वानल के देह की ऊँचाई ९० धनुष और आयु एक लाख पूर्व की थी। यह भी रत्नत्रय से भ्रष्ट होने वालों का पुत्र है। सुप्रतिष्ठ का उत्सेध ८० धनुष और आयु ८४ लाख वर्ष की थी। अचल रुद्र का उत्सेध ७० धनुष और आयु ६० लाख वर्ष की थी, इसके माता-पिता भी चारित्ररूपी रत्न को नष्ट करने वाले थे। दीक्षा लेकर जो भ्रष्ट हो चुके थे ऐसे मुनि आर्यिका से उत्पन्न होने वाले पुण्डरीक रुद्र का उत्सेध ६० धनुष और आयु ५० लाख वर्ष की थी। अजितन्धर रुद्र का उत्सेध ५० धनुष और आयु ४० लाख वर्ष की थी। चारित्र से चलायमान हो चुकी थी आत्मा जिनकी, ऐसे मुनि आर्यिका से उत्पन्न जितनाभि रुद्र का उत्सेध २८ धनुष और आयु २० लाख वर्ष प्रमाण थी। व्रत और शील से च्युत मुनि, आर्यिका से उत्पन्न होने वाले पीठ रुद्र का उत्सेध २४ धनुष और आयु एक लाख वर्ष प्रमाण थी। अपने जीवनकाल में ही चारित्र को छोड़ देने वाले मुनि आर्यिका से उत्पन्न हुए सात्विकीतनय रुद्र का उत्सेध सात हाथ प्रमाण और आयु ६९ वर्ष प्रमाण थी ॥२४५-

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

२५७॥

अब रुद्रों का वर्तनाकाल कहते हैं—

जातौ नाभेयकाले द्वावेतौभीमवली भुवि।
पुष्पदन्तस्य कालेऽभूज्जितारिः श्रीजिनेशिनः ॥२५८॥
रुद्रो विश्वानलो जातः काले श्रीशीतलस्य च।
श्रेयसो वर्तमाने काले सुप्रतिष्ठसंज्ञकः ॥२५९॥
वासुपूज्यस्य काले प्रवर्तमानेऽचलोऽभवत्।
काले विमलनाथस्य पुण्डरीको बभूव च ॥२६०॥
काले विहरमाणस्यानन्तस्यात्राजितन्धरः।
धर्मनाथस्य कालेऽभूज्जितनाभिसमाह्वयः ॥२६१॥
शान्तेः प्रवर्तमानस्य काले पीठाभिधोऽभवत्।
सात्वकीतनयो जातः काले वीरस्य सम्प्रति ॥२६२॥

अर्थ—पुष्पदन्त जिनेन्द्र के काल में जितारि रुद्र, शीतलनाथ के काल में विश्वानल, श्रेयांसनाथ के काल में सुप्रतिष्ठ नाम के रुद्र हुए हैं। वासुपूज्य भगवान् के काल में अचलरुद्र, विमलनाथ के काल में पुण्डरीक, अनन्तनाथ के काल में अजितन्धर, धर्मनाथ के काल में जितनाभि, शान्तिनाथ के काल में पीठ रुद्र और वीर प्रभु के काल में सात्विकीतनय नामक रुद्र उत्पन्न हुए हैं ॥२५८-२६२॥

अब उन रुद्रों द्वारा प्राप्त नरकों को एवं नरकगति की प्राप्ति के मूल कारणों का वर्णन करते हैं—

रुद्रा रौद्राशया एते दीक्षापतितसूनवः।
विद्यानुवादपाठेन प्राप्तविद्याश्चलात्मकाः ॥२६३॥
विषयासक्तदुर्बुद्ध्या त्यक्तदृग्ज्ञानसंयमाः।
दीक्षाभङ्गमहापापैर्ययुः श्वभ्रं यथोचितम् ॥२६४॥
द्वौ भीमबलिसंज्ञौ च नरकं सप्तमं गतौ।
दीक्षाभङ्गाज्जितारिश्च रुद्रो विश्वानलाख्यकः ॥२६५॥
सुप्रतिष्ठोऽचलः पुण्डरीको रुद्रा इमेऽखिलाः।
पञ्च श्वभ्रं ययुः षष्ठं रत्नत्रयतपोत्ययात् ॥२६६॥
रुद्रोऽजितन्धराभिख्यो जगाम पञ्चमीं क्षितिम्।
गतौश्वभ्रं चतुर्थं जितनाभिपीठसंज्ञकौ ॥२६७॥
सात्विकीतनयः प्राप्तस्तृतीयां पृथिवीमहो।
एते तपस्विनो दृष्टिज्ञानसंयमभूषिताः ॥२६८॥
दीक्षाभङ्गजपापौद्यैर्यद्यगुश्चेदृशीं गतिम्।
ततो मन्येऽहमत्रेति दीक्षाभङ्गसमं महत् ॥२६९॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

न भूतं भुवने पापं नास्ति नाग्रे भविष्यति।
अपमानं च निन्द्यत्वं निर्लज्जत्वं जगत्त्रये ॥२७०॥
मत्वेति धीधनैः सारं वृत्तरत्नं सुदुर्लभम्।
स्वप्नेऽपि नात्र नेतव्यं मलपार्श्वेऽतिनिर्मलम् ॥२७१॥
अमीषां सर्वरुद्राणां भवैः कतिपयैः स्फुटम्।
लब्धसम्यक्त्वमाहात्म्यान्निर्वाणं भविता व्रतैः ॥२७२॥

अर्थ—रौद्र परिणामी ये सभी रुद्र जैनेन्द्री दीक्षा को नष्ट कर देने वाले मुनि आर्यिकाओं के पुत्र हैं। ये सभी दिगम्बरी दीक्षा धारण करके विद्यानुवाद नामक दशवें पूर्व को पढ़ते हैं, उससे इन्हें विद्याओं की प्राप्ति होती है, उससे इनकी आत्मा चलायमान हो जाती है और विषयों में आसक्त दुर्बुद्धि से अपने ग्रहण किये हुए दर्शन, ज्ञान और संयम को छोड़कर दीक्षाभंग के महान् पाप से यथोचित नरकों को प्राप्त करते हैं। दीक्षा भंग के पाप से भीम और बलि ये दो रुद्र सप्तम नरक को प्राप्त हुए हैं। जितारि, विश्वानल, सुप्रतिष्ठ, अचल और पुण्डरीक ये पाँच रुद्र रत्नत्रय एवं तप के परित्याग से छठवें नरक को प्राप्त हुए। अजितन्धर नाम का रुद्र पाँचवें नरक, जितनाभि और पीठ ये दो रुद्र चौथे नरक तथा सात्विकीतनय तीसरे नरक को प्राप्त हुए हैं। सम्यग्दर्शन, ज्ञान एवं संयम से विभूषित ये सभी तपस्वी (रुद्र) दीक्षाभंग से उत्पन्न होने वाले पाप के समूह से ही इस प्रकार की दुर्गति को प्राप्त होते हैं, इसलिए मैं ऐसा मानता हूँ कि इस पृथ्वी पर तीन लोक में दीक्षा भंग बराबर महान् पाप, अपमान, निन्द्यपना एवं निर्लज्जता न कभी (अन्य क्रियाओं से) भूतकाल में थी, और न कभी भविष्यकाल में होगी। त्रैलोक्य में बुद्धिमानों के द्वारा सारभूत अति दुर्लभ रत्न चारित्र ही माना गया है अतः अति निर्मल चारित्र के समीप स्वप्न में भी मल नहीं लाना चाहिए अर्थात् ग्रहण किए हुए चारित्र में स्वप्न में भी दोष नहीं लगाना चाहिए। इन सभी रुद्रों को अनेक भवान्तरों के बाद प्राप्त किये हुए सम्यक्त्व के माहात्म्य से चारित्र होगा और चारित्र के द्वारा इन्हें निर्वाण की प्राप्ति होगी ॥२६३-२७२॥

अब नौ नारदों के नाम एवं उनका अन्य वर्णन संक्षिप्त में करते हैं—

भीमाह्वयो महाभीमो रुद्रसंज्ञस्तृतीयकः।
महारुद्राभिधः कालो महाकालश्चतुर्मुखः ॥२७३॥
ततो नरमुखो नाम्नोन्मुखोऽत्र नारदा इमे।
वासुदेवसमानायुः कायोच्चाः कलहप्रियाः ॥२७४॥
हिंसानन्दपरा नित्यं कदाचिद्धर्मवत्सलाः।
जाता नवैव काले बलभद्रादित्रिभूभुजाम् ॥२७५॥
ते सर्वे नारदाः हिंसानन्दोत्थपापपाकतः।
जग्मुः श्वभ्रं यथायोग्यमन्येषां कलियोजनात् ॥२७६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अर्थ—१ भीम, २ महाभीम, ३ रुद्र, ४ महारुद्र, ५ काल, ६ महाकाल, ७ चतुर्मुख, ८ नरमुख और ९ उन्मुख (अधोमुख) नाम के ये ९ नारद हैं। इनकी आयु एवं शरीर का उत्सेध वासुदेव के सदृश ही होता है, अर्थात् भीम आदि नारदों की आयु यथाक्रम से ८४ लाख वर्ष, ७२ लाख वर्ष, ६० लाख वर्ष, ३० लाख वर्ष, १० लाख वर्ष, ६५ हजार वर्ष, ३२ हजार वर्ष, १२००० वर्ष और एक हजार वर्ष की हुई है। इसी प्रकार प्रथमादिक के क्रम से इनका उत्सेध क्रमशः ८०, ७०, ६०, ५०, ४५, २९, २२, १६ और १० धनुष प्रमाण था। ये सभी नारद कलह प्रिय होते हैं और नित्य ही हिंसानन्दी रौद्र ध्यान में संलग्न रहते हैं। ये कदाचिद् धर्मवत्सल भी होते हैं। ये सभी बलभद्र एवं त्रिखण्डी नारायण आदि के समय में ही उत्पन्न होते हैं। वे सभी नारद हिंसानन्दी रौद्रध्यान से उत्पन्न हुए पाप के फल से तथा अन्य जीवों को युद्ध में संयुक्त कराते रहने से यथा योग्य (परिणामों के अनुसार) नरकों में ही जाते हैं ॥२७३-२७६॥

अब पञ्चमकाल का संक्षिप्त वर्णन करते हैं—

ततोऽत्र दुषमाकालः कृत्स्नदुःख निबन्धनः।
एकविंशतिसंख्यानसहस्त्रवर्षसम्मितः ॥२७७॥
अस्यादौ मानवाः सन्ति सप्तहस्तोच्चविग्रहाः।
रूक्षकायाश्च विंशत्यग्रवत्सरशतायुषः ॥२७८॥
दिनमध्ये सकृद्वारमाहरन्त्यशनं जनाः।
बलसत्त्वसुबुद्ध्याद्यैर्हीनाः केचिच्च संयुताः ॥२७९॥

अर्थ-आर्य क्षेत्र में चतुर्थकाल की समाप्ति के बाद सम्पूर्ण दुःखों का निबन्धन करने (बाँधने) वाला, २१००० वर्ष प्रमाण से युक्त दुखमा नाम का पञ्चम काल प्रारम्भ होता है। इसके प्रारम्भ में मनुष्यों के शरीर की ऊँचाई सात हाथ प्रमाण, कान्ति रूक्ष और आयु १२० वर्ष की होती है। उस समय मनुष्य दिन में अनेक बार भोजन करने वाले होते हैं। उस समय कोई-कोई मनुष्य बल, सत्व और उत्तम बुद्धि के धारक होते हैं किन्तु अधिकांशतः इनसे रहित ही होते हैं ॥२७७-२७९॥

अब शक राजा और प्रथम कल्की की उत्पत्ति का काल तथा कल्की का नाम एवं आयु आदि का कथन करते हैं—

त्यक्त्वा सम्वत्सरान् पञ्चाधिकषट्शतसम्मितात्।
पञ्चमासयुतान् मुक्तिं वर्धमाने गते सति ॥२८०॥
शकराजोऽभवत् ख्यातस्ततोऽब्देषु गतेष्वपि।
चतुर्नवतिसंयुक्तत्रिशतप्रमितेषु च ॥२८१॥
सप्तमासाधिकेष्वासीत् कल्कीचतुर्मुखाह्वयः।
वर्षसप्ततिजीवी सद्धर्मद्वेषीह चादिमः ॥२८२॥

अर्थ—श्री वर्धमान स्वामी के मोक्ष जाने के ६०५ वर्ष ५ मास बाद शक राजा (विक्रमादित्य) हुआ था और शक राजा के ३९४ वर्ष ७ माह अर्थात् वीर भगवान के मोक्ष जाने के ६०५ वर्ष ५

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

मास+३९४ वर्ष ७ माह=१००० वर्ष बाद चतुर्मुख नाम का प्रथम कल्की उत्पन्न हुआ था। इसकी आयु ७० वर्ष प्रमाण थी। यह राजा जैनधर्म का अत्यन्त विद्वेषी था ॥२८०-२८२॥

अब प्रथम कल्की चतुर्मुख के और उसके पुत्र जयध्वज के कार्य कहते हैं—

सोऽन्यदाजितभूमि प्रधानाख्यमित्थमादिशत्।
निर्ग्रन्थामुनयोऽस्माकमवश्याः सन्ति भूतले ॥२८३॥
एतेषां पाणिपात्रे सद्ग्रासं प्रदत्तमादिमम्।
त्वं गृहाण स्वशुल्कायेत्यादेशं श्वभ्रकारणम् ॥२८४॥
श्रुत्वा स मूढधीर्मन्त्री सर्वं तथाकरोत्तदा।
तदुपद्रवतोऽत्रासन् व्याकुला मुनयो नृपात् ॥२८५॥
उपसर्गं विदित्वा तं मुनीनामसुराधिपः।
चतुर्मुखं जघानाशु जिनशासनरक्षकः ॥२८६॥
ततो मृत्वा स पापात्मा कल्की पापविपाकतः।
विश्वदुःखाकरीभूतं प्रथमं नरकं गतः ॥२८७॥
तदाशु तद्भयात्तस्य सुतो जध्वं जयाह्वयः।
जिनशासनमाहात्म्यं प्रत्यक्षं वीक्ष्य तत्कृतम् ॥२८८॥
सम्यक्त्वरत्नमादाय काललब्ध्यासुरेशिनम्।
स्वसैन्यस्वजनाद्यैश्च जगाम शरणं सह ॥२८९॥
अहो! पुण्याघकर्तृणां शुभाशुभं फलं महत्।
इहैव दृश्यते साक्षात्का वार्ता परजन्मनि ॥२९०॥

अर्थ—उस चतुर्मुख कल्की ने अपने योग्य भूमि को जीतकर प्रधानमन्त्री को इस प्रकार आदेश दिया कि इस भूतल पर निर्ग्रन्थ मुनि हमारे वश में नहीं हैं अतः उनके पाणिपात्र में दिया हुआ प्रथम ग्रास तुम ग्रहण करो। नरकगति के कारणभूत आदेश को सुनकर उस मूढ़मति मन्त्री ने सर्व कार्य उसी आदेशानुसार किया, उस समय उस उपद्रव से उस क्षेत्र में रहने वाले समस्त मुनिजन राजा से बहुत व्याकुल हो गये (इस राजा के द्वारा जैनधर्म नाश हो रहा है इसलिए मुनिजन व्याकुल हुए)। मुनियों के उपसर्ग को जानकर जिनशासन के रक्षक असुरेन्द्र ने शीघ्र ही उस चतुर्मुख राजा को मार डाला। वह पापात्मा कल्की मरकर पापोदय से सम्पूर्ण दुःखों के आकर स्वरूप प्रथम नरक गया। उसी समय कल्की का पुत्र जयध्वज और स्त्री चेलका असुरेन्द्र के भय से और जैनधर्म कृत जिनशासन के माहात्म्य को प्रत्यक्ष देखकर तथा काललब्धि के प्रभाव से सम्यक्त्वरूपी महारत्न को ग्रहण करता हुआ शीघ्र ही अपनी सेना एवं स्वजन परिजनों के साथ असुरेन्द्र की शरण में गया। अहो! पुण्य करने वालों के महान् शुभ फल और पाप करने वालों के महान् अशुभ फल साक्षात् यहाँ ही दिखाई दे जाते हैं अगले जन्म की तो क्या बात! ॥२८३-२९०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब अन्तिम कल्की का स्वरूप और उसके कार्यों आदि का दिग्दर्शन कराते हैं—

इति मुक्तिं गते वीरे प्रतिवर्षसहस्त्रकम्।
एकैको जायते कल्की जिनधर्मविराधकः ॥२९१॥
तेषां विंशति संख्येषु गतेष्वत्रान्तिमः खलः।
जलमन्थननामोन्मार्गस्थः कल्की भविष्यति ॥२९२॥
इन्द्रराजमुनेः शिष्यो यतिर्वीराङ्गदाभिधः।
अन्तिमश्चार्यिका सर्वश्रीः श्रावकोऽग्निलाख्यकः ॥२९३॥
श्राविका च प्रिया तस्य पञ्चसेनाभिधा तदा।
कालदोषेण चत्वारोऽमीस्थास्यन्ति सुधर्मिणः ॥२९४॥
स कल्की पापधीः पापात् पूर्ववत् तस्य सन्मुनेः।
सद्ग्रासहरणाद्यैर्महोपसर्गं करिष्यति ॥२९५॥
चत्वारस्ते तदा तस्मिन्नुपसर्गे शिवाप्तये।
ग्रहीष्यन्ति सुसंन्यासं त्यक्त्वाहारं चतुर्विधम् ॥२९६॥
ततो दिनत्रयेणैव मुक्त्वा प्राणान् समाधिना।
दुःषमस्यैव कालस्यावसानस्य स्थितेषु च ॥२९७॥
सार्धष्टमाससंयुक्त-त्रिवर्षोद्धरितेष्वपि ।
पूर्वाह्णे कार्तिके मास्यमावास्यायां शुभोदयात् ॥२९८॥
अन्ते सौधर्मकल्पं ते चत्वारः सुखसागरम्।
गमिष्यन्ति महाशर्मभोक्तारो धर्मतत्पराः ॥२९९॥
तन्मुनेः सागरैकं च भवितायुरखण्डितम्।
तत्र शेषत्रयाणां च पल्यमेकं हि साधिकम् ॥३००॥
ततः पञ्चमकालस्य दिनस्य चरमस्य च।
पूर्वाह्णे द्विविधो धर्मो विनश्यति सुखाकरः ॥३०१॥
राजा मध्याह्नकाले चापराह्णे वह्निरञ्जसा।
ततोऽतिदुःषमाकालः षष्ठो दुःखैकसागरः ॥३०२॥

अर्थ—इस प्रकार महावीर स्वामी के मोक्ष चले जाने पर प्रत्येक एक-एक हजार वर्ष बाद जिनधर्म का विरोधी एक-एक कल्की उत्पन्न होता है। बीस कल्की उत्पन्न हो चुकने के बाद उन्मार्गगामी एवं दुष्ट स्वभावी जलमन्थन नाम का अन्तिम कल्की होगा। उस समय इन्द्रराज मुनिराज के शिष्य वीरांगद नाम के अन्तिम मुनिराज, सर्वश्री आर्यिका, अग्निल नाम का श्रावक और उसकी प्रिया पंचसेना नाम की श्राविका कालदोष से ये चार ही धर्मात्मा जीव अवस्थित रहेंगे। पाप बुद्धि को धारण करने वाला वह जलमन्थन कल्की पापोदय से पूर्व कल्कियों के सदृश वीरांगद मुनिराज के पाणिपात्र

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

से प्रथम ग्रास का हरण कर घोर उपसर्ग करेगा। तब उस उपसर्ग के प्राप्त होते ही वे चारों धर्मात्मा जीव चारों प्रकार के आहार का त्याग कर सुख प्राप्ति के लिए उत्तम संन्यास ग्रहण कर लेंगे। पंचम (दुःखमा) काल के अन्त में तीन वर्ष साढ़े आठ मास अवशेष रहने पर कार्तिक अमावस्या को प्रातःकाल के शुभ उदय में तीन दिनों में ही वे चारों धर्मात्मा जीव समाधिपूर्वक प्राणों को छोड़कर सुख के सागर स्वरूप सौधर्म कल्प में चले जाएँगे और वहाँ धर्म में तत्पर रहते हुए महा सुखों को भोगेंगे। स्वर्ग में वे मुनिराज खण्ड रहित एक सागर की और शेष तीनों जीव कुछ अधिक एक पल्य की आयु प्राप्त करेंगे। पंचम काल के उसी अन्तिम दिन प्रातःकाल सुख की खान स्वरूप मुनि एवं श्रावक धर्म का नाश होगा, मध्याह्न काल में राजा का और सन्ध्याकाल में अग्नि का नाश हो जायेगा ॥२९१-३०२॥

अब अतिदुखमा काल का दिग्दर्शन कराते हैं—

धर्मर्शर्मातिगः पञ्चमकालस्थितिसंख्यकः।
विश्वानिष्टाकरीभूतः पापिसत्त्वकुलालयः ॥३०३॥
अस्यादौ धूम्रवर्णाङ्गा नरा हस्तद्वयोन्नताः।
शाखामृगोपमानग्ना वर्षविंशतिजीविनः ॥३०४॥
मांसाद्याहरिणोऽनेकवाराशिनो दिनं प्रति।
बिलादिवासिनो दुष्टा आयाता दुर्गतिद्वयात् ॥३०५॥
मात्रादिकामसेवान्धास्तिर्यग्नरकगामिनः ।
भविष्यन्ति दुराचाराः पापिनो दुःखभोगिनः ॥३०६॥
तस्मिन् काले शुभातीते मेघास्तुच्छजलप्रदाः।
स्वादुवृक्षोज्झितापृथ्वी निराश्रया नराः स्त्रियः ॥३०७॥
कालस्यान्ते करैकोच्चदेहा नराः कुरूपिणः।
उत्कृष्टषोडशाब्दायुष्काः शीतोष्णादिपीडिताः ॥३०८॥
प्रान्ते तस्यैव कालस्य कियद्दिनावशेषतः।
स्फुटिष्यति मही सर्वा निःशेषं वारिशोक्ष्यति ॥३०९॥
ते तदात्युष्णसंतप्ता भ्रमिष्यन्ति दिशोऽखिलाः।
मूर्च्छायास्यन्ति दुःखार्ता यमान्तं चाप्यनेकशः ॥३१०॥
विजयार्धगिरेः सिन्धुगङ्गयोः सरितोस्तदा।
युग्मानि बहुजीवानां द्विसप्ततिमितान्यपि ॥३११॥
बिलादिषु खगाधीशा नेष्यति कृपया स्वयम्।

अर्थ—दुखमा नामक पंचम काल की समाप्ति के बाद मात्र एक दुःख के सागर स्वरूप अतिदुखमा नाम के छठे काल का प्रारम्भ होगा। इसकी स्थिति पंचम काल के सदृश २१००० वर्ष की ही होगी। यह काल धर्म और सुख से रहित समस्त अनिष्टों के खान स्वरूप और पापी जीवों के

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

समुदाय से व्याप्त होगा। इस काल के प्रारम्भ में बन्दरों की उपमा को धारण करने वाले मनुष्यों के शरीरों का वर्ण धूम्र के सदृश, ऊँचाई दो हाथ प्रमाण और उत्कृष्ट आयु बीस वर्ष की होगी तथा ये सब नग्न ही रहेंगे। प्रतिदिन अनेकों बार मांस आदि का भोजन करेंगे, बिलों आदि में निवास करेंगे, दुष्ट प्रकृति के होंगे और नरक एवं तिर्यञ्च इन दोनों गतियों से आकर यहाँ उत्पन्न होंगे। अत्यन्त दुराचारी, पापी, दु:ख भोगने वाले, काम वासना से अन्धा माता आदि से भी व्यभिचार करने वाले तथा मरण कर नरक और तिर्यञ्च इन दोनों गतियों में जन्म लेने वाले होंगे। इस काल में मेघ अत्यन्त अशुभ एवं अल्प जल देने वाले होंगे। पृथ्वी स्वाद एवं सारयुक्त वृक्षों से रहित एवं पुरुष-स्त्री निराश्रय रहेंगे। काल के अन्त में मनुष्यों की ऊँचाई एक हाथ और आयु सोलह वर्ष प्रमाण होगी। मनुष्य कुत्सित रूप वाले एवं शीत उष्ण की बाधाओं से पीड़ित होंगे। इस अतिदुखमा काल के अन्त में जब कुछ दिन अवशेष रहेंगे, तब यहाँ की पृथ्वी फटकर सम्पूर्ण जल का शोषण कर लेगी, तब वे सभी जीव अति उष्णता से सन्तप्त होते हुए सम्पूर्ण दिशाओं में परिभ्रमण करेंगे और उनमें से दु:ख के कारण अनेक जीव तो मूर्छित हो जाते हैं और अनेक मरण को प्राप्त हो जाते हैं। उस समय कृपावन्त विद्याधर बहत्तर कुलों में उत्पन्न जीवों के बहत्तर युगलों को विजयार्ध पर्वत की गुफाओं में, गंगा सिन्धु नदियों की वेदियों में और बिलों में ले जाकर वहाँ रख देते हैं ॥३०३-३१२॥

नोट—३१२ श्लोक के दो चरणों का अर्थ ऊपर किया गया है, शेष दो चरणों का आगे लिखा जायेगा।

अब दुर्वृष्टियों के नाम, उनका फल और जघन्य आयु आदि का कथन करते हैं—

.....।
सावर्ताऽनिलदुर्वृष्टि: शैत्याम्बुवृष्टिरञ्जसा ॥३१२॥
अतिक्षाराम्बुवृष्टिश्च विषवृष्टि: सुदु:सहा।
अग्निवृष्टी रजोवृष्टिर्धूमवृष्टिर्भविष्यति ॥३१३॥
सप्तसप्तदिनान्युच्चैर्विश्वाङ्क्षिक्षयकारिणी ।
तद् वृष्टिभिरधोभागे योजनान्तं महीतलम् ॥३१४॥
भस्मसाद् भविता नूनं जीवानामञ्जसा क्षय:।
इत्याहुर-वसर्पिण्या: स्वरूपं सकलं जिना: ॥३१५॥
आदौ द्वितीयकालादीनामुत्कृष्टाश्चये मता:।
आयुरुत्सेधशर्माद्या आर्याणां भोगशालिनाम् ॥३१६॥
अन्ते प्रथमकालादिषु जघन्यादिषु तेऽखिला:।
ज्ञातव्या अवसर्पिण्या: षट् कालानामिति स्थिति: ॥३१७॥

अर्थ—छठे काल के अन्त में सर्वप्रथम सावर्त नाम की वायु चलेगी, पश्चात् अत्यन्त शीतल

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

जल की, पश्चात् अतिक्षार जल की और इसके बाद अत्यन्त दुस्सह विष की वृष्टि होगी। इसके पश्चात् सात-सात दिन पर्यन्त सर्व जीवों का नाश करने वाली अग्नि वृष्टि, धूलि वृष्टि और धूम की वृष्टि होगी। इन दुर्वृष्टियों से पृथ्वी, नीचे एक योजन पर्यन्त भस्म हो जाएगी और नियम से सर्व जीवों का नाश हो जायेगा। इस प्रकार सभी जिनेन्द्रों ने अवसर्पिणी काल का स्वरूप कहा है ॥३१२ (के दो चरण) ३१५॥ द्वितीय आदि कालों के प्रारम्भ में भोगभूमिज मनुष्यों की जो उत्कृष्ट आयु, उत्सेध एवं सुख आदि पूर्व में कहा गया है, वही सब प्रथम आदि कालों के अन्त में जघन्य रूप से जानना चाहिए, अर्थात् द्वितीय काल के आदि में जो उत्कृष्ट आयु आदि कही है, वह प्रथम काल के अन्त की जघन्य है। इस प्रकार अवसर्पिणी काल सम्बन्धी छह कालों की अवस्थिति जानना चाहिए ॥३१६-३१७॥

अब उत्सर्पिणी काल के प्रथम काल का वर्णन करते हैं—

ततोऽतिदुःषमाद्याः षट्काला वृद्धियुताः क्रमात्।
उत्सर्पिण्यो भविष्यन्त्यङ्गोत्सेधायुर्बलादिभिः ॥३१८॥
तस्या अत्रादिमः कालः षष्ठेन सदृशोऽखिलः।
क्रमवृद्धियुतश्चातिदुःषमाख्यो बलादिकैः ॥३१९॥
तस्यादौ जलसद्वृष्टिः क्षीरवृष्टिर्घनोद्भवा।
घृतवृष्टिस्ततोऽपीक्षुरसवृष्टिः सुखप्रदा ॥३२०॥
सुधावृष्टिर्जगत्ताप-नाशिनी च भविष्यति।
सप्तसप्तदिनान्यत्र सुगन्धा शीतला मही ॥३२१॥
तिर्यंचो मानवास्तद्गन्धाकृष्टाश्च निजेच्छया।
नानां युगलरूपेण वर्तिष्यन्ते वृषातिगाः ॥३२२॥
ते सर्वे मृण्मयाहारजीविनो वृद्धिसंयुताः।
आयुर्धीबलदेहाद्यैर्मताः कालान्तमञ्जसा ॥३२३॥

अर्थ—अवसर्पिणी काल की परिसमाप्ति के अनन्तर ही उत्सर्पिणी सम्बन्धी अतिदुखमा आदि छह काल होंगे, जिनमें उत्पन्न होने वाले जीव उत्सेध, आयु एवं बल आदि के द्वारा क्रम से वृद्धि को प्राप्त होंगे। अवसर्पिणी के छठे काल के सदृश उत्सर्पिणी का दुखमा-दुखमा नाम का प्रथम काल है। अन्तर केवल इतना है कि इस काल में बल, आयु और विवेक आदि की क्रमशः वृद्धि होती जायेगी। इस काल के प्रारम्भ में जगत् का सन्ताप नाश करने वाली और सुख प्रदान करने वाली सात-सात दिन पर्यन्त उत्तम जल की, दूध की, घी की, इक्षुरस की और अमृत की वर्षा होगी, जिससे पृथ्वी शीतल और सुगन्धित हो जायेगी। उस गन्ध से आकृष्ट होकर मनुष्य और तिर्यञ्चों के अनेक युगल अपनी इच्छा से उन गुफाओं आदि से निकलकर वृद्धि को प्राप्त होंगे। वे सब जीव उस प्रथम काल के अन्त पर्यन्त धर्म से रहित, मिट्टी मय आहार से जीवन यापन करने वाले तथा आयु, देह के उत्सेध, बल एवं बुद्धि आदि से निरन्तर वृद्धिंगत होते रहेंगे ॥३१८-३२३॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब उत्सर्पिणीकाल सम्बन्धी द्वितीय दुखमा काल का वर्णन करते हैं–

उत्सर्प्पिण्यास्ततोऽप्यस्यां द्वितीयो दुःषमाभिधः।
कालः पञ्चमसादृश्यो भविता क्रमवृद्धिभाक् ॥३२४॥
अन्ते द्वितीयकालस्यावशिष्टेऽब्दसहस्त्रके।
सत्येते कुलकर्त्तारो भविष्यन्त्यत्र षोडश ॥३२५॥
आदिमः कनकाभिख्यो द्वितीयः कनकप्रभः।
ततः कनकराजाख्यः कुलकृत् कनकध्वजः ॥३२६॥
स्वर्णपुङ्गव संज्ञोऽत्थ नलिनोनलिनप्रभः।
ततो नलिन राजाख्यः कुलभृन्नलिनध्वजः ॥३२७॥
नलिनीपुङ्गवाभिख्यः पद्मः पद्मप्रभाभिधः।
पद्मराजाह्वयःपद्मध्वजश्च पद्मपुङ्गवः ॥३२८॥
महापद्म इमे प्रोक्ता भविष्या मनवोऽखिलाः।
सूचयिष्यन्ति मुग्धानां कृत्याकृत्यादि देहिनाम् ॥३२९॥

अर्थ–अवसर्पिणी काल के पञ्चम काल सदृश उत्सर्पिणी का दुखमा नाम का द्वितीय काल होगा किन्तु इसमें बुद्धि बल आदि की क्रमशः वृद्धि होती जायेगी उत्सर्पिणी के द्वितीय काल के अन्त में एक हजार वर्ष अवशेष रहने पर निम्नलिखित सोलह कुलकर होंगे। यथा–१ कनक, २ कनकप्रभ, ३ कनकराज, ४ कनकध्वज, ५ कनकपुंगव, ६ नलिन, ७ नलिनप्रभ, ८ नलिनराज, ९ नलिनध्वज, १० नलिनपुंगव, ११ पद्म, १२ पद्मप्रभ, १३ पद्मराज, १४ पद्मध्वज, १५ पद्मपुंगव और महापद्म ये १६ मनु होंगे, जो मुग्ध (भोले) जीवों को कृत्य-अकृत्य आदि कार्यों की शिक्षा देंगे अर्थात् क्षत्रिय आदि कुलों के अनुरूप आचरण और अग्नि द्वारा पाचन आदि का विधान सिखायेंगे ॥३२४-३२९॥

अब दुखमा-सुखमा नामक तृतीय काल की स्थिति बतलाते हुए इसमें उत्पन्न होने वाले चौबीस तीर्थंकरों का वर्णन करते हैं–

ततस्तृतीयः कालः स्याद् दुःषमासुषमाह्वयः।
चतुर्थकालतुल्योऽत्रायास्यति क्रमवृद्धिभाक् ॥३३०॥
तस्मिन् काले क्रमेणैव भविष्यन्ति जिनेश्वराः।
नष्टधर्मोद्धरा एते चतुर्विंशतिसंख्यकाः ॥३३१॥
पद्माख्यः सुरदेवोऽथ सुपार्श्वो हि स्वयंप्रभः।
सर्वात्माभूतसंज्ञश्च देवपुत्रसमाह्वयः ॥३३२॥
कुलपुत्र उदङ्काख्यः प्रोष्ठिलो जयकीर्तिवाक्।
मुनिसुव्रतनामातथारनाथो ह्यपापकः ॥३३३॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

निःकषायाभिधानोऽथ विपुलो निर्मलाख्यकः।
चित्रगुप्तो जिनाधीशः समाधिगुप्तनामकः ॥३३४॥
स्वयंभूरनिवर्तिस्तु जयाख्यो विमलाभिधः।
देवपालाह्वयोऽनन्तवीर्य एते जिनाधिपाः ॥३३५॥
त्रिजगन्नाथवन्द्यार्च्याः स्वर्मुक्तिमार्गदर्शिनः।
धर्मतीर्थप्रणेतारो ज्ञेया विश्वहितङ्कराः ॥३३६॥
मध्ये यः प्रथमोऽमीषां श्रेणिकः स भविष्यति।
शुद्धसम्यक्त्व माहात्म्यादादितीर्थप्रवर्तकः ॥३३७॥
षोडशाग्रशताब्दायुः सप्तहस्तोच्चविग्रहः।
दिव्येन ध्वनिना पुंसां स्वर्गमोक्षाध्वदर्शक ॥३३८॥
अन्तिमः कोटिपूर्वायुर्भविता तीर्थकारकः।
शतपञ्चधनुस्तुङ्गः सन्मार्गदीपको महान् ॥३३९॥
शेषाणां तीर्थकर्तृणां भविष्याणां जिनागमे।
आयुरुत्सेधकालाद्या ज्ञेयाश्च भूतयेऽखिलाः ॥३४०॥

अर्थ—द्वितीय काल के बाद उत्सर्पिणी का दुःखमा-सुखमा नाम का तृतीय काल आयेगा, जो अवसर्पिणी के चतुर्थ काल सदृश होगा किन्तु इसमें आयु, बल एवं बुद्धि आदि में क्रमशः वृद्धि होती जायेगी। इस तृतीय काल में नष्ट हुए धर्म का उद्धार करने में तत्पर आगे कहे जाने वाले चौबीस तीर्थंकर क्रमशः होंगे। प्रथम तीर्थंकर (श्रेणिक राजा का जीव) १ पद्म, २ सुरदेव, ३ सुपार्श्व, ४ स्वयंप्रभ, ५ सर्वात्मभूत, ६ देवपुत्र, ७ कुलपुत्र, ८ उदंक, ९ प्रोष्ठिल, १० जयकीर्ति, ११ मुनिसुव्रत, १२ अरनाथ, १३ अपावक, १४ निष्कषाय, १५ विपुल, १६ (कृष्ण नारायण का जीव) निर्मल, १७ चित्रगुप्त, १८ समाधिगुप्त, १९ स्वयम्भू, २० अनिवर्ति, २१ जय, २२ विमल, २३ देवपाल और २४ (सात्यिकी तनुज अन्तिम रुद्र का जीव) अन्तिम तीर्थंकर अनन्तवीर्य होगा। ये चौबीस जिनेन्द्र, देवेन्द्र, धरणेन्द्र एवं नरेन्द्रों के द्वारा वन्दित और पूजित हैं, स्वर्ग एवं मोक्ष के मार्ग को दर्शाने वाले हैं, धर्म तीर्थ के प्रणेता एवं विश्व का हित करने वाले हैं, ऐसा जानना चाहिए। इन चौबीस तीर्थंकरों के मध्य, तीर्थ का प्रवर्तन करने वाले जो प्रथम तीर्थंकर होंगे वे शुद्ध सम्यक्त्व के माहात्म्य से श्रेणिक राजा का जीव ही होगा। इनकी आयु ११६ वर्ष प्रमाण और शरीर की ऊँचाई सात हाथ प्रमाण होगी। ये अपनी दिव्यध्वनि के द्वारा मनुष्यों को स्वर्ग और मोक्ष का मार्ग दर्शायेंगे। सात्यिकीतनुज अन्तिम रुद्र का जीव अनन्तवीर्य नाम के अन्तिम तीर्थंकर होंगे। सन्मार्ग दर्शाने के लिये दीपक सदृश इन महान् तीर्थंकर की आयु एक पूर्व कोटि प्रमाण और शरीर का उत्सेध ५०० धनुष प्रमाण होगा। भविष्य में होने वाले अवशेष बाइस तीर्थंकरों की आयु, उत्सेध एवं काल आदि का समस्त वर्णन जिनागम से जान लेना चाहिए ॥३३०-३४०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब आगामी द्वादश चक्रवर्तियों के नाम कहते हैं—

भरतो दीर्घदन्ताख्यो जयदत्ताभिधानकः।
गूढदन्ताह्वयः श्रीषेणाख्यः श्रीभूतिसंज्ञकः ॥३४१॥
श्रीकीर्तिश्च ततः पद्मो महापद्माभिधानकः।
चित्रवाहननामा विमलवाहननामकः ॥३४२॥
अरिष्टसेननामामी भाविचक्रधरा मताः।
द्वादशाद्भुत पुण्याढ्या नृदेव खचरार्चिताः ॥३४३॥

अर्थ—(भविष्यत् काल में भी प्रथम चक्रवर्ती का नाम भरत ही होगा, इस प्रकार)-१ भरत, २ दीर्घदन्त, ३ जयदत्त, ४ गूढदन्त, ५ श्रीषेण, ६ श्रीभूति, ७ श्रीकीर्ति, ८ पद्म, ९ महापद्म, १० चित्रवाहन, ११ विमलवाहन और १२ अरिष्टसेन नाम के ये द्वादश चक्रवर्ती अद्भुत पुण्य से युक्त और नरेन्द्रों, देवों एवं विद्याधरों से पूजित भविष्यत् काल में होंगे॥३४१-३४३॥

अब भविष्यत् काल में होने वाले बलभद्र, वासुदेव और प्रतिवासुदेवों के नाम कहते हैं—

चन्द्राह्वयो महाचन्द्रस्ततश्चन्द्रधराभिधः।
हरिचन्द्राख्यकः सिंहचन्द्राख्यो वरचन्द्रमाः ॥३४४॥
पूर्णचन्द्रः सुचन्द्राख्यः श्रीचन्द्रो भाविनोऽप्यमी।
बलभद्रा नव ज्ञेया देवार्च्या ऊर्ध्वगामिनः ॥३४५॥
नन्दी च नन्दिमित्राख्यो नन्दिषेणसमाह्वयः।
नन्दिभूति नरेशोऽथ प्रतीतबलसंज्ञकः ॥३४६॥
ततो महाबलाभिख्योऽतिबलाख्यस्त्रिखण्डभृत्।
त्रिपृष्टोऽथ द्विपृष्टोऽमी वासुदेवा नवस्मृताः ॥३४७॥
श्रीकण्ठो हरिकण्ठाख्यो नीलकण्ठोऽश्वकण्ठकः।
सुकण्ठः शिखिकण्ठश्च ततोऽश्वग्रीवसंज्ञकः ॥३४८॥
हयग्रीवो मयूरग्रीवोऽमी खण्डत्रयाधिपाः।
वासुदेवद्विषः सर्वे ज्ञातव्या नव भूतले ॥३४९॥
शलाकाः पुरुषा एते खभूचरसुराधिपैः।
वन्द्याः पूज्यास्त्रिषष्टिश्च भविष्यन्ति जिनादयः ॥३५०॥

अर्थ—भविष्यत् काल में चन्द्र, महाचन्द्र, चन्द्रधर, हरिचन्द्र, सिंहचन्द्र, वरचन्द्र, पूर्णचन्द्र, सुचन्द्र और श्रीचन्द्र नाम के ये नौ बलभद्र, देवों से पूज्य और ऊर्ध्वगामी होंगे। इसी प्रकार आगामी काल में नन्दी, नन्दिमित्र, नन्दिषेण, नन्दिभूत, प्रतीतबल, महाबल, अतिबल, त्रिपृष्ठ और द्विपृष्ठ ये नव नारायण होंगे। इसी प्रकार तृतीय काल में श्रीकण्ठ, हरिकण्ठ, नील कण्ठ, अश्वकंठ, सुकण्ठ, शिखिकण्ठ, अश्वग्रीव, हयग्रीव और मयूरग्रीव ये नौ त्रिखंडाधिपति प्रतिवासुदेव होंगे। पृथ्वीतल पर

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

ये नौ प्रतिनारायण, नारायणों के शत्रु होते हैं, ऐसा जानना। विद्याधरों, राजाओं और देवों द्वारा वन्दनीय एवं पूजनीय जिनेन्द्र आदि त्रेसठ शलाका के ये सभी महापुरुष भविष्यत् काल में होंगे ॥३४४-३५०॥

अब अवशेष तीन कालों में भोगभूमि की रचना कहते हैं—

ततः कालत्रयोऽन्येऽत्र स्थित्यादिवृद्धिसंयुताः।
जघन्यमध्यमोत्कृष्टा भोगभूमिभवाः क्रमात् ॥३५१॥
प्रागुक्तत्रिकसद्भोगभूमितुल्याः सुखाकराः।
दशधा कल्पवृक्षाढ्या आयास्यन्ति पृथग्विधाः ॥३५२॥

अर्थ—इस तृतीय काल की परिसमाप्ति के अनन्तर स्थिति आदि की वृद्धि से युक्त तीन काल और होंगे, जिसमें क्रम से जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट भोगभूमि की रचना होगी अर्थात् चतुर्थ सुखमा-दुखमा काल में जघन्य भोगभूमि की, पंचम सुखमा काल में मध्यम की और छठे सुखमा-सुखमा काल में उत्कृष्ट भोगभूमि की रचना होगी। पृथक्-पृथक् दस-दस प्रकार के कल्पवृक्षों से युक्त सुख की खान स्वरूप इन तीनों भोगभूमियों में पूर्वोक्त भोगभूमियों के सदृश ही रचना होगी ॥३५१-३५२॥

भरतैरावत में कहे हुए इन छह कालों को नियमपूर्वक अन्य क्षेत्रों में जोड़ने के लिए कहते हैं—

भरतैरावतक्षेत्रेषु सर्वेषु द्विपञ्चसु।
द्विषट्कालाः प्रवर्तन्ते वृद्धिह्रासयुताः सदा ॥३५३॥
विजयार्धनगेष्वत्र म्लेच्छखण्डेषु पञ्चसु।
चतुर्थकाल एवास्ति शाश्वतो निरुपद्रवः ॥३५४॥
किन्तु चतुर्थकालस्य यदा स्याद् भरतादिषु।
आयुःकायसुखादीनां वृद्धिह्रासश्च जन्मिनाम् ॥३५५॥
तदा तेन समः कालो वृद्धिह्रासयुतो भवेत्।
रूप्याद्रिम्लेच्छखण्डेषु शेषकालेषु न क्वचित् ॥३५६॥
पूर्वापरविदेहेषु द्विपञ्चसु प्रवर्तते।
चतुर्थकाल एवैको मोक्षमार्गप्रवर्तकः ॥३५७॥
देवोत्तरकुरुष्वेव द्विपञ्चभोगभूमिषु।
दक्षिणोत्तरयोर्मेरोः प्रथमः काल ऊर्जितः ॥३५८॥
हरिरम्यकवर्षेषु मध्यमभोगभूमिषु।
वृद्धिह्रासातिगः कालो द्वितीयो मध्यमो मतः ॥३५९॥
हैमवताख्यहैरण्यवतक्षेत्रद्विपञ्चसु ।
तृतीयः शाश्वतः कालो जघन्यभोगभूमिषु ॥३६०॥
तिर्यग्द्वीपेष्वसंख्येषु मानुषोत्तरपर्वतात्।
बाह्यस्थेष्वन्तरस्थेषु नागेन्द्रशैलतः स्फुटम् ॥३६१॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

जघन्यभोगभूभागस्थिति युक्तेषु वर्तते।
जघन्यभोगभूकर्ता नित्यः कालस्तृतीयकः ॥३६२॥
नागेन्द्रपर्वताद्बाह्ये स्वयम्भूरमणार्णवे।
स्वयम्भूरमणद्वीपार्धे कालः पञ्चमोऽव्ययः ॥३६३॥
चतुर्णिकायदेवानां स्वर्गादिसर्वधामसु।
सुषमासुषमाकालो नित्योऽस्ति सुखसागरः ॥३६४॥
कालोऽतिदुःषमाभिख्यो नरकेष्वस्ति सप्तसु।
विश्वासाताकरीभूतः शाश्वतो नारकाङ्गिनाम् ॥३६५॥

अर्थ—पंचमेरु सम्बन्धी पाँच भरत और पाँच ऐरावत (इन दश) क्षेत्रों के आर्य खण्डों में वृद्धि-ह्रास युक्त छह काल उत्सर्पिणी सम्बन्धी और छह काल अवसर्पिणी सम्बन्धी इस प्रकार बारह काल निरन्तर प्रवर्तन करते रहते हैं। विजयार्ध पर्वतों की श्रेणियों में एवं भरतैरावत सम्बन्धी दश क्षेत्रों के पाँच-पाँच म्लेच्छ खण्डों में उपद्रव रहित चतुर्थ काल की वर्तना शाश्वत रहती है किन्तु भरतैरावत क्षेत्रों के चतुर्थ काल में जीवों के काय, आयु एवं सुख आदि का जिस प्रकार वृद्धि ह्रास होता है उसी के सदृश वृद्धि-ह्रास वहाँ भी होता है अर्थात् भरतैरावत क्षेत्रों के आर्य खण्डों में अवसर्पिणी के चतुर्थ काल में आदि से अन्त तक जीवों की आयु आदि में जैसी क्रमिक हानि होती है, वैसी ही हानि वहाँ होती है और आर्य खण्डों में उत्सर्पिणी काल के तृतीय काल (क्योंकि जो अवसर्पिणी का चतुर्थ काल है, वही उत्सर्पिणी का तृतीय है) में आदि से अन्त तक जैसी क्रमिक वृद्धि होती है, वैसी ही वृद्धि वहाँ (म्लेच्छ खण्डों में और विजयार्धों में) होती है। विजयार्धों की श्रेणियों में और म्लेच्छ खण्डों में शेष कालों के सदृश वर्तना कभी भी नहीं होती। अर्थात् वहाँ अवसर्पिणी के पाँचवें और छठे तथा उत्सर्पिणी के पहले और दूसरे काल सदृश वर्तना कदापि नहीं होती। पंचमेरु सम्बन्धी पाँच पूर्वविदेह और पाँच पश्चिम विदेह इस प्रकार पूर्वापर दस विदेह क्षेत्रों में मोक्षमार्ग के प्रवर्तक मात्र एक चतुर्थ काल की एक सदृश वर्तना होती है। अर्थात् जैसे यहाँ आर्य खण्डों सम्बन्धी चतुर्थ काल में आयु आदि हीनाधिक होती है वैसे वहाँ नहीं होती। यहाँ अवसर्पिणी सम्बन्धी चतुर्थ काल के प्रारम्भ में जैसी वर्तना होती है, वैसी वहाँ निरन्तर होती रहती है। यहाँ अवसर्पिणी के प्रथम काल के प्रारम्भ में आयु, उत्सेध एवं सुख आदि की जो वर्तना होती है, वैसी ही वर्तना पंचमेरुओं के उत्तर और दक्षिण में अवस्थित उत्तरकुरु, देवकुरु नामक दश उत्तम भोगभूमियों में निरन्तर रहती है। अवसर्पिणी के द्वितीय काल के प्रारम्भ सदृश पंचमेरु सम्बन्धी हरि-रम्यक क्षेत्रों की दस मध्यम भोगभूमियों में वृद्धि-ह्रास से रहित वर्तना होती है। इसी प्रकार अवसर्पिणी के तृतीय काल के प्रारम्भ सदृश हैमवत् और हैरण्यवत् क्षेत्रगत दस जघन्य भोगभूमियों में शाश्वत वर्तना होती है। मानुषोत्तर पर्वत से बाहर और स्वयम्भूरमण द्वीप के मध्य में अवस्थित नागेन्द्र पर्वत के भीतर-भीतर तिर्यग्लोक सम्बन्धी असंख्यात द्वीपों में जघन्य भोगभूमि का वर्तन होता है, अवसर्पिणी के तृतीय काल के प्रारम्भ में जघन्य भोगभूमि जन्य यहाँ जैसा

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

वर्तन होता है, वैसा वहाँ शाश्वत होता है। नागेन्द्र पर्वत के बाह्य भाग से स्वयम्भूरमण समुद्र के अन्त पर्यन्त अर्थात् अर्ध स्वयम्भूरमण द्वीप में और स्वयम्भूरमण समुद्र में अवसर्पिणी के पञ्चम काल के प्रारम्भ सदृश, हानि-वृद्धि रहित पंचम काल का ही नित्य वर्तन होता है। चतुर्निकाय देवों के स्वर्गादिक सभी स्थानों में सुख के सागर स्वरूप सुखमा-सुखमा काल के सदृश ही नित्य वर्तन होता है तथा सातों नरक भूमियों में नारकी जीवों के नित्य ही समस्त असाता की खान स्वरूप दुःखमा-दुःखमा काल के सदृश वर्तन होता है (स्वर्गों एवं नरकों में अत्यन्त सुखों एवं अत्यन्त दुःखों की विवक्षा से यह कथन किया गया है, आयु तथा उत्सेध आदि की विवक्षा से नहीं ॥३५३-३६५॥

अब आचार्य कालचक्र के परिभ्रमण से छूटने का उपाय बतलाते हैं—

इत्येतत् कालचक्रं भ्रमणभरयुतं तीर्थनाथैः प्रणीतम्।
षड्भेदं सौख्यदुःखास्पदमपि निखिलं भो! भ्रमन्त्येव नित्यम्॥
संसारे दुःखपूर्णे विधिगणगलिताः प्राणिनश्चेति मत्वा।
दक्षाः कालादिदूरं सुचरणसुतपोभिः शिवं साधयध्वम् ॥३६६॥

अर्थ—इस प्रकार भ्रमण के भार से युक्त, समस्त सुखों एवं दुःखों के स्थान स्वरूप यह छह भेद वाला कालचक्र भगवान् जिनेन्द्र के द्वारा कहा गया है। इस कारण कर्म समूह से प्रेरित जीव इस दुःख पूर्ण संसार में नित्य ही भ्रमण करता है, ऐसा जानकर भो चतुर भव्य जनों! आप सब उत्तम चारित्र और उत्तम तप के द्वारा कालचक्र के प्रभाव से रहित मोक्ष का साधन करो ॥३६६॥

अधिकारान्त मंगलाचरण

एषां काले चतुर्थे वसुगुणवपुषो येऽभवन् सिद्धनाथाः,
सार्धद्वीपद्वये ये सकलगुणमयास्त्यक्तदोषा जिनेन्द्राः।
अन्तातीताः सुराच्यां जगति हितकराः सूरयः पाठकाश्चा-
चाराढ्याः साधवस्तांस्तदसमगतये नौमि सर्वान् जिनादीन् ॥३६७॥

इति श्रीसिद्धान्तसारदीपकमहाग्रन्थे भट्टारक श्रीसकलकीर्ति विरचिते अवसर्पिण्युत्सर्पिणी षट्काल प्ररूपको नाम नवमोधिकारः।

अर्थ—इन छह कालों के मध्य चतुर्थ काल में आठ गुण ही हैं शरीर जिनका, ऐसे सिद्ध परमेष्ठी हुए हैं। अढ़ाई द्वीप में जो अठारह दोषों से रहित, सम्पूर्ण गुणों से सहित, विनाश रहित और देव समूह से पूज्य जिनेन्द्र अर्हन्त हुए हैं तथा जगत् का हित करने वाले एवं चारित्र गुण से विभूषित आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधु हुए हैं, उन सब जिनेन्द्रादि-पंच परमेष्ठियों को मैं अनुपम गति की प्राप्ति के लिए नमस्कार करता हूँ ॥३६७॥

इस प्रकार भट्टारक सकलकीर्ति विरचित सिद्धान्तसारदीपक नामकमहाग्रन्थ में अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी के छह कालों का प्ररूपण करने वाला नवम अधिकार समाप्त हुआ॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

दशम अधिकार

मध्यलोक वर्णन

मंगलाचरण एवं प्रतिज्ञा सूत्र

अथ पंचगुरून् नत्वा धर्मसाम्राज्यनायकान्।
महतस्त्रिजगत्पूज्यान् प्रवक्ष्ये लवणार्णवम् ॥१॥

अर्थ—अब त्रैलोक्य पूज्य और धर्म साम्राज्य के अधिनायक पञ्च परमेष्ठियों को नमस्कार करके लवण समुद्र का वर्णन करूँगा ॥१॥

अब जम्बूद्वीप की परिधि और प्राकार का प्रमाण कहते हैं—

योजनानां त्रिलक्षाणि सहस्राण्यपि षोडश।
द्वेशते सप्तविंशत्यधिके क्रोशास्त्रयस्तथा ॥२॥
धनुषां शतमेकं किलाष्टाविंशतिसंयुतम्।
त्रयोदशांगुलान्यर्धांगुलं साधिकमञ्जसा ॥३॥
इत्येवं संख्यया जम्बूद्वीपस्य परिधिर्मता।
सूक्ष्मः प्राकार एतस्य स्यादष्टयोजनोन्नतः ॥४॥
योजनानां द्विषड्व्यासो मूले मध्येऽष्टविस्तृतः।
चतुर्भिर्विस्तृतोऽन्ते च वज्राङ्गो वलयाकृतिः ॥५॥

अर्थ—(एक लाख योजन प्रमाण विष्कम्भ व आयाम से सहित) जम्बूद्वीप की परिधि का सूक्ष्म प्रमाण तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन, तीन कोस, एक सौ अठ्ठाईस धनुष और साढ़े तेरह अंगुल से कुछ अधिक है। अर्थात् ३१६२२७ यो., ३ कोश १२८ धनुष और १३$\frac{१}{२}$अंगुल से कुछ अधिक है। इस जम्बूद्वीप को चारों ओर से वेष्टित करने वाला एक वज्रमय वलयाकार कोट है, जो आठ योजन ऊँचा, मूल में बारह योजन, मध्य में आठ योजन और ऊपर चार योजन प्रमाण चौड़ा है ॥२-५॥

अब प्राकार ऊपर स्थित वेदिका का निरूपण करते हैं—

प्राकारोपरिभागेऽस्ति पद्मवेदी च शाश्वता।
धनुःपञ्चशतव्यासादिव्या क्रोशद्वयोच्छ्रिता ॥६॥

अर्थ—प्राकार के उपरिम भाग में पद्म नाम की वेदी है, जो शाश्वत है पाँच सौ धनुष चौड़ी है और दो कोश ऊँची है ॥६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब कोट के चारों दिशाओं में स्थित द्वारों के नाम, प्रमाण और उनके ऊपर स्थित जिन प्रतिमाओं का निरूपण करते हैं–

शालस्य पूर्वदिग्भागे द्वारं विजयसंज्ञकम्।
दक्षिणे वैजयन्ताख्यं द्वारं भागे च पश्चिमे ॥७॥
जयन्तमुत्तरे गोपुरद्वारमपराजितम्।
चत्वारिगोपुराणीति नानारत्नमयान्यपि ॥८॥
प्रत्येकं गोपुराणां च योजनाष्टसमुन्नतिः।
सर्वत्र व्यास आयामश्चतुर्योजनसम्मितः ॥९॥
गोपुरद्वारसर्वेषु जिनेन्द्रप्रतिमाः पराः।
सन्ति भामण्डलच्छत्रत्रय सिंहासनाश्रिताः ॥१०॥

अर्थ–कोट की पूर्व दिशा में विजय, दक्षिण में वैजयन्त, पश्चिम में जयन्त और उत्तर में अपराजित नाम के, नाना प्रकार के रत्नमय चार गोपुर द्वार हैं। ये प्रत्येक गोपुरद्वार आठ योजन ऊँचे, चार योजन चौड़े और चार योजन लम्बे हैं, इन समस्त द्वारों पर भामण्डल, तीन छत्र एवं सिंहासन आदि से युक्त जिनेन्द्र प्रतिमाएँ हैं ॥७-१०॥

अब इन चारों गोपुरद्वारों के अधिनायकों का कथन करते हैं–

विजयो वैजयन्तोऽथ जयन्ताख्योऽपराजितः।
चत्वारो व्यन्तराधीशा एते पल्यैकजीविनः ॥११॥
देवीभिर्बहुसैन्याद्यैः समृद्धा अधिनायकाः।
पूर्वादिदिक्प्रतोलीनां दिव्यदेहा भवन्ति च ॥१२॥

अर्थ–इन चारों द्वारों के क्रमशः विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित नाम के चार व्यन्तर देव हैं। पूर्वादि दिशाओं में स्थित प्रतोलियों के ये चारों अधिनायक दिव्य देह के धारी, एक पल्य की आयु से युक्त और देवों की अनेक प्रकार की सेनाओं से समृद्ध होते हैं ॥११-१२॥

अब चारों गोपुरद्वारों के ऊपर स्थित नगरों का वर्णन करते हैं–

अमीषां विजयादीनां प्रत्येकं पुरमुत्तमम्।
सर्वत्रायामविष्कम्भं सहस्त्रद्वादशप्रमैः ॥१३॥
योजनैर्मणिसौधोच्चप्राकारगोपुराङ्कितम् ।
द्वाराणामूर्ध्वभागं च गत्वा तिष्ठति शाश्वतम् ॥१४॥
ते स्वकीये स्वकीयेऽत्र पुरे तस्मिन् मनोहरे।
स्वदेवीपरिवाराढ्या वसन्ति व्यन्तराधिपाः ॥१५॥

अर्थ–चारों गोपुर द्वारों के ऊपर (गगन तल में) जाकर इन विजय आदि चारों व्यन्तराधिनायकों

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

के अत्यन्त रमणीक और शाश्वत नगर हैं। जिनका आयाम और विस्तार पृथक्-पृथक् बारह हजार योजन प्रमाण है। ये नगर मणियों के ऊँचे-ऊँचे महलों, प्राकारों और गोपुरों आदि से संयुक्त हैं। व्यन्तर देवों के स्वामी ये विजय आदि देव अपने-अपने मनोहर नगरों में अपनी-अपनी परिवार देवियों के साथ निवास करते हैं ॥१३-१५॥

अब चारों द्वारों का पारस्परिक अन्तर और प्राकार के बाह्याभ्यन्तर भाग में स्थित वनों आदि का निरूपण करते हैं—

प्राकारपरिधेर्यच्चचतुर्थांशं तदेव हि।
द्वारव्यासोनितं तेषां द्वाराणामन्तरं भवेत् ॥१६॥
प्राकाराभ्यन्तरे भागे क्रोशद्वयसुविस्तरम्।
नानापादपसंकीर्णं वनमस्ति मनोहरम् ॥१७॥
वेदिका स्याद्वनस्यान्ते गोपुरादिविभूषिता।
क्रोशद्वयोन्नतादिव्या क्रोशतुर्यांशविस्तृता ॥१८॥
इत्यादिवर्णनोपेतः प्राकारोऽस्ति पृथक् पृथक्।
असंख्यद्वीपवार्धीनां पर्यन्ते वलयाकृतिः॥१९॥

अर्थ—द्वार के व्यास से हीन कोट की परिधि के चतुर्थांश का जो प्रमाण प्राप्त होता है, वही उन द्वारों के अन्तर का प्रमाण है। अर्थात् कोट (जम्बूद्वीप) की परिधि का प्रमाण ३१६२२८ योजन है, और चारों द्वारों का व्यास १६ योजन है, इसे परिधि के प्रमाण में से घटा देने पर (३१६२२८-१६) ३१६२१२ योजन अवशेष रहते हैं। मुख्य द्वार चार हैं, अतः अवशेष को चार से भाजित करने पर ($\frac{३१६२१२}{४}$) = ७९०५३ योजन प्राप्त हुए। यही एक द्वार से दूसरे द्वार के अन्तर का प्रमाण है। प्राकार के भीतर की ओर (पृथ्वी के ऊपर) दो कोश विस्तार वाला तथा अनेक प्रकार के वृक्षों से व्याप्त महामनोहर वन है। उस वन के अन्त में गोपुर आदि द्वारों से विभूषित वेदिका है, जो दो कोश ऊँची और एक कोश का चतुर्थांश अर्थात् पाव ($\frac{१}{४}$) कोश विस्तार वाली है। चूड़ी के आकार को धारण करने वाले असंख्यात द्वीप समुद्रों के अन्त में उपयुक्त वर्णन से युक्त पृथक्-पृथक् आकार-कोट हैं ॥१६-१९॥

अब लवण समुद्र की अवस्थिति और उसके स्वामी कहते हैं—

तत्प्राकारान्तमाश्रित्य वलयाकारभृन्महान्।
द्विलक्षयोजनव्यासो नित्योऽस्ति लवणार्णवः ॥२०॥
सत्स्वामिसुस्थिताभिख्यौ देवौ दिव्याङ्गधारिणौ।
लवणाख्यसमुद्रस्य तिष्ठतः परिरक्षकौ ॥२१॥

अर्थ—उस जम्बूद्वीप के कोट के अन्तिम भाग का आश्रय कर अर्थात् कोट से लगा हुआ, चूड़ी के आकार को धारण करने वाला, दो लाख योजन व्यास से युक्त शाश्वत और महान् लवण समुद्र

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

है। इस लवण समुद्र के दिव्य अंग को धारण करने वाले सत्स्वामि और सुस्थित नाम के दो परिरक्षक देव वहाँ रहते हैं ॥२०-२१॥

अब लवण समुद्र के अभ्यन्तरवर्ती पातालों के नाम, उनका अवस्थान और संख्या का वर्णन करते हैं—

समुद्राभ्यन्तरे पंचनवति प्रमितान्यपि।
योजनानां सहस्त्राणि चतुर्दिक्षु विहाय च ॥२२॥
स्युः पातालानि चत्वारि महान्ति शाश्वतान्यलम्।
पूर्वस्यां दिशि पातालं पश्चिमे वडवामुखम् ॥२३॥
भवेद्दक्षिणदिग्भागे कदम्बकसमाह्वयः।
उत्तराख्ये दिशाभागे नाम्नास्ति युगकेशरी ॥२४॥
अमीषामन्तरेऽत्रैव विदिक्षु मध्यमान्यपि।
चत्वारि श्रेणिरूपेण पातालानि भवन्ति च ॥२५॥
एतेषामष्टपातालानामन्तरेषु चाष्टसु।
पातालानि जघन्यानि पञ्चविंशाधिकं शतम् ॥२६॥
प्रत्येकं तानि सर्वाणि पातालानि भवन्ति च।
अष्टाधिकसहस्त्राणि पिण्डितानि जिनागमे ॥२७॥

अर्थ—लवण समुद्र के अभ्यन्तर भाग में ९५ हजार योजन छोड़कर अर्थात् तट से ९५००० योजन पानी के भीतर जाकर चारों दिशाओं में चार महा पाताल हैं, जो शाश्वत हैं। पूर्व दिशा स्थित बड़वानल का नाम पाताल, दक्षिण दिश स्थित का नाम बड़वामुख, पश्चिम दिशा स्थित का कदम्बक और उत्तर दिशा स्थित पाताल का नाम युगकेशरी है। इन चारों पातालों के अन्तराल में चारों विदिशाओं गत श्रेणीरूप से स्थित चार मध्यम पाताल हैं और इन चार दिशा सम्बन्धी तथा चार विदिशा सम्बन्धी आठ पातालों के आठ अन्तराल हैं, जिनमें १२५-१२५ जघन्य पाताल हैं। जिनागम में इन समस्त पातालों का योग (१२५ ×८=१०००+४+४)=१००८ अर्थात् एक हजार आठ कहा गया है ॥२२-२७॥

अब तीनों प्रकार के पातालों का अवगाह आदि कहते हैं—

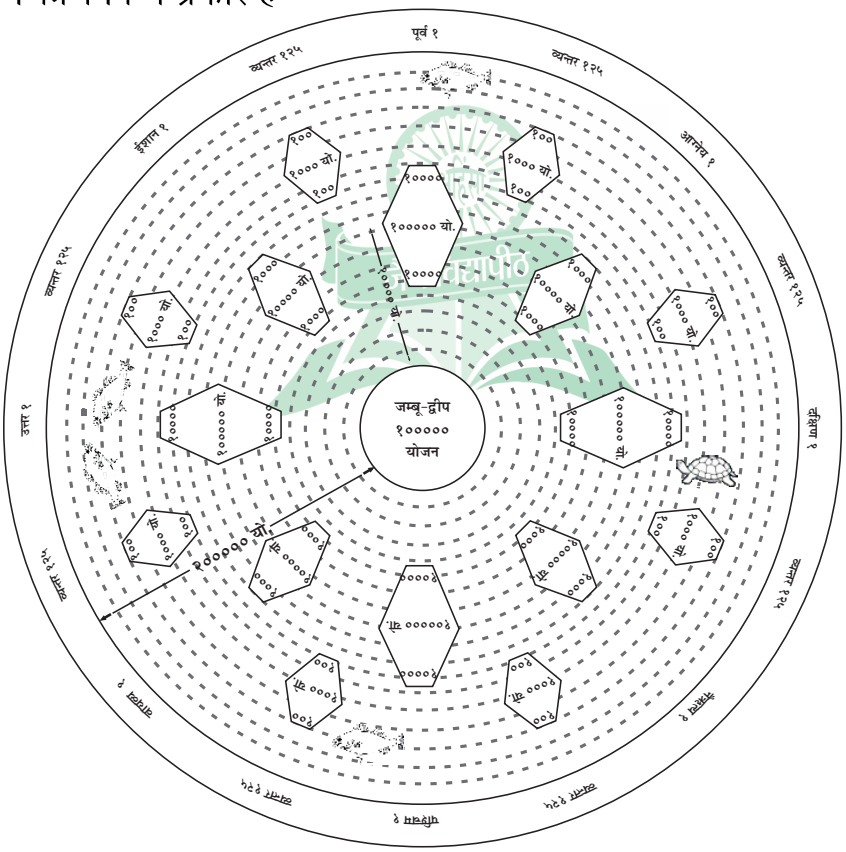
ज्येष्ठानामवगाहोऽस्तिलक्षैकयोजनप्रमः ।
मध्यभागे महाव्यासो लक्षयोजनमानकः॥२८॥
पातालानामधोभागे सहस्त्रदशसम्मितः।
योजनानां लघुव्यासो मुखेऽधोभागसन्निभः ॥२९॥
चतुर्णां मध्यमानां च सहस्त्राणि दशैवहि।
अवगाहोऽवगाहेन समोऽस्ति मध्यविस्तरः ॥३०॥
योजनानां सहस्त्रैकोऽधस्तले विस्तरो मतः।
पातालानां मुखे व्यासः सहस्त्रयोजनप्रमः ॥३१॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अवगाहो जघन्यानां योजनानां सहस्त्रकम्।
मध्यभागे च विष्कम्भोऽवगाहेन समानकः ॥३२॥
शतैकयोजनव्यासः पातालानामधस्तले।
योजनानां शतैकं स्याद्विस्तारस्तन्मुखे क्रमात् ॥३३॥

अर्थ—चारों दिशाओं में स्थित महा पातालों का अवगाह एक लाख योजन, मध्यभाग का व्यास एक लाख योजन, पातालों के अधोभाग का व्यास दश हजार योजन और मुख व्यास भी दश हजार योजन प्रमाण है। चारों मध्यम पातालों का अवगाह दस हजार योजन, मध्य व्यास दस हजार योजन, मुख व्यास एक हजार योजन और अधोभाग का व्यास भी एक हजार योजन प्रमाण है। एक हजार प्रमाण जघन्य पातालों का पृथक्-पृथक् अवगाह एक हजार योजन, मध्य व्यास एक हजार योजन तथा मुख और अधोभाग का व्यास सौ-सौ योजन प्रमाण है ॥२८-३३॥

इसका चित्रण निम्न प्रकार हैं-



अब पातालों के अभ्यन्तरवर्ती जल और वायु के प्रवर्तन का क्रम तथा जल में होने वाली हानि वृद्धि का कारण कहते हैं-

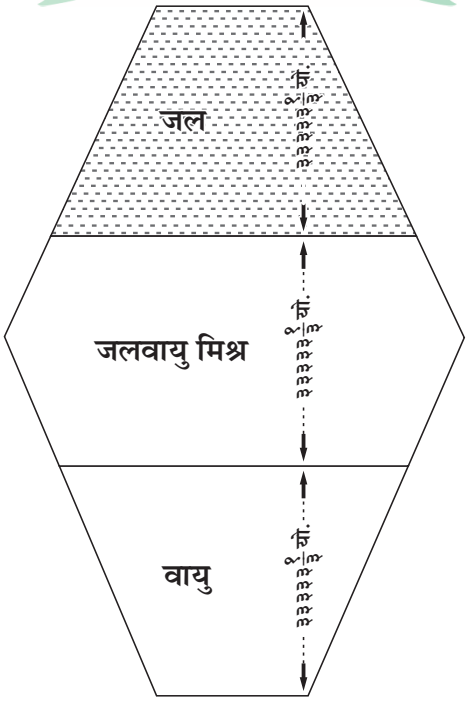
पातालानां समस्तानामवगाहे निरूपिताः।
पृथक् त्रयस्त्रयो भागाः समाना आगमे जिनैः ॥३४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अधोभागेषु सर्वेषां केवलं वातसञ्चयः।
मध्यतृतीयभागे स्तो जलवातौ स्वभावतः ॥३५॥
ऊर्ध्वस्थतृतीयांशेषु तिष्ठन्ति जलराशयः।
वीचीनां वृद्धिह्रासौ स्तो वाताधीनौ न संशयः ॥३६॥
यदाधस्तान् महान् वायुरूर्ध्वमायाति तेन च।
वीचीनां हि तदा वृद्धिर्जघन्यमध्यमोत्तमा ॥३७॥
यदा पातालमध्येषु प्रवेशं कुरुते मरुत्।
हानिस्तदैव वीचीनां सर्वत्र लवणाम्बुधौ ॥३८॥

अर्थ—आगम में जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा उन समस्त पातालों का जो पृथक्-पृथक् अवगाह निरूपण किया गया है, उसके समान रूप से तीन-तीन भाग करने पर उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य तीनों पातालों के अधोभागों में स्वभाव से ही मात्र वायु है। मध्य के तृतीय भागों में जल और वायु है तथा ऊपर के तृतीय भागों में मात्र जल है। जल कल्लोलों की वृद्धि और हानि में मात्र वायु ही कारण है, इसमें किञ्चित् भी संशय नहीं है। जब अधस्तन भाग में स्थित वायु ऊपर की ओर आती है, तब उस वायु से जल कल्लोलों में क्रमशः जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट वृद्धि होती है किन्तु जब वह वायु पाताल के अभ्यन्तर भाग में प्रवेश करती है, तब जल कल्लोलों में सर्वत्र क्रमशः हानि होती जाती है ॥३४-३८॥

उत्कृष्ट पाताल के त्रिभाग का प्रमाण एवं उनमें स्थित वायु आदि का चित्रण निम्न प्रकार है। अन्य पातालों का भी इसी प्रकार जानना। केवल प्रमाण में अन्तर होगा, अन्य नहीं–



FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब अमावस्या एवं पूर्णिमा को हानि वृद्धि रूप होने वाले जल के भूव्यास आदि का प्रमाण कहते हैं–

बीचेव्यासो ह्यमावस्यायां द्विलक्षप्रमाणकः।
योजनानां महीभागे शिखरे विस्तरस्तथा ॥३९॥
सार्धत्रिंशतयुक्तैकोनसप्ततिसहस्त्रकाः ।
एकादशसहस्त्राण्युत्सेधो जघन्य एव च ॥४०॥
योजनानां त्रयस्त्रिंशदधिकत्रिशतानि च।
योजनस्य तृतीयांश इति संख्यादिनं प्रति ॥४१॥
वीचेर्वृद्धिः परिज्ञेया यावन् पक्षान्तिमं दिनम्।
पूर्णमास्यां महावीचेर्द्विलक्षयोजनप्रमः ॥४२॥
विस्तारो भूतले मूर्द्ध्नि सहस्त्रदशसम्मितः।
उत्सेधो योजनानां च सहस्त्रषोडशप्रमः ॥४३॥

अर्थ–अमावस्या को समभूमि से जल की ऊँचाई ११००० योजन रहती है। यह लवण समुद्र के जल का जघन्य उत्सेध है। इस दिन अर्थात् ११००० ऊँचाई वाले जल का भूव्यास दो लाख योजन और मुख व्यास अर्थात् शिखर पर जल की चौड़ाई का प्रमाण ६९३५० योजन है ॥३९-४०॥

नोट–त्रिलोकसार गाथा ९०० की टीका में मुख व्यास का प्रमाण ६९३७५ योजन कहा है। मुख व्यास ६९३७५ योजन कैसे हुआ? इसे त्रैराशिक से सिद्ध भी किया गया है।

शुक्ल पक्ष में प्रतिदिन ३३३$\frac{१}{३}$ योजन की वृद्धि जल लहरों में होती है, इस प्रकार शुक्ल पक्ष के अन्त में पूर्णमासी को लवण समुद्र के जलराशि की ऊँचाई १६००० योजन हो जाती है। उस दिन भूमितल पर जल का विस्तार दो लाख योजन और शिखर पर जल का व्यास अर्थात् चौड़ाई १०००० योजन रहती है ॥४१-४३॥

विशेष–लवण समुद्र का जल मुरजाकार है। अर्थात् समुद्र के मध्य में जल हमेशा समभूमि से ११००० योजन ऊपर तक राशि के समान स्थित रहता है। पातालों के मध्यम त्रिभागों में नीचे पवन और ऊपर जल है। शुक्ल पक्ष में प्रत्येक दिन जल के स्थान पर पवन होता जाता है, इससे जल कल्लोलों में प्रतिदिन ३३३$\frac{१}{३}$ योजन की वृद्धि होती है, इस प्रकार बढ़ते हुए पूर्णमासी को जल राशि की वृद्धि (३३३$\frac{१}{३}$ × १५) = ५००० योजन हो जाती है। अर्थात् जल राशि की ऊँचाई ११००० योजन तो थी ही, ५००० योजन की वृद्धि हो गई, अतः पूर्णमासी को जल राशि की ऊँचाई (११००० +५०००)=१६००० योजन प्राप्त होती है। कृष्ण पक्ष में प्रतिदिन पवन के स्थान पर जल होता जाता है, अतः जलराशि में प्रतिदिन ३३३$\frac{१}{३}$ योजन की हानि होते हुए अमावस्या को जलराशि की ऊँचाई (१६०००-५००० =) ११००० योजन प्रमाण रह जाती है।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब तीनों प्रकार के पातालों के पारस्परिक अन्तर का प्रमाण दर्शाते हैं–

नवलक्षाः सहस्राण्यष्टचत्वारिंशदेव च।
षट्शातानि त्र्यशीतिः किलेति योजनसंख्यया ॥४४॥
मध्यमा परिधिः प्रोक्तो मध्यसूच्या महाम्बुधेः।
चतुर्थभागएवास्याः परिधेर्यः पृथक् कृतः ॥४५॥
दिक् पातालमुखव्यासहीनः सोऽत्रान्तरं भवेत्।
चतुर्णां ज्येष्ठपातालानां पृथग् भूतमञ्जसा ॥४६॥
द्वौ लक्षौ च सहस्राणि सप्तविंशतिरेव हि।
शतैकं सप्ततिर्योजनानां क्रोशास्त्रयः स्फुटम् ॥४७॥
इत्येवं संख्यया तेषां ज्येष्ठानामन्तरं मतम्।
तस्यार्धं मध्यमानां स्यान्मुखव्यासोनमन्तरम् ॥४८॥
योजनानां च लक्षैकं सहस्राणि त्रयोदश।
पंचाशीतिस्तथा सार्धक्रोशइत्यङ्क संख्यया ॥४९॥
मध्यमानां चतुर्णां पातालानामन्तरं पृथक्।
विभक्तमन्तरं चोनं मुखव्यासैस्तदेव हि ॥५०॥
पातालक्षुल्लकानां पञ्चविंशाग्रशतात्मनाम्।
अन्तरैरन्तरं प्रोक्तं षड्विंशाग्रशतप्रमैः ॥५१॥
योजनानां शतान्येव सप्ताष्टानवतिस्तथा।
योजनैकस्य भागानां षड्विंशाग्रशतात्मनाम् ॥५२॥
सप्तत्रिंशत्प्रमा भागा इत्यङ्कसंख्ययान्तरम्।
मतं क्षुल्लकपातालानां सर्वेषां जिनागमे ॥५३॥

अर्थ–लवण समुद्र की मध्यम सूची व्यास की मध्यम सूक्ष्म परिधि का प्रमाण ९४८६८३ योजन प्रमाण है। इस मध्यम परिधि के चतुर्थ भाग ($\frac{९४८६८३}{४}$ = २३७१७०$\frac{३}{४}$ यो.) में से उत्कृष्ट पाताल के मुख व्यास का प्रमाण (१० हजार यो.) घटा देने पर दिशा सम्बन्धी उत्कृष्ट पातालों का पृथक्-पृथक् अन्तर (२३७१७०$\frac{३}{४}$ – १०००० = २२७१७०$\frac{३}{४}$ यो.) प्राप्त होता है। अर्थात् पूर्व दिशागत उत्कृष्ट पाताल के मुख से दक्षिण दिशा गत उत्कृष्ट पाताल के मुख पर्यन्त २२७१७०$\frac{३}{४}$ योजन का अन्तर है। इसी प्रकार दक्षिण से पश्चिम, पश्चिम से उत्तर और उत्तर से पूर्व में जानना। इन उत्कृष्ट पातालों के अन्तर प्रमाण में से मध्यम पाताल के मुख व्यास (१०००) को कम करके आधा करने पर [(२२७१७०$\frac{३}{४}$ – १०००) ÷ २=] ११३०८५ योजन और डेढ़ कोश ($\frac{३}{२}$) प्राप्त होते हैं, यही चारों विदिशाओं गत चार मध्यम पातालों का चारों दिशा गत ज्येष्ठ पातालों से पृथक्-पृथक् अन्तर का

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

प्रमाण है। अर्थात् पूर्व दिशागत ज्येष्ठ पाताल और आग्नेय दिशा गत मध्यम पाताल के मुखों में ११३०८५ योजन और १$\frac{१}{२}$ कोश का अन्तर है। इसी प्रकार अन्यत्र जानना। दिशागत और विदिशागत पातालों के मध्य में १०० योजन मुख व्यास, वाले १२५ जघन्य पाताल हैं, इन सबका मुख व्यास (१२५ × १०० =) १२५०० योजन होता है। ज्येष्ठ और मध्यम पाताल के अन्तर प्रमाण ११३०८५ यो. १ $\frac{१}{२}$ कोश में से मुख व्यास घटाकर अवशेष को १२६ (क्योंकि आजू बाजू के दिशागत और विदिशागत पातालों सहित १२७ पाताल हैं, अत: १२७ पातालों के १२६ अन्तराल होते हैं।) से भाजित करने पर समस्त क्षुल्लक पातालों के बीच का अंतराल जिनागम में (११३०८५ यो. १ $\frac{१}{२}$ कोश – १२५०० यो. = १००५८५ यो. १ $\frac{१}{२}$ कोश – १२६) = ७९८ + $\frac{३७}{१२६}$ + $\frac{१}{१३६}$ योजन कहा गया है १ कोश में १२६ का भाग देने पर $\frac{३}{२}$ × $\frac{१}{१२६}$ × $\frac{१}{४}$ =) $\frac{१}{१३६}$ योजन प्राप्त होते हैं ॥४४-५३॥

अब लवणोदक समुद्र के प्रतिपालक नागकुमार आदि देवों के विमानों की संख्या को तीन स्थानों के आश्रय से कहते हैं—

बेलन्धराधिपा नागा नागैर्वेलन्धरैः समम्।
वसन्ति पर्वताग्रस्थनगरेषु मुदाम्बुधौ ॥५४॥
नागा द्व्यधिक चत्वारिंशत्सहस्त्रप्रमाः सदा।
अब्ध्यभ्यन्तरजां बेलां धारयन्ति नियोगतः ॥५५॥
द्वासप्ततिसहस्त्राश्च बाह्यवेलां जलोर्जिताम्।
धारयन्त्यम्बुधौ नागा जलक्रीडापरायणाः ॥५६॥
अष्टाविंशतिसंख्यातसहस्त्रनागनिर्जराः ।
महदग्रोदकं नित्यं धारयन्ति यथायथम् ॥५७॥

अर्थ—वेलन्धर नागकुमारों के स्वामी अपने वेलन्धर नागकुमारों के साथ पर्वतों के अग्रभाग पर स्थित नगरों में प्रति प्रसन्नतापूर्वक निवास करते हैं। लवणसमुद्र के अभ्यन्तर भाग (जम्बूद्वीप की ओर प्रविष्ट होने वाली वेला) की अपने नियोग से बयालीस हजार नागकुमार देव रक्षा करते हैं। समुद्र के बाह्यभाग (धातकीखण्ड द्वीप की ओर की वेला) को जलक्रीड़ा में परायण बहत्तर हजार नागकुमार देव धारण (रक्षा) करते हैं और जल के महान् अग्रभाग को अर्थात् सोलह हजार ऊँची जल राशि को निरन्तर अट्ठाईस हजार नागकुमार देव धारण करते हैं अर्थात् रक्षा करते हैं ॥५४-५७॥

नोट—तिलोयपण्णति, त्रिलोकसार और लोक विभाग में लवण समुद्र के बाह्याभ्यन्तर भाग में और शिखर पर जल से ऊपर आकाश तल में नागकुमार देवों के ४२०००, ७२००० और २८००० नगरों या विमानों का प्रमाण कहा है, देवों का नहीं।

अब लवणसमुद्र की वेदियों के आगे दिशाओं आदि में स्थित बत्तीस पर्वतों के नाम, प्रमाण एवं उनके आकार आदि का निरूपण करते हैं—

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अस्याम्बुधेश्च बाह्याभ्यन्तरवेदिकयोर्द्वयोः।
योजनानि द्विचत्वारिंशत्सहस्त्रप्रमाण्यपि ॥५८॥
तटमुत्सृज्य सन्त्येते चतुर्दिक्ष्वष्टपर्वताः।
कौस्तभः कौस्तभासोऽन्य एतौ पूर्वदिशि स्थितौ ॥५९॥
दक्षिणे स्त इमौ शैलौ ह्युदकाख्योदकप्रभौ।
अद्री शंखमहाशंखौ दिग्भागे पश्चिमे स्थितौ ॥६०॥
गदाद्रिगदवासाक्षो भवन्तश्चोत्तरेऽम्बुधौ।
इत्यमी पर्वता अष्टौ सहस्त्रयोजनोन्नताः ॥६१॥
सहस्त्रयोजनामूर्ध्नि विस्तीर्णाः शाश्वताः शुभाः।
कलशार्धसमाः श्वेतावनवेद्यादिभूषिताः ॥६२॥
तावन्ति योजनान्यब्धेर्मुक्त्वा वेद्यो द्वयोस्तटम्।
चतुर्विदिक्षु सन्त्यन्ये शैला अष्टौ मनोहराः ॥६३॥
तथा तेषां महाद्रीणामष्टस्वन्तरदिक्षु च।
भवन्ति वनवेद्याद्यैर्युताः षोडशपर्वताः ॥६४॥
गिरयो मिलिता एते निखिलाः कौस्तभादयः।
द्वात्रिंशत्संख्यका ज्ञेया लवणाब्धौ मनोहराः ॥६५॥

अर्थ—लवण समुद्र की बाह्याभ्यन्तर दोनों वेदियों के तटों से बयालीस हजार (४२०००) योजन आगे समुद्र में जाकर अर्थात् तट को छोड़कर पूर्वादि चारों दिशाओं में आठ पर्वत हैं, इनमें पूर्व दिशा में स्थित पर्वतों के नाम कौस्तुभ और कौस्तुभास हैं। दक्षिण दिशा में उदक एवं उदकप्रभ, पश्चिम में शंख और महाशंख तथा उत्तर दिशा में गद एवं गदवास नाम के पर्वत हैं। ये आठों पर्वत एक हजार योजन ऊँचे, शिखर पर एक हजार योजन चौड़े, शाश्वत, अत्यन्त मनोहर, अर्धकलश के आकार सदृश, श्वेत वर्ण को धारण करने वाले और वन एवं वेदियों आदि से विभूषित हैं ॥५८-६२॥

दोनों वेदियों के तटों से समुद्र को बयालीस हजार (४२०००) योजन छोड़कर चारों विदिशाओं में अत्यन्त मनोहर आठ अन्य पर्वत हैं तथा इन दिशा-विदिशा सम्बन्धी आठ युगल पर्वतों के आठ अन्तरालों में वन वेदी आदि से युक्त सोलह पर्वत हैं। इन कौस्तभ आदि समस्त पर्वतों का योग करने पर लवण समुद्र में मन को हरण करने वाले बत्तीस पर्वत जानना चाहिए ॥६३-६५॥

नोट—त्रिलोकसार आदि ग्रन्थों में इन बत्तीस पर्वतों का अवस्थान दिशाओं-विदिशाओं गत पातालों के दोनों पार्श्व भागों में कहा गया है।

उन पर्वतों के ऊपर स्थित द्वीपों को और पर्वतों के स्वामियों को कहते हैं—

एषामुपरि सर्वेषां द्वीपाः स्युः प्रवरा युताः।
नाना प्रासादसद्वेदीप्रोद्यानगोपुरादिभिः ॥६६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

तेषु द्वीपस्थसौधेषु वसन्ति व्यन्तरामराः।
तुङ्गेषु स्वस्वशैलेन समनामान ऊर्जिताः ॥६७॥

अर्थ—इन सम्पूर्ण पर्वतों के ऊपर द्वीप हैं, जो अनेक कमरों वाले प्रासादों से उत्तम वेदियों, उद्यानों और गोपुरों आदि से संयुक्त हैं। उन द्वीप स्थित ऊँचे ऊँचे प्रासादों में अपने-अपने पर्वतों के नाम सदृश नाम वाले व्यन्तर देव रहते हैं ॥६६-६७॥

अब वायव्य दिशा में स्थित गोतम द्वीप, उसके ऊपर स्थित प्रासाद और उसके रक्षक देव का सविस्तार वर्णन करते हैं—

अब्धेस्तीराद् द्विषट्संख्य सहस्त्रयोजनान्यपि।
शैलोऽस्ति वायुदिक्कोणे गोतमाख्योऽतिसुन्दरः ॥६८॥
तत्समोदयविस्तीर्णो वनवेद्याद्यलंकृतः।
विचित्रवर्णनोपेतः शाश्वतः सुरसंकुलः ॥६९॥
तस्योपरिमहान् द्वीपो गोतमाख्योऽतिभास्वरः।
स्वर्णवेदी स्फुरद्रत्नप्रासादवनगोपुरैः ॥७०॥
तस्याग्रे भवनं तुङ्गं सार्धद्विषष्टियोजनैः।
तदर्धविस्तरायामं क्रोशद्वयावगाहभाक् ॥७१॥
नानारत्नमयं स्याच्च द्वारेणाऽलंकृतं महत्।
अष्टयोजनतुङ्गेन चतुर्व्यासयुतेन च ॥७२॥
गोतमाख्योऽमरस्तत्र वसेत् पल्यैकजीवितः।
दशचापोच्च दिव्याङ्गः स्वदेवीसुरभूषितः ॥७३॥

अर्थ—लवण समुद्र से १२००० योजन दूर जाकर वायव्य दिशा में स्थित गोतम नाम का अति सुन्दर पर्वत है, जो १२००० योजन ऊँचा, १२००० योजन चौड़ा, वन वेदियों से अलंकृत नाना प्रकार की रचना से युक्त, शाश्वत और अनेक देवगणों से युक्त है। उस पर्वत के ऊपर गोतम नाम का एक महान द्वीप है, जो स्वर्णमय वेदी, तेजोमय रत्नों के प्रासादों, वनों एवं गोपुरद्वारों से देदीप्यमान है। उस द्वीप के (ऊपर) आगे साढ़े बासठ योजन ऊँचा, सवा इकतीस ($३१\frac{१}{४}$) योजन लम्बा और दो कोश की अवगाह (नींव) से युक्त भवन है। जो विविध प्रकार के रत्नमय, आठ योजन ऊँचे और चार योजन चौड़े द्वारों से अलंकृत है। उस भवन में एक पल्य की आयु से युक्त और दश धनुष ऊँचे दिव्य शरीर को धारण करने वाला गोतम नाम का देव अपने परिवार देव देवियों के साथ निवास करता है ॥६८-७३॥

अब लवण समुद्र के अभ्यन्तर तट सम्बन्धी २४ अन्तर द्वीपों का सविस्तार वर्णन करते हैं—

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब्धेर्वेदीतटाद्गत्वा शतपञ्चप्रमाणि च।
योजनानि चतुर्दिक्षु सन्ति द्वीपाश्चतुःप्रमाः ॥७४॥
शतयोजनविस्तीर्णाः कुभोगभूनरान्विताः।
पुनस्त्यक्त्वाम्बुधेस्तीरं तावन्ति योजनानि च ॥७५॥
चतुर्विदिक्षु चत्वारः स्युर्द्वीपा विस्तृताः स्फुटम्।
योजनैः पञ्चपञ्चाशत्प्रमैः कुनृयुगाश्रिताः ॥७६॥
योजनानि विहायाब्धेः सार्धं पंचशतानि च।
दिग्विदिग्मध्यभागाष्टान्तरदिक्षुक्षयातिगाः ॥७७॥
पञ्चाशद्योजनव्यासा द्वीपा अष्टौ भवन्ति वै।
पार्श्वयोश्च द्वयोरब्धौ हिमवद्विजयार्धयोः ॥७८॥
रूप्याचलशिखर्यद्र्योः प्रत्येकं योजनान्यपि।
षट्शतानि विमुच्यस्तो द्वौ द्वौ द्वीपौ पृथक् पृथक् ॥७९॥
कुलाद्रिद्वयरूप्याद्रिद्वयान्तमस्तकाश्रिताः ।
भवेयुर्मेलिता अष्टौ द्वीपाः सर्वे सुविस्तृताः ॥८०॥
योजनैः पंचविंशत्या कुत्सिताभोगभूयुताः।
समस्ताः पिण्डिता एते चतुर्विंशति सम्मिताः ॥८१॥
तोयोदयावगाहस्य संयोगेन समोन्नताः।
सर्वे द्वीपा जलादूर्ध्वं योजनैकोच्छ्रिता मताः ॥८२॥

अर्थ—लवण समुद्र की वेदी के तट से ५०० योजन आगे जाकर चारों दिशाओं में सौ-सौ योजन चौड़े और कुभोगभूमिज मनुष्यों से संकुलित चार द्वीप हैं। पुनः समुद्र तीर से ५०० योजन आगे जाकर चारों विदिशाओं में ५५ योजन विस्तार वाले और कुभोगभूमिज मनुष्य युगलों से भरे हुए चार द्वीप हैं। समुद्र तट को ५५० योजन छोड़ कर दिशाओं और विदिशाओं के मध्य आठ विदिशाओं में कभी नाश न होने वाले और ५० योजन विस्तार वाले आठ द्वीप हैं। समुद्र के दोनों पार्श्व भागों में हिमवन् कुलाचल, (भरतक्षेत्र सम्बन्धी) विजयार्ध पर्वत, शिखरी कुलाचल और (ऐरावत क्षेत्र सम्बन्धी) विजयार्ध पर्वत, इन प्रत्येक को छह सौ-छह सौ योजन छोड़कर दोनों कुलाचलों और दोनों विजयार्धों के अन्तिम भागों का आश्रय कर पृथक्-पृथक् दो-दो द्वीप हैं। ये सब एकत्रित कर देने पर आठ द्वीप होते हैं। ये आठों द्वीप पच्चीस-पच्चीस योजन विस्तार वाले और कुभोगभूमिज जीवों से संकुलित हैं। इन समस्त द्वीपों का योग २४ होता है। समभूमि से नीचे जल की गहराई और समभूमि से जल की ऊँचाई इन दोनों का योग कर देने पर जल के अवगाह का प्रमाण प्राप्त होता है। अर्थात् (वेदी सहित) सर्व द्वीप जल से एक-एक योजन ऊँचे हैं ॥७४-८२॥

नोट—लवण समुद्र के (२४+२४)=४८ द्वीपों का चित्रण श्लोक १०२ में दिया गया है।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब कुभोगभूमिज मनुष्यों की आकृति, आयु, वर्ण, आहार और उनके रहने के स्थान आदि का वर्णन करते हैं—

एकोरुकाः सशृङ्गलांगुलिनोऽथाप्यभाषिणः।
पूर्वादिषु चतुर्दिक्षु वसन्त्येते क्रमान्नराः ॥८३॥
शशकर्णाः कुमर्त्याश्च सन्ति शष्कुलि कर्णकाः।
कर्णप्रावरणा लम्बकर्णाश्चतुर्विदिक्षु वै ॥८४॥
सिंहाश्वमहिषोलूक-व्याघ्र-सूकरगोमुखाः ।
कपिवक्त्रा वसन्त्यष्टान्तरदिक्षु कुमानुषाः ॥८५॥
मत्स्यकालमुखा मेघविद्युद्वक्त्रा वसन्ति च।
हिमाद्रेर्विजयार्द्धस्य पूर्वपश्चिमभागयोः ॥८६॥
गजदर्पणमेषाश्व वदनाः कुत्सिता नराः।
स्यू रूपाद्रिशिखर्यद्र्योरुभयोः पार्श्वयोः क्रमात् ॥८७॥
एषु द्वीपेषु सर्वेषु प्राप्य जन्म सुगर्भतः।
दिनैरेकोन पञ्चाशत्प्रमैर्लब्ध्वा सुयौवनम् ॥८८॥
स्त्रीमर्त्ययुग्मरूपेण रोगक्लेशादिवर्जिता।
पल्यैकजीविनः पंचवर्णाः क्रोशोन्नता नराः ॥८९॥
नानाकायमुखाकारा भुञ्जन्ति नीचपुण्यतः।
नीचान् भोगान् सदा तत्रत्याः कुभोगधरासु च ॥९०॥
एको रुका गुहायां च वसन्ति कान्तया समस्।
मधुरं मृण्मयाहारमाहरन्ति सुखावहम् ॥९१॥
स्वसमस्त्रीयुताः शेषावृक्षमूलाधिवासिनः।
भुञ्जन्ति तृप्तये सर्वे पत्रपुष्पफलानि च ॥९२॥
आयुषोऽन्तेऽप्यसून् मुक्त्वा विश्वे मन्दकषायिणः।
ज्योतिर्भावनभौमानां ते जायन्ते सुवेश्मसु ॥९३॥
तेषु ये प्राप्तसम्यक्त्वाः काललब्ध्या व्रजन्ति ते।
सौधर्मैशानकल्पौ च नान्यत्र दृष्टिपुण्यतः ॥९४॥

अर्थ—लवण समुद्र की पूर्वादि चारों दिशाओं के द्वीपों में क्रम से एकोरुक, सशृंग अर्थात् वैषाणिक, लांगुलिक और अभाषक ये चार प्रकार के मनुष्य रहते हैं। चारों विदिशाओं के चार द्वीपों में क्रम से शशकर्णा, शष्कुलिकर्ण, कर्णप्रावरण और लम्बकर्ण ये चार प्रकार के कुमानुष रहते हैं। आठ अन्तरालों की आठ दिशाओं में स्थित द्वीपों में क्रम से सिंह, अश्व, भैंसा, उल्लू, व्याघ्र, सूकर, गाय और बन्दर सदृश मुख वाले कुमानुष रहते हैं। हिमवान् पर्वत और विजयार्ध पर्वत के पूर्व पश्चिम भाग में मछलीमुख, कालमुख, मेघमुख और विद्युत्मुख वाले कुमनुष्य रहते हैं अर्थात् पूर्व में मछलीमुख,

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

पश्चिम में कालमुख, पूर्व में मेघमुख और पश्चिम में विद्युत्मुख वाले मनुष्य रहते हैं। विजयार्ध और शिखरी पर्वत के दोनों पार्श्व भागों में क्रमशः गज, दर्पण, मेष और अश्वमुख अर्थात् पूर्व में गजमुख, पश्चिम में दर्पणमुख, पूर्व में मेषमुख और पश्चिम में अश्वमुख वाले कुमनुष्य निवास करते हैं। इन समस्त द्वीपों में स्त्री-पुरुष दोनों का युगल रूप से गर्भ जन्म होता है, ये रोग और क्लेश आदि से रहित होते हैं तथा ४९ दिनों में पूर्ण यौवन प्राप्त कर लेते हैं। इनकी आयु एक पल्य की, शरीर पाँच वर्णों का और शरीर की ऊँचाई एक कोश की होती है। विविध प्रकार के शरीराकार और मुखाकार को धारण करने वाले ये कुमनुष्य पूर्व जन्म में (अपने व्रतों में लगे हुए दोषों की) निन्दा, गर्हा रहित, व्रत, तप पालन करने से उत्पन्न नीच पुण्य के योग से इन कुभोग भूमियों में निरन्तर नीच भोग भोगते हैं। चारों दिशाओं में निवास करने वाले एकोरुक आदि मनुष्य अपनी स्त्रियों के साथ गुफाओं में रहते हैं और सुख प्रदान करने वाली अति मधुर मिट्टी का आहार करते हैं। शेष कुमनुष्य अपने सदृश आकार वाली अपनी-अपनी स्त्रियों के साथ वृक्षों के मूल भाग में निवास करते हैं और क्षुधा शान्ति के लिये सर्व प्रकार के पत्र, पुष्प और फल खाते हैं। ये सब भोग कुभूमिज जीव मन्दकषायी होते हैं और आयु के अन्त में प्राणों को छोड़कर भवनवासी, व्यन्तरवासी और ज्योतिषी देवों के भवनों आदि में उत्पन्न होते हैं। इन कुभोगभूमिज जीवों में काललब्धि के प्रभाव से जो जीव सम्यग्दर्शन ग्रहण कर लेते हैं, वे सौधर्मैशान कल्प में उत्पन्न होते हैं, वे सम्यक्त्वरूपी पुण्य के प्रभाव से अन्यत्र (भवनत्रिक में) उत्पन्न नहीं होते हैं ॥८३-९४॥

कुभोगभूमियों में कौन जीव उत्पन्न होते हैं? उसे कहते हैं–

येऽर्हल्लिङ्गे प्रपंचत्वादिकारिणः कुमार्गगाः।
अनालोचनपूर्वं ये तपोवृत्तं चरन्ति च॥९५॥
परेषां ये विवाहादिपापानुमतिकारिणः।
ज्योतिष्कमन्त्रतन्त्रादिवैद्यकर्मोपजीविनः ॥९६॥
पंचाग्न्यादितपोनिष्ठा ये दृगादिविराधिन।
कुज्ञानकुतपोयुक्ता मौनहीनान्नभोजिनः ॥६७॥
कुकुलेषु च दुर्भावसूतकादियुतेषु वा।
आहारग्रहणोद्युक्ताः सदोषाशनसेविनः ॥९८॥
इत्यादिशिथिलाचारा मायाविनोऽक्षलम्पटाः।
शुद्धिहीनाश्च ते सर्वे स्युः कुपात्राणि लिङ्गिनः ॥९९॥
तेभ्यः कुपात्रलिङ्गिभ्यो दानं ददति ये शठाः।
ते कुपुण्यांशतो जन्म लभन्तेऽत्र कुभूमिषु ॥१००॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

जघन्यभोगभूमौ या मृत्युत्पत्त्यादिका स्थितिः।
सा ज्ञेया कुमनुष्याणां कुत्सिता भोगभूमिषु ॥१०१॥

अर्थ—जो कुमार्गगामी जीव जिनलिंग को धारण करके प्रपञ्च आदि करते हैं, आलोचना किये बिना ही व्रतों एवं तपों का आचरण करते हैं, जो विवाह आदि की एवं और भी अन्य सावद्य कार्यों की अनुमति देते हैं। ज्योतिष, मन्त्र, तन्त्र एवं वैद्यक आदि कार्यों द्वारा उपजीविका अर्थात् आहार आदि प्राप्त करते हैं। पंचाग्नि आदि मिथ्या तपों में निष्ठा रखते हैं। जो सम्यग्दर्शन की विराधना करते हैं, कुज्ञान और कुतप से युक्त हैं, मौन छोड़कर भोजन करते हैं। निन्द्य कुलों में, दुष्ट स्वभाव (दुर्भावना) से युक्त एवं सूतक आदि से युक्त गृहों में आहार ग्रहण करते हैं। ४६ दोषों को न टालते हुए सदोष आहार ग्रहण करते हैं, अनेक प्रकार के शिथिलाचार से युक्त हैं, मायावी हैं, इन्द्रिय लम्पट हैं और बाह्याभ्यन्तर शुद्धता से रहित हैं, वे सब लिंगी कुपात्र हैं और मर कर कुभोग भूमियों में जन्म लेते हैं और जो मूर्ख जन ऐसे कुपात्रों एवं लिंगधारियों को दान देते हैं वे सब खोटे पुण्य अंशों से कुभोगभूमियों में जन्म लेते हैं ॥९५-१००॥

नोट—यही विषय त्रिलोकसार गाथा ९२२ से ९२४, तिलोयपण्णति अधिकार चतुर्थ गाथा २५०३ से २५११, जम्बूद्वीपपण्णति सर्ग १० गाथा ५९ से ६९ में द्रष्टव्य है।

जघन्य भोगभूमि में जीवों की जन्म, मरण एवं आयु आदि की जो व्यवस्था है, कुभोगभूमिज मनुष्यों की भी सभी व्यवस्थाएँ वैसी ही जानना ॥१०१॥

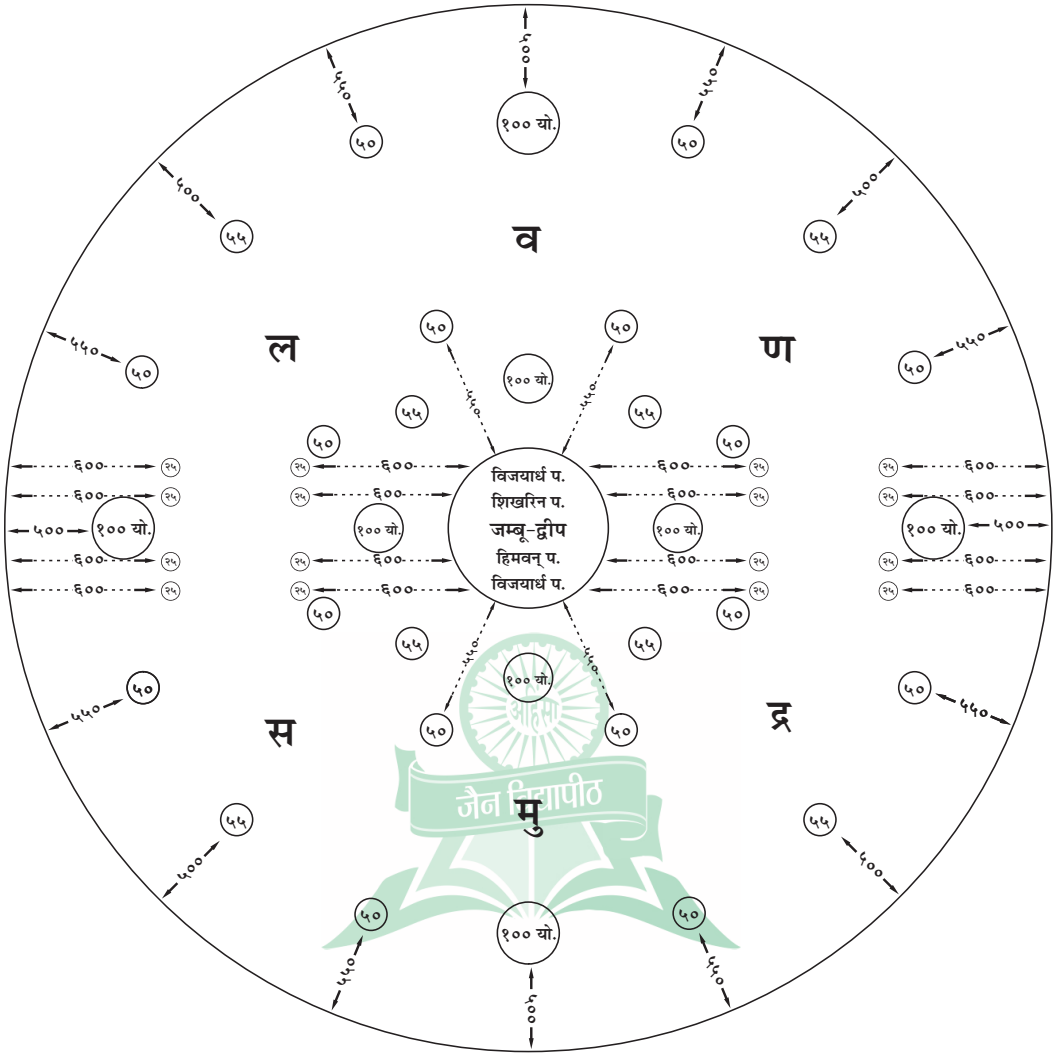
अब लवण समुद्र के अन्य २४ द्वीप कहते हैं—

तथा चेदृग्विधा द्वीपाश्चतुर्विंशतिसंख्यकाः।
भवन्ति धातकीखण्डनिकटे लवणार्णवे ॥१०२॥

अर्थ—लवणसमुद्र में जम्बूद्वीप के निकट जिस प्रकार से चौबीस द्वीप कहे हैं, वैसे ही धातकीखण्ड के समीप भी २४ ही द्वीप हैं ॥१०२॥ इस प्रकार लवणसमुद्र में ४८ द्वीप हैं।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

जिनका चित्रण निम्न प्रकार है–



अब कालोदधि समुद्र के २४ द्वीप कहकर सम्पूर्ण द्वीपों की संख्या दर्शाते हैं–

कालोदजलधेस्तद्वत् सन्त्येवोभयभागयोः।
द्वीपाः सर्वेऽष्टचत्वारिंशत्कुभोगमहीयुताः ॥१०३॥
विश्वेऽमी पिण्डिता द्वीपा अब्धिद्वयान्तरे स्थिताः।
कुभोगभूनराकीर्णा ज्ञेयाः षण्णवतिप्रमाः ॥१०४॥

अर्थ–लवणसमुद्र के सदृश कालोदधि समुद्र के बाह्याभ्यन्तर दोनों भागों में भी चौबीस-चौबीस द्वीप हैं। ये सम्पूर्ण द्वीप ४८ कुभोगभूमियों से युक्त हैं। कालोदधि और लवण इन दोनों समुद्रों के अभ्यन्तर भाग में स्थित अड़तालीस-अड़तालीस द्वीपों का योग कर देने पर कुभोगभूमिज मनुष्यों से व्याप्त ९६ अन्तर्द्वीप प्राप्त होते हैं ॥१०३-१०४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब लवण समुद्र का अवगाह और उसकी सूक्ष्म परिधि का प्रमाण आदि कहते हैं—

मध्यभागेऽवगाहोऽस्य सहस्रयोजनप्रमः।
मक्षिकापक्षसादृश्यश्चान्ते पातालवर्जितः ॥१०५॥
पञ्चाग्रदशलक्षाणि ह्येकाशीतिप्रमाण्यपि।
सहस्राणि शतं चैकोनचत्वारिंशदेव हि ॥१०६॥
योजनानामिति ख्यातसंख्यया लवणाम्बुधौ।
परिधिः प्रोदिता सूक्ष्मा किञ्चिदूना जिनागमे ॥१०७॥
एवं नाना गिरिद्वीपादियुतो लवणार्णवः।
जम्बूद्वीपपरिक्षेपावृतोऽत्र वर्णितो बुधैः ॥१०८॥
वेलाः पातालरन्ध्राणि वृद्धिहानिशिखादयः।
विद्यन्ते लवणाब्धौ च न शेषा संख्यवार्धिषु।१०९॥
यतः शेषार्णवाः सर्वे टङ्कोत्कीर्णा इवोर्जिताः।
सहस्रयोजनागाहा वृद्धिह्रासातिगाः स्मृताः ॥११०॥

अर्थ—लवणसमुद्र के बड़वानलों का मध्य भाग में जल का अवगाह (गहराई) एक हजार योजन है और अन्त में अर्थात् समुद्र के किनारों पर जल मक्खी के पंख सदृश पतला है। जिनागम में लवण समुद्र की सूक्ष्म परिधि का प्रमाण कुछ कम पन्द्रह लाख इक्यासी हजार एक सौ उनतालीस (१५८११३९) योजन कही गई है। विद्वानों ने लवण समुद्र को अनेकों पर्वतों एवं द्वीपों से युक्त, जम्बूद्वीप को वेष्टित किये हुए और चूड़ी सदृश वलयाकार कहा है। वेला, पातालविवर, जल में हानि वृद्धि एवं शिखा सदृश जल की ऊँचाई अर्थात् जल की शिखा केवल लवणसमुद्र में ही है, अन्य असंख्यात समुद्रों में नहीं हैं। इसलिए शेष सब समुद्र टंकोत्कीर्ण के सदृश, एक हजार योजन अवगाह से युक्त और हानि वृद्धि रूप विकार से रहित कहे गये हैं ॥१०५-११०॥

ततोऽस्ति वलयाकारी धातकीवृक्षलक्षितः।
योजनानां चतुर्लक्षैर्विस्तीर्णो हि द्विधाव्ययः ॥१११॥
द्वितीयो धातकीखण्डद्वीपस्तस्य द्वयोर्दिशोः।
दक्षिणोत्तरयोः स्यातामिक्ष्वाकाराख्यपर्वतौ ॥११२॥
सहस्रयोजनव्यासौ चतुःशतसुयोजनैः।
उन्नतौ सच्चतुःकूटैः प्रत्येकं मूर्ध्नि भूषितौ ॥११३॥
एकैक श्रीजिनागारालंकृतौ काञ्चनप्रभौ।
लवणाम्बुधिकालोदवेद्यन्तस्पर्शिनौ परौ ॥११४॥
ताभ्यां स धातकीखण्डो द्विधाभेदमुपाश्रितः।
पूर्वाख्यो धातकीखण्ड एकोऽन्योऽपरसंज्ञकः ॥११५॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

एतस्याभ्यन्तरा सूची पञ्चलक्षप्रमाणिका।
मध्यमा नव लक्षा च बाह्या जिनागमे मता ॥११६॥
योजनानां जिनाधीशैर्लक्षत्रयोदशप्रमा।
सूचीनां त्रिगुणा सर्वा स्थूला परिधिरुच्यते ॥११७॥
लक्षाः पञ्चदशैकाशीतिसहस्राः शतं तथा।
योजनानां किलैकोनचत्वारिंशदिति स्फुटम् ॥११८॥
परिधिः प्रोदिता पूर्वसूच्या दक्षैर्जिनागमे।
अष्टाविंशतिलक्षाः षट्चत्वारिंशत्सहस्त्रकाः ॥११९॥
तथैवैकोन पञ्चाशत् परिधिश्चेति मध्यमा।
लक्षाणि चैकचत्वारिंशद्वशैव सहस्त्रकाः ॥१२०॥
शतानि नव चैकाग्रषष्टिरित्यङ्कयोजनैः।
तद्द्वीपे बाह्यसूच्या हि कीर्तिता परिधिर्जिनैः ॥१२१॥

अर्थ—लवणसमुद्र के बाद वलयाकार, धातकी वृक्ष से युक्त, चार लाख योजन प्रमाण व्यास वाला, पूर्व और पश्चिम के भेद से दो भेद वाला और अविनाशी धातकीखण्ड नाम का दूसरा द्वीप है। इस द्वीप की उत्तर-दक्षिण दोनों दिशाओं में दो इष्वाकार पर्वत हैं। जो (पूर्व-पश्चिम) एक हजार योजन चौड़े, चार सौ योजन ऊँचे (और दक्षिणोत्तर लम्बे) हैं। ये दोनों पर्वत काञ्चन वर्ण वाले हैं और इनके शिखर चार-चार कूटों से सुशोभित हैं। वे इष्वाकार पर्वत एक एक जिनमन्दिर से विभूषित हैं, तथा लवणसमुद्र और कालोदधि समुद्र की वेदियों को स्पर्श करते हैं। उन इष्वाकार पर्वतों से वह धातकीखण्ड पूर्व धातकीखण्ड और पश्चिम धातकीखण्ड के नाम से दो प्रकार वाला है। जिनेन्द्र भगवंतों के द्वारा जिनागम में धातकीखण्ड का अभ्यंतर सूची व्यास पाँच लाख योजन, मध्यम सूची व्यास नौ लाख योजन और बाह्य सूची व्यास तेरह लाख योजन प्रमाण कहा गया है। तीनों सूची व्यासों का तिगुना तीनों स्थूल परिधियों का प्रमाण होता है। अर्थात् अभ्यन्तर सूची व्यास की स्थूल परिधि पन्द्रह लाख, मध्यम परिधि सत्ताइस लाख और बाह्य सूची व्यास की स्थूल परिधि का प्रमाण उन्तालीस लाख योजन है। जिनागम में विद्वानों के द्वारा धातकीखण्ड की अभ्यन्तर सूक्ष्म परिधि का प्रमाण पंद्रह लाख इक्यासी हजार एक सौ उन्तालीस (१५८११३९) योजन कहा गया है। मध्यम सूक्ष्म परिधि का प्रमाण अट्ठाइस लाख छियालीस हजार उनचास (२८४६०४९) योजन और बाह्य सूची व्यास की सूक्ष्म परिधि का प्रमाण जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा इकतालीस लाख दश हजार नौ सौ इकसठ (४११०९६१) योजन कहा गया है ॥१११-१२१॥

अब धातकीखण्डस्थ मेरु पर्वतों का अवस्थान, भरतादि क्षेत्रों का आयाम और हिमवान् आदि पर्वतों का उत्सेध एवं विस्तार आदि दर्शाकर दृष्टान्त द्वारा इनके आकारों का वर्णन करते हैं—

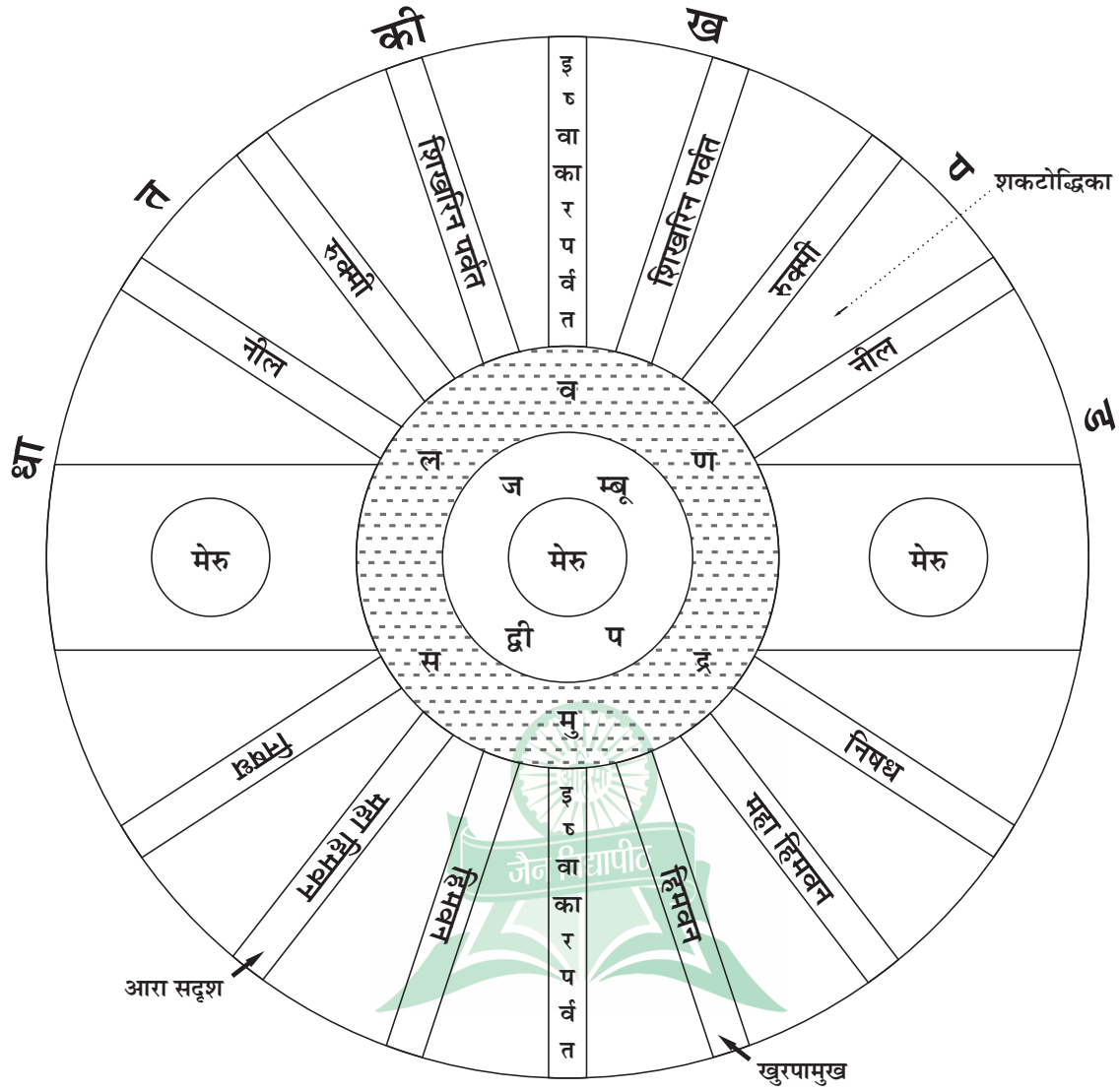
FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

महामेरोश्च मेरूद्वौ पूर्वापरौ हि क्षुल्लकौ।
स्तो मध्यभागयोर्धातकीखण्डद्वीपयोर्द्वयोः ॥१२२॥
मेरोर्दक्षिणदिग्भागाद् भरतादीनि सप्त च।
क्षेत्राणि योजनानां स्युश्चतुर्लक्षायतान्यपि ॥१२३॥
योजनानां चतुर्लक्षैरायामा षट् कुलाद्रयः।
हिमाद्र्याद्याः समोत्सेधा जम्बूद्वीपकुलाचलैः ॥१२४॥
आद्यद्वीपकुलाद्रिभ्यो सर्वेभ्यो विस्तरान्विताः।
प्रत्येकं द्विगुणव्यासेनैव सन्ति मनोहराः ॥१२५॥
चक्रस्येह यथाराश्च मध्ये छिद्राणि चारयोः।
द्वीपस्यास्य तथा सन्ति ह्याराकाराः कुलाद्रयः ॥१२६॥
अरान्तरन्ध्रतुल्यानि क्षेत्राणि निखिलानि च।
सङ्कीर्णानि निजाभ्यन्तरे बाह्ये विस्तृतान्यपि ॥१२७॥

अर्थ—दोनों धातकीखण्ड द्वीपों (पूर्व धातकी, पश्चिम धातकी खण्डों) के ठीक मध्य भाग में पूर्व, पश्चिम दिशा में एक-एक मेरु पर्वत अवस्थित हैं। मेरु पर्वतों की दक्षिण दिशा से प्रारम्भ कर भरत, हैमवत आदि सात-सात क्षेत्र हैं, जो चार-चार लाख योजन प्रमाण लम्बे हैं। भरत आदि क्षेत्रों के मध्य हिमवन् आदि छह-छह कुलाचल पर्वत हैं। इन कुलाचलों का आयाम चार-चार लाख योजन प्रमाण और उत्सेध जम्बूद्वीपस्थ कुलाचलों के सदृश अर्थात् १००, २००, ४००, ४००, २०० और १०० योजन प्रमाण है किन्तु धातकीखण्डस्थ कुलाचलों आदि का विष्कम्भ विस्तार जम्बूद्वीपस्थ कुलाचलों के विस्तार से दुगुने-दुगुने प्रमाण वाला है। जिस प्रकार चक्र-पहिया में आरा होते हैं और आरों के मध्य भाग में छिद्र होते हैं, इसी प्रकार इस धातकीखण्ड में स्थित कुलाचल आरों के सदृश हैं और उनके मध्य स्थित क्षेत्रों में भरतादि सभी क्षेत्र स्थित हैं, जो अभ्यन्तर अर्थात् लवण समुद्र की ओर संकीर्ण तथा बाह्य अर्थात् कालोदधि की ओर विस्तीर्ण हैं ॥१२२-१२७॥

इसका चित्रण अगले पृष्ठ पर है—

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY



अब धातकीखण्ड के पर्वत अवरुद्ध क्षेत्र का प्रमाण और इस क्षेत्र से रहित द्वीप की तीनों परिधियों का प्रमाण कहते हैं–

एकलक्षसहस्राण्यष्टसप्ततिः शताष्टकम्।
योजनानां द्विचत्वारिंशच्चेति संख्यया मतम् ॥१२८॥
तत् क्षेत्रं पर्वतै रुद्धं शेषं पर्वतवर्जितम्।
त्रिधापरिधिभेदेन क्षेत्रं त्रिविधमुच्यते ॥१२९॥
चतुर्दशैव लक्षाणि द्वे सहस्रे शतद्वयम्।
सप्ताग्रानवतिश्चेति योजनानां हि संख्यया ॥१३०॥
जघन्यपरिधेर्ज्ञेयं क्षेत्रं सर्वाचलातिगम्।
षड्विंशतिश्च लक्षाणि सप्तषष्टिसहस्रकाः ॥१३१॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सप्तोत्तरशते द्वे चेत्यङ्कयोजनविस्तरैः।
मध्यमापरिधेः क्षेत्रं भवेत्पर्वतदूरगम् ॥१३२॥
लक्षा एकोनचत्वारिंशद् द्वात्रिंशत्सहस्त्रकाः।
तथा शतैकमेकोनविंशतियोजनानि च ॥१३३॥
इत्येवं पर्वतातीतं क्षेत्रं सर्वं मतं जिनैः।
उत्कृष्टपरिधेर्धातकीखण्डस्यास्य पिण्डितम् ॥१३४॥

अर्थ—धातकीखण्ड में पर्वतों से अविरुद्ध क्षेत्र का प्रमाण एक लाख अठहत्तर हजार आठ सौ बयालीस (१७८८४२$\frac{२}{११}$) योजन है। (इस क्षेत्र को प्राप्त करने का विधान त्रिलोकसार गाथा ९२८ की टीका से ज्ञातव्य है।) इस क्षेत्र के अतिरिक्त सर्व क्षेत्र, पर्वत क्षेत्र से रहित है, जो तीन प्रकार की परिधियों के भेद से तीन प्रकार का कहा गया है। लवणोदधि के समीप जघन्य परिधि का पर्वत रहित क्षेत्र अर्थात् पर्वत रहित जघन्य परिधि का प्रमाण (१५८११३९-१७८८४२)=१४०२२९७ योजन, पर्वत रहित मध्यम परिधि का प्रमाण (२८४६०५०-१७८८४२)=२६६७२०७ योजन और पर्वत रहित बाह्य (उत्कृष्ट) परिधि का प्रमाण (४११०९६१-१७८८४२)=३९३२११९ योजन है। इस प्रकार जिनेन्द्र देव के द्वारा पर्वत रहित तीनों परिधियों का प्रमाण कहा गया है ॥१२८-१३४॥

अब धातकीखण्ड स्थित क्षेत्रों एवं पर्वतों का विष्कम्भ कहते हैं—

क्षेत्राच्चतुर्गुणं क्षेत्रं विदेहान्तमिह स्मृतम्।
ततश्चतुर्गुणोनान्युत्तरक्षेत्रत्रयाणि च ॥१३५॥
जम्बूद्वीपहिमाद्रेः स्यादत्रत्यो हिमवान्महान्।
द्विगुणव्याससंयुक्तो हिमाद्रेरपराचलौ ॥१३६॥
चतुश्चतुर्गुणाव्यासैर्विस्तृतौ चोत्तराद्रयः।
नीलादयस्त्रयो ज्ञेया हिमाद्र्यादि त्रिकैः समाः ॥१३७॥

अर्थ—दोनों धातकीखण्डों के भरतादि क्षेत्रों का क्षेत्र से क्षेत्र के विष्कम्भ विदेह पर्यन्त चौगुने-चौगुने हैं और विदेह के बाद उत्तर दिशा सम्बन्धी क्षेत्रों का विष्कम्भ चौगुना-चौगुना हीन-हीन है। अर्थात् भरत क्षेत्र से विदेह पर्यन्त और ऐरावत क्षेत्र से विदेह पर्यन्त क्षेत्रों का विष्कम्भ क्रमशः चौगुना है। जम्बूद्वीपस्थ हिमवन् पर्वत से धातकीखण्डस्थ हिमवन् पर्वत का विष्कम्भ दूना है, और धातकीखण्डस्थ हिमवन् के विस्तार से निषध कुलाचल तक का विस्तार क्रमशः चौगुना है तथा उत्तर दिशागत नील आदि तीनों पर्वतों का विष्कम्भ निषध, महाहिमवन् और हिमवान् पर्वतों के सदृश समझना चाहिए ॥१३५-१३७॥

अथ क्षेत्रकुलाचलानां प्रत्येकं विष्कम्भः कथ्यते—

भरतस्याभ्यन्तरविस्तृतिः षट्सहस्र-षट्शतचतुर्दशयोजनानि योजनस्य द्विशतद्वादशोत्तरभागानां

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

एकोनत्रिंशदधिकशतभागाश्च। मध्यव्यासः द्वादशसहस्रपञ्चशतैकाशीतियोजनानि, द्विशतद्वादशोत्तर भागानां षट्त्रिंशद्भागाः। बाह्यविष्कंभः अष्टादशसहस्रपञ्चशतसप्तचत्वारिंशद्योजनानि द्विशतद्वादशोत्तरभागानां पञ्चपञ्चाशदग्रशतभागाश्च।

हैमवतस्याभ्यन्तरविस्तारः षड्विंशतिसहस्रचतुःशताष्टपञ्चाशद्योजनानि, द्विशतद्वादशोत्तर भागानां द्विनवतिभागाः। मध्यविष्कम्भः पञ्चाशत्सहस्रत्रिशतचतुर्विंशतियोजनानि, योजनस्य द्विशतद्वादशोत्तरभागानां चतुश्चत्वारिंशदग्रशतभागाश्च। बाह्यव्यासः चतुःसप्ततिसहस्रैकशतनवतियोजनानि योजनस्य द्विशतद्वादश-भागानां षट्पञ्चाशदधिकशतभागाश्च।

हरिवर्षस्याभ्यन्तरविष्कम्भ-एकलक्षपञ्चसहस्राष्टशतत्रयस्त्रिंशद्योजनानि, योजनस्य द्वादशाग्रद्वि-शत-भागानां षट्पञ्चाशदधिकशतभागाश्च। मध्यव्यासः द्विलक्षैकसहस्रद्विशताष्टनवतियोजनानि योजनस्य द्विशतद्वादशभागानां द्विपञ्चाशदग्रशतभागाश्च। बाह्यविस्तरः द्विलक्षषण्णवति सहस्रसप्त-शतत्रिषष्टि-योजनानि, योजनस्य द्विशतद्वादशभागानां अष्टचत्वारिंशदधिकशतभागाः।

विदेहक्षेत्रस्याभ्यन्तरविष्कम्भः-चतुर्लक्षत्रयोविंशतिसहस्रत्रिशतचतुस्त्रिंशद्योजनानि, योजनस्य द्विशतद्वादशभागानां द्विशतभागाश्च। मध्ये विस्तृतिः अष्टलक्षपञ्चसहस्रैकशतचतुर्णवतियोजनानि, योजनस्य द्विशतद्वादशभागानां चतुरशीत्यग्रशतभागाः। बाह्यविस्तरः एकादशलक्षसप्ताशीति सहस्र-चतुःपञ्चाशद्योजनानि, योजनस्य द्विशतद्वादशभागानां अष्टषष्ट्यग्रशतभागाः एवं रम्यकस्य हरिवर्ष विष्कम्भेन समस्त्रिविधो विष्कम्भोऽस्ति। हैरण्यवतस्य त्रिधा व्यासः हैमवतव्याससमो भवेत्। ऐरावतस्याभ्यन्तरमध्यबाह्यविष्कम्भाः भरतविष्कम्भसमानाः स्युः। इति पूर्वापरधातकीखण्डयोर्द्वयोः भरतादिसप्तक्षेत्राणामभ्यन्तरमध्यबाह्यविष्कम्भाः ज्ञातव्याः।

नोट—उपयुक्त गद्य का सम्पूर्ण अर्थ निम्नांकित तालिका में निहित है।

धातकीखण्डद्वीपस्थ भरतादि सात क्षेत्रों का अभ्यन्तर, मध्य और बाह्य विष्कम्भ—

क्रमांक	क्षेत्रनाम	अभ्यन्तर विष्कम्भ	मध्य विष्कम्भ	बाह्य विष्कम्भ
१	भरत	६६१४ $\frac{१२९}{२१२}$ योजन	१२५८१ $\frac{३६}{२१२}$ योजन	१८५४७ $\frac{१५५}{२१२}$ योजन
२	हैमवत	२६४५८ $\frac{९२}{२१२}$ योजन	५०३२४ $\frac{१४४}{२१२}$ योजन	७४१९० $\frac{१५६}{२१२}$ योजन
३	हरि	१०५८३३ $\frac{१५६}{२१२}$ योजन	२०१२९८ $\frac{१५२}{२१२}$ योजन	२९६७६३ $\frac{१४८}{२१२}$ योजन
४	विदेह	४२३३३४ $\frac{२००}{२१२}$ योजन	८०५१९४ $\frac{१८४}{२१२}$ योजन	११८७०५४ $\frac{१६८}{२१२}$ योजन
५	रम्यक	१०५८३३ $\frac{१५६}{२१२}$ योजन	२०१२९८ $\frac{१५२}{२१२}$ योजन	२९६७६३ $\frac{१४८}{२१२}$ योजन
६	हैरण्यवत	२६४५८ $\frac{९२}{२१२}$ योजन	५०३२४ $\frac{१४४}{२१२}$ योजन	७४१९० $\frac{१५६}{२१२}$ योजन
७	ऐरावत	६६१४ $\frac{१२९}{२१२}$ योजन	१२५८१ $\frac{३६}{२१२}$ योजन	१८५४७ $\frac{१५५}{२१२}$ योजन

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अथ कुलाद्रीणां विष्कम्भा प्रोच्यन्ते–

हिमवतविष्कम्भः द्विसहस्रैकशतपञ्चयोजनानि, योजनस्यैकोनविंशतिकलानां कलाः पञ्च। महाहिमवतो विस्तारः अष्टसहस्रचतुःशतैकविंशति योजनानि कलैका च।

निषधस्य व्यासः त्रयस्त्रिंशत्सहस्रषट्शतचतुरशीतियोजनानि चतुःकलाश्च नीलस्य व्यासः निषधव्याससमः। रुक्मिणः विस्तारः महाहिमवतवद्विस्तारसमानः शिखरिणः विष्कम्भः हिमवद्विष्कम्भ-तुल्यः।

धातकीखण्डस्थ कुलाचलों का विष्कम्भ–

क्रमांक	नाम	विष्कम्भ	क्रमांक	नाम	विष्कम्भ
१	हिमवन्	२१०५$\frac{५}{१९}$योजन	४	नील	३३६८४$\frac{४}{१९}$ योजन
२	महाहिमवन्	८४२१$\frac{१}{१९}$ योजन	५	रुक्मी	८४२१$\frac{१}{१९}$ योजन
३	निषध	३३६८४$\frac{४}{१९}$ योजन	६	शिखरिन्	२१०५$\frac{५}{१९}$ योजन

अब धातकीखण्डस्थ ह्रद, कुण्ड और नदियों के विस्तार आदि का निरूपण करते हैं–

धातकीखण्डमध्यस्था ह्रदकुण्डापगादयः।
सर्वे द्विगुणविस्ताराः कीर्तिताः श्रीजिनागमे ॥१३८॥
ह्रदकुण्डापगादिभ्यः प्राग्द्वीपस्थेभ्य एव च।
अवगाहसमाना हि वेदीवनादिभूषिताः ॥१३९॥

अर्थ–जिनागम में जम्बूद्वीपस्थ सरोवर आदि के विस्तार से धातकीखण्डस्थ समस्त ह्रद, कुण्ड और नदियों का विस्तार दूना-दूना कहा गया है तथा प्रथम (जम्बू) द्वीपस्थ ह्रद, कुण्ड और नदियों के अवगाह समान ही धातकीखण्डस्थ वन, वेदी आदि से विभूषित ह्रद कुण्ड और नदियों का अवगाह कहा गया है ॥१३८-१३९॥

अब धातकीखण्डस्थ सरोवरों का व्यास आदि कहते हैं–

योजनानां सहस्रे द्वे पद्मस्यायाम एव च।
सहस्रयोजनव्यासस्ततो परौ द्रहद्वयौ ॥१४०॥
द्विगुणद्विगुणव्यासदीर्घौ शेषास्त्रयोऽपरे।
ह्रदा एभिर्ह्रदैस्तुल्या धातकीखण्डयोर्द्वयोः ॥१४१॥

अर्थ–धातकीखण्डस्थ पद्मसरोवर का आयाम २००० योजन और विस्तार १००० योजन प्रमाण है। इसके आगे स्थित महापद्म का आयाम ४००० योजन एवं विस्तार २००० योजन है।

तिगिञ्छ सरोवर का विस्तार आदि महापद्म से दूना है। इसके आगे केशरी महा पुण्डरीक और

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

पुण्डरीक सरोवरों का प्रमाण क्रमशः तिगिञ्छ, महापद्म और पद्म सरोवरों के सदृश ही है ॥१४०-१४१॥

अब धातकीखण्डस्थ कुण्डों का व्यास आदि कहते हैं—

गङ्गाकुण्डस्य विस्तारः पञ्चविंशतियोजनैः।
शताग्रैश्च तथा सिन्धुकुण्डस्य कीर्तितो बुधैः ॥१४२॥
सीतोदान्तनदीकुण्डानामस्माद् द्विगुणः क्रमात्।
व्यासो वृद्धियुतोऽन्येषामेभिः कुण्डैः समानकः ॥१४३॥

अर्थ—गणधरों के द्वारा गंगा कूट का विस्तार १२५ योजन और सिन्धु कूट का विस्तार भी १२५ योजन कहा गया है, इसके आगे सीतोदा नदी पर्यन्त यह विस्तार दुगुना-दुगुना कहा गया है। सीतोदा नदी के आगे कुण्डों का विस्तार क्रमशः उत्तर के अर्थात् गंगा आदि कुण्डों के विस्तार सदृश ही जानना चाहिए ॥१४२-१४३॥

अब धातकीखण्डस्थ गंगादि नदियों का हिमवन् आदि पर्वतों पर ऋजु (सीधे) बहाव का प्रमाण कहते हैं—

योजनानां सहस्राणि ह्येकोनविंशतिस्तथा।
त्रिंशतानि नवाग्राणीति गङ्गासरितो मतम् ॥१४४॥
ऋजुत्वं हिमवन्मूर्ध्निसिन्धोश्च गमनं प्रति।
रक्तारक्तादयोस्तद्वच्छिखर्यचलमस्तके ॥१४५॥
शेषाखिलनदीनां स्याद् ऋजुत्वगमनं द्रहात्।
कुलाद्रितटपर्यन्तं पर्वतोपरि नान्यथा ॥१४६॥

अर्थ—धातकीखण्डस्थ गंगा नदी हिमवन् पर्वत पर १९३०९ योजन पर्यन्त सीधी जाती है। हिमवन् पर्वत पर सिन्धु नदी का सीधा बहाव भी इतना ही है। इसी प्रकार शिखरी पर्वत पर रक्ता-रक्तोदा नदियों का भी सीधा बहाव १९३०९ योजन प्रमाण ही है। शेष सम्पूर्ण नदियों का अपने-अपने पर्वतों के ऊपर सीधा बहाव सरोवरों से कुलाचलों के तट पर्यन्त है, अन्य प्रकार नहीं है॥१४४-१४६॥

अब गंगा सिन्धु आदि नदियों का निर्गम आदि स्थानों का व्यास कहते हैं—

गङ्गासिन्ध्वोश्च विस्तारो निर्गमे योजनान्यपि।
सार्धद्वादशवार्ध्यन्ते पञ्चविंशाधिकं शतम् ॥१४७॥
ततोऽन्यसरितां व्यासो द्विगुणद्विगुणः क्रमात्।
सीतोदान्तं तथान्यासां विष्कम्भो ह्राससंयुतः ॥१४८॥

अर्थ—निर्गम स्थान पर गंगा और सिन्धु नदियों का मुख व्यास १२$\frac{१}{२}$ योजन प्रमाण है, इससे क्रमशः वृद्धि होते हुए समुद्र प्रवेश द्वार पर नदी का विस्तार १२५ योजन हो जाता है। इस प्रकार सीतोदा पर्यन्त अन्य नदियों का यह विस्तार दूना-दूना होता जाता है, इसके आगे जिस क्रम से वृद्धिंगत हुआ था, उसी क्रम से घटता हुआ अन्त में गंगा सिन्धु सदृश ही रह जाता है ॥१४७-१४८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब धातकीखण्डस्थ पूर्वविदेह के मेरु पर्वत का प्रमाण एवं उसके चैत्यालयों का प्रमाण कहते हैं—

मेरुः पूर्वविदेहस्य मध्यभागेऽस्ति क्षुल्लकः।
सहस्रयोजनागाहो वनधामाद्यलंकृतः ॥१४९॥
तुङ्गश्चतुरशीत्या च सहस्रयोजनैः शुभः॥
द्व्यष्टचैत्यालयोपेतश्चूलिकादिविराजितः ॥१५०॥

अर्थ—धातकीखण्डस्थ पूर्वविदेह क्षेत्र के मध्यभाग में वन एवं प्रासाद आदि से अलंकृत विजय नाम का मेरु पर्वत स्थित है। इसका अवगाह (नींव) एक हजार योजन और ऊँचाई ८४००० योजन प्रमाण है। यह विजय मेरु सोलह अकृत्रिम जिन चैत्यालयों और चूलिका आदि से सहित होने के कारण अत्यन्त शोभायमान है ॥१४८-१५०॥

अब विजयमेरु पर्वत के सम्पूर्ण विष्कम्भ एवं परिधियों के प्रमाण आदि का विस्तृत वर्णन करते हैं—

अस्य मेरोः कन्दतले विष्कम्भः योजनानां पञ्चनवतिशतानि। परिधिश्च किञ्चिदूनद्विचत्वारिंशदधिकत्रिंशत्सहस्रयोजनानि। भूतले व्यासः नवसहस्रचतुःशतयोजनानि। परिधिश्च एकोनत्रिंशत्सहस्रसप्तशतपञ्चविंशतियोजनानि। भूतलादूर्ध्वं पञ्चशतयोजनानि गत्वास्य मेरोः प्रथममेखलायां प्रागुक्त वर्णनोपेतं पञ्चशतयोजनविस्तृतं चतुश्चैत्यालयादिअलंकृतं नानापादपाकीर्णं शाश्वतं वनं स्यात्। तत्र नन्दनवनसहितमेरोर्बाह्यविस्तारः नवसहस्रत्रिंशतपञ्चाशद्योजनानि। बाह्यपरिधिः एकोनत्रिंशत्सहस्रपञ्चशतं-सप्तषष्टि-योजनानि। वनरहितमेरोऽभ्यन्तरविष्कम्भः अष्टसहस्रत्रिंशतपञ्चाशद्योजनानि। अभ्यन्तरपरिधिः षड्विंशति-सहस्रचतुःशतपञ्चयोजनानि। ततः उर्ध्वं सार्धपञ्चपञ्चाशत्सहस्रयोजनानि विमुच्य मेरोः चतुर्जिनालय-वापीसुरसद्मादि विभूषितं पञ्चशतयोजनविस्तीर्णं रम्यं सौमनसाख्यं वनं विद्यते, तेषां सार्धपञ्चपञ्चा-शत्सहस्रयोजनानां मध्येऽसौ मेरुः दशसहस्रयोजनपर्यन्तं समविष्कम्भो भवति ततः सार्धपञ्च-चत्वारिंशत्सहस्रयोजनान्तं क्रमह्रस्वश्च।

तत्रास्य बाह्यविष्कम्भः त्रिसहस्राष्टशतयोजनानि। बाह्यपरिधिः द्वादशसहस्रकिञ्चिदूनसप्तदश योजनानि। अभ्यन्तरव्यासः द्विसहस्राष्टशतयोजनानि। अभ्यन्तरपरिधिः अष्टसहस्राष्ट-शत-चतुःपञ्चाशद्योजनानि। ततोऽस्यैव मेरोरूर्ध्वं अष्टाविंशति सहस्रयोजनानि विहाय मूर्ध्निचतुर्नवतियुत-चतुःशतयोजनव्यासं जिनालय-पाण्डुकशिलादि भूषितं पाण्डुकवनमस्ति। तेषामष्टाविंशतिसहस्रयोजनानां, मध्ये दशसहस्रयोजनपर्यन्तं मेरुः ऋजुविष्कम्भो भवेत्। ततोऽष्टादशसहस्र योजनान्तं क्रमहीयमान-ह्रस्वश्च। तत्रास्य सहस्रयोजनविस्तीर्णस्य मेरोर्मूर्ध्नि परिधिः त्रिसहस्रैकशतद्विषष्टियोजनानि साधिकः क्रोशश्च। अत्र मेरौ अन्ये चैत्यालयदेवगृहवापी-कूटचूलिकादयः उत्सेध-व्यासावगाहादि वर्णनैः जम्बूद्वीपस्थ महामेरोः समाना भवन्ति। ईदृग्विधवर्णनो-पेतोऽपरमेरुरपि पश्चिमधातकीखण्ड विदेहस्य मध्ये ज्ञातव्यः।

अर्थ—इस विजयमेरु पर्वत का मूल में अर्थात् चित्रा पृथ्वी के तल (निचले) भाग पर (जड़)

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

विस्तार ९५०० योजन है और इस कन्द विष्कम्भ की परिधि कुछ कम ३००४२ योजन प्रमाण है। भूतल पर अर्थात् पृथ्वीतल (चित्रा पृथ्वी के उपरले भाग) पर विजयमेरु का व्यास ९४०० योजन तथा परिधि २९७२५ योजन प्रमाण है। पृथ्वीतल से ५०० योजन ऊपर जाकर विजयमेरु की प्रथम मेखला (कटनी) पर सुदर्शनमेरु की प्रथम मेखला के वर्णन के सदृश ५०० योजन विस्तृत, चार चैत्यालयों आदि से अलंकृत और अनेक प्रकार के वृक्षों से युक्त शाश्वत नन्दन नाम का वन है। उस नन्दन वन सहित विजयमेरु का बाह्य विस्तार ९३५० योजन और इसकी बाह्य परिधि २९५६७ योजन प्रमाण है। नन्दनवन के व्यास रहित मेरु का अभ्यन्तर व्यास ८३५० योजन एवं इसी व्यास की अभ्यन्तर परिधि २६४०५ योजन प्रमाण है। इस नन्दनवन से ५५५०० योजन ऊपर जाकर मेरु की दूसरी मेखला है, जिस पर चार जिन चैत्यालय, वापियाँ एवं देवों के प्रासादों आदि से विभूषित ५०० योजन विस्तृत सौमनस नाम का वन है। इस ५५५०० योजन के मध्य मेरु १०००० योजन पर्यन्त समरुन्द्र अर्थात् समान चौड़ाई से युक्त है, इसके बाद ४५५०० योजन पर्यन्त क्रमशः हीन होता गया है। यहाँ का अर्थात् सौमनस वन के बाह्य व्यास का प्रमाण ३८०० योजन और इसकी बाह्य परिधि का प्रमाण कुछ कम १२०१७ योजन है। सौमनस वन का अभ्यन्तर व्यास २८०० योजन और अभ्यन्तर व्यास की परिधि ८८५४ योजन प्रमाण है। इस सौमनस वन से २८००० योजन ऊपर जाकर चार जिनालयों एवं पाण्डुक आदि शिलाओं से युक्त ४९४ योजन विस्तृत पांडुक नाम का वन है। इन २८००० योजनों के मध्य १०००० योजन पर्यन्त मेरु का विष्कम्भ बिल्कुल सीधा है। अर्थात् चौड़ाई समान है। इसके ऊपर १८००० योजनों पर्यन्त विष्कंभ क्रमशः हीन होता गया है। पांडुक वन का बाह्य विष्कम्भ १००० योजन और मेरु के ऊपर परिधि ३१६२ योजन और कुछ अधिक एक कोस प्रमाण है। यहाँ मेरु पर्वत के ऊपर चार जिन चैत्यालय, देवगृह, वापी, कूट एवं चूलिका आदि हैं, इन सब के उत्सेध, व्यास और अवगाह आदि का वर्णन जम्बूद्वीपस्थ महामेरु के सदृश ही जानना चाहिए। इसी प्रकार धातकीखण्ड स्थित पश्चिम विदेह क्षेत्र के मध्य में अचल नाम का मेरु पर्वत स्थित है, उसका सम्पूर्ण वर्णन इसी विजय मेरु पर्वत के सदृश ही जानना चाहिए।

अब भद्रशाल वन, गजदन्त और देवकुरु उत्तर कुरु का आयाम एवं सूची-व्यास तथा परिधि आदि का वर्णन करते हैं—

मेरोः प्राक् पश्चिमदिगाश्रिते जिनेन्द्रचैत्यालयाद्यलंकृते एकलक्षसप्तसहस्राष्टशतैकोनाशीतियोजनायामे पंचविंशत्यग्रद्वादशशतयोजनविस्तीर्णे पूर्वापर भद्रशालाह्वये द्वे वने भवतः। अत्रैव मेरोर्वायुनैऋत्यविदिगाश्रितौ त्रिलक्षषट्पंचाशत् सहस्रद्विशतसप्तविंशतियोजनायामौ प्रागुक्तकूटचैत्यालयवनवेद्याद्यलंकृतौ गन्धमादनविद्यत्प्रभाख्यौ द्वौ लघुगजदन्तपर्वतौ स्यातां। ईशानाग्नेयविदिक् स्थितौ पंचलक्षैकोनसप्ततिसहस्रद्विशतै-कोनषष्टियोजनायामौ। माल्यवत्सौमनसाह्वयौ द्वौ बृहद्गजदन्ताचलौ भवतः। देवकुरूत्तरकुरुभोगभूम्योः प्रत्येकं कुलाचलसमीपे विष्कम्भः द्विलक्षत्रयोविंशति-

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सहस्रैकशताष्टपंचाशद्योजनानि, कुलाचलात् मेरुपर्यन्तं वक्रायामः त्रिलक्षसप्तनवतिसहस्राष्ट-शतसप्तनवति योजनानि, योजनस्य द्विशतद्वादशभागानां द्विनवतिभागाश्च। कुरूणामुभयान्तयोः ऋज्वायामः त्रिलक्षषट्षष्टिसहस्र षट्शताशीतियोजनानि। पूर्वापरमेर्वोः पूर्वापरभद्रशालान्तयोश्चान्तराले जम्बूद्वीपलवणसमुद्रादिसहिते सूची एकादश लक्षपंचविंशतिसहस्रैकशताष्ट-पंचाशद्योजनानि। सूच्याः परिधिः पञ्चत्रिंशल्लक्षाष्टपंचाशत्सहस्रद्विषष्टियोजनानि। पूर्वापर मेर्वोः, पूर्वापर सर्वभद्रशालवनाभ्यां विनान्तराले सूची षड्लक्षचतुः सप्ततिसहस्राष्टशत द्विचत्वारिंशद्योजनानि। तत्सूच्याः परिधिः एकविंशतिलक्षचतुस्त्रिंशत् सहस्राष्टत्रिंशद्योजनानि। मेरुपूर्वापरभद्रशालदेवारण्य भूतारण्यवनैर्विना, पूर्वापरविदेहयोः प्रत्येकं व्यासः एकाशीतिसहस्रपंचशतसप्तसप्तति योजनानि।

अर्थ—धातकीखण्डस्थ मेरु पर्वत की पूर्व और पश्चिम दिशा में मेरु के मूल अर्थात् पृथ्वीतल पर जिन चैत्यालयों आदि से अलंकृत, १०७८७९ योजन लम्बे और १२२५ योजन चौड़े पूर्व भद्रशाल एवं पश्चिम भद्रशाल नाम के दो वन हैं। इसी पश्चिम भद्रशाल वन में मेरु की वायव्य एवं नैऋत्य विदिशाओं में क्रम से ३५६२२७ योजन लम्बे और पूर्व में कहे हुए कूटों, जिन चैत्यालयों एवं वन वेदी आदि से अलंकृत गन्धमादन तथा विद्युत्प्रभ नाम के दो-दो लघु गजदन्त पर्वत हैं। पूर्व भद्रशाल वन में इसी मेरु की ऐशान और आग्नेय विदिशाओं में ५६९२५९ योजन लम्बे माल्यवान् और सौमनस नाम के दो बृहद् गजदन्त पर्वत हैं। धातकीखण्डस्थ देवकुरु उत्तरकुरु दोनों भोगभूमियों का विष्कम्भ कुलाचलों के समीप २२३१५८ योजन है। अर्थात् देवकुरु उत्तरकुरु (प्रत्येक) की जीवा २२३१५८ योजन है। कुलाचलों से मेरु पर्यन्त का वक्र आयाम (धनुःपृष्ठ) ३९७८९७ $\frac{९२}{११२}$ योजन है। अर्थात् प्रत्येक कुरुक्षेत्र का धनुःपृष्ठ ३९७८९७ $\frac{९२}{११२}$ योजन प्रमाण है। दोनों कुरुक्षेत्रों में प्रत्येक क्षेत्र के अन्त से ऋजु आयाम अर्थात् कुरुक्षेत्र का ऋजुवाण ३६६६८० योजन प्रमाण है। पूर्व पश्चिम मेरुओं के पूर्व-पश्चिम भद्रशाल वनों के अन्त तक (पूर्व मेरु के पूर्व भद्रशाल वन के अन्त से पश्चिम मेरु के पश्चिम भद्रशाल के वन के अन्त तक अर्थात् पूर्व धातकीखण्ड के ३१२५७९ योजन + लवण समुद्र २००००० यो. + जम्बूद्वीप १००००० यो. + लवण समुद्र २००००० यो. पश्चिम धातकीखण्ड के ३१२५७९ यो. = ११२५१५८ यो.) के अन्तराल का (बाह्य) सूचीव्यास जम्बूद्वीप लवणसमुद्र आदि सहित ११२५१५८ योजन है। तथा इस सूची व्यास की परिधि ३५५८०६२ योजन प्रमाण है। पूर्व-पश्चिम मेरुओं के पूर्व-पश्चिम भद्रशाल वनों के बिना, अन्तराल का (अभ्यंतर) सूची व्यास का प्रमाण ६७४८४२ योजन (पूर्व धातकीखण्ड के देवारण्य व विदेह क्षेत्र का प्रमाण ५८४४ + ८१५७७ = ८७४२१ यो. + जम्बू., लवण स. के ५००००० + पश्चिम विदेह के ८७४२१ यो. = ६७४८४२ यो.) है, और उस सूची व्यास की परिधि २१३४०३८ योजन प्रमाण है। (त्रि॰ सा॰ गाथा ९३०) मेरु पर्वत पूर्व-पश्चिम भद्रशाल वन और देवारण्य, भूतारण्य वनों के व्यास बिना पूर्व-पश्चिम दोनों विदेहों में प्रत्येक विदेह का व्यास ८१५७७ योजन प्रमाण है।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब धातकी वृक्षों की अवस्थिति, विदेहक्षेत्र के विभाग एवं नाम कहते हैं–

अत्र द्वौ धातकीवृक्षौ जम्बूशाल्मलि सन्निभौ।
उच्चायामादिभिः स्यातां जिनालयाद्यलंकृतौ ॥१५१॥
मेरोः पूर्वदिशाभागे विदेहपूर्वसंज्ञकः।
विभक्तः सीतया द्वेधा दक्षिणोत्तरनामभाक् ॥१५२॥
मेरोः पश्चिमदिग्भागे स्याद् विदेहोऽपराह्वयः।
दक्षिणोत्तरनामाढ्य सीतोदया द्विधा कृतः ॥१५३॥

अर्थ–जम्बू शाल्मलि वृक्षों की ऊँचाई एवं आयाम आदि से युक्त धातकीखण्ड में दो मेरु सम्बन्धी दो-दो धातकी (बहेड़ा) के वृक्ष अवस्थित हैं, जो जिनालय आदि से अलंकृत हैं। मेरु की पूर्व दिशा में पूर्व विदेह नाम का क्षेत्र है, जो सीता महानदी के नाम से दक्षिण विदेह और उत्तर विदेह के नाम से दो भागों में विभक्त किया गया है। इसी प्रकार मेरु की पश्चिम दिशा में पश्चिम विदेह है, जो सीतोदा के द्वारा उत्तर दक्षिण नाम से दो भागों में विभक्त किया गया है ॥१५१-१५३॥

अब देशों के खण्ड एवं कच्छादि देशों का विस्तार आदि कहते हैं–

अत्र प्रागुक्तनामानो द्वात्रिंशद् विषया मताः।
विजयार्ध द्विनदीभ्यां षट्खण्डान्वितभूतला ॥१५४॥
पूर्वस्मान्मन्दरात् पूर्वः कच्छाख्यो विषयो महान्।
अपरादपरोन्त्यश्च देशः स्याद् गन्धमालिनी ॥१५५॥
योजनानां सहस्राणि नवत्यग्रशतानिषट्।
सार्धक्रोश इति व्यासो देशानां स्यात् पृथक् पृथक् ॥१५६॥
विदेह विस्तरस्यार्धं नदीव्यासोनितं च यत्।
क्षेत्रं स एव आयाम आदिमध्यान्त भेदतः ॥१५७॥
त्रिविधोऽखिलदेशानां प्रत्येकं वृद्धिह्रासभाक्।
वक्षाराचलदेवारण्यादीनां कीर्तितो जिनैः ॥१५८॥
चतुःसहस्रसंख्यानि तथा पञ्चशतानि च।
त्र्यशीतिर्योजनानां द्विशतद्वादशभागिनाम् ॥१५९॥
भागानां किल भागाः षण्णवत्यग्रशतप्रमाः।
इत्यायामप्रवृद्धिः स्यात् कच्छादि विषयं प्रति ॥१६०॥

अर्थ–धातकीखण्ड में पूर्व कहे हुए नाम वाले बत्तीस देश हैं, जिनके एक-एक विजयार्ध पर्वत और गंगा-सिन्धु नाम की दो-दो नदियों द्वारा छह छह खण्ड होते हैं। मेरु पर्वत से पूर्व दिशा में कच्छा नाम का महान् देश है और मेरु से पश्चिम दिशा में गन्धमालिनी नाम का महान् देश है। इन ३२ ही देशों में से पृथक्-पृथक् एक-एक देश का व्यास ९६०३$\frac{३}{८}$ योजन प्रमाण है। विदेहक्षेत्र के विस्तार को

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

आधा करके उसमें से नदी का व्यास घटा देने पर प्रत्येक क्षेत्र की लम्बाई का प्रमाण प्राप्त होता है। जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा बत्तीस देशों, वक्षार पर्वतों और देवारण्य आदि वनों का आयाम आदि, मध्य और अन्त में वृद्धि-हानि को लिए हुए तीन-तीन प्रकार का कहा गया है। अर्थात् आदि आयाम से मध्य में और मध्य आयाम से अन्त में, इस प्रकार प्रत्येक में दो-दो बार स्व वृद्धि का प्रमाण बढ़ता है। इनमें से देश आयाम की वृद्धि का प्रमाण ४५८३३३ $\frac{५२६}{२१२}$ योजन है ॥१५४-१६०॥

अब धातकीखण्ड विदेहस्थ वक्षार पर्वतों का आयाम आदि कहते हैं—

सहस्रयोजनव्यासाद् द्व्यष्टवक्षारपर्वताः।
भवन्ति विविधायामाः प्रागुक्तोत्सेधसम्मिताः ॥१६१॥
चतुःशतानि सप्ताग्रसप्ततिर्योजनानि च।
षष्टिभागा इहायामवृद्धिर्वक्षारभूभृतः ॥१६२॥

अर्थ—सोलह वक्षार पर्वतों की ऊँचाई पूर्व कहे हुए जम्बूद्वीपस्थ वक्षार पर्वतों की ऊँचाई सदृश है। लम्बाई अनेक प्रकार की है और चौड़ाई १००० योजन प्रमाण है। प्रत्येक वक्षार के आदि मध्य अन्तायाम में वृद्धि का प्रमाण ४७७ $\frac{६०}{२१२}$ योजन है ॥१६१-१६२॥

अब देवारण्य-भूतारण्य वनों का आयाम आदि कहते हैं—

प्रागुक्तद्विगुणव्यासे रम्ये द्वे भवतो वने।
देवारण्याख्यभूतारण्याह्वये वेदिकाङ्किते ॥१६३॥

अनयोः प्रत्येकं विष्कम्भः पंचसहस्राष्टशतचतुश्चत्वारिंशद्योजनानि।

योजनानां सहस्रे द्वे तथा सप्तशतानि च।
एकोननवतिर्द्विनवतिकला जिनागमे ॥१६४॥
द्विषट्द्विशतसंख्यानां कलानामिति कीर्तिता।
आयामवृद्धिरेतस्य द्विवनस्य पृथग्विधा ॥१६५॥

अर्थ—धातकीखण्डस्थ विदेह में वेदिका आदि से अलंकृत तथा अत्यन्त रमणीक देवारण्य भूतारण्य नाम के दो वन हैं। इनका व्यास जम्बूद्वीपस्थ वनों के व्यास के प्रमाण से दूना है। इन दोनों वनों में से प्रत्येक वन का विष्कम्भ-५८४४ $\frac{१२}{२१२}$ योजन प्रमाण है। जिनागम में पृथक्-पृथक् दोनों वनों के आयामों में वृद्धि का प्रमाण २७८९ $\frac{१२}{२१२}$ योजन कहा गया है ॥१६३-१६५॥

अब विभङ्गा नदियों के आयाम आदि को कहते हैं—

नद्यो द्वादश विस्तीर्णाः सार्धद्विशतयोजनैः।
विभङ्गाख्या भवेयुः प्राग् धातकीखण्डनामनि ॥१६६॥
कुण्डव्याससरिद् व्यासोनं विदेहस्य भूतलम्।
यदर्धं स विभङ्गानामायामोऽस्ति पृथग्विधः ॥१६७॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

शतमेकोनविंशत्याधिकं च योजनान्यपि।
द्विषड्द्विशतभागानां भागाः पञ्चाशदेव च ॥१६८॥
भागद्वयाधिका इत्यायामवृद्धिर्जिनैः स्मृता।
प्रत्येकं बहुभेदोऽत्र विभङ्गासरितां क्रमात् ॥१६९॥

अर्थ—पूर्व धातकीखण्ड में २५० योजन विस्तार वाली, विभंगा नाम की बारह नदियाँ हैं। विदेह क्षेत्र के व्यास में से कुण्डव्यास और नदी का व्यास कम करके अवशेष को आधा करने पर विभंगा की लम्बाई प्राप्त हो जाती है। एक-एक नदी का यह आयाम भिन्न-भिन्न प्रकार का कहा गया है। जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा विभंगा नदियों का बहुत भेद वाला यह आयाम क्रम से ११९$\frac{५२}{२१२}$ योजन वृद्धि के साथ कहा गया है। अर्थात् विभंगा का आद्यायाम ५२८८६१ $\frac{४४}{२१२}$ योजन प्रमाण है, इसमें वृद्धि प्रमाण ११९$\frac{५२}{२१२}$ योजन मिला देने पर विभंगा का मध्य आयाम ५२८९८० $\frac{९६}{२१२}$ योजन होता है, और इसमें पुनः वृद्धि का प्रमाण मिला देने पर विभंगा का अन्त आयाम ५२९९०९ $\frac{१४८}{२१२}$ योजन-प्रमाण ही जाता है ॥१६६-१६९॥

अब कुण्डों, विजयार्ध पर्वतों, गंगादि ६४ नदियों एवं भद्रशालवनादिकों की वेदियों का विस्तार आदि कहते हैं—

विभङ्गोत्पत्तिकुण्डानि सार्धद्विशतयोजनैः।
विस्तीर्णानि च पूर्वोक्तावगाहसदृशान्यपि ॥१७०॥
विजयार्धाश्चतुस्त्रिंशत्प्रागुक्तोन्नतिसम्मिताः ।
शतयोजनविस्तीर्णा द्वीपेऽर्द्धेऽस्मिन्निरूपिताः ॥१७१॥
गङ्गाद्याः क्षुल्लकानद्यश्चतुःषष्टिप्रमाः शुभाः।
प्राक्सरिद्द्विगुणव्यासाः प्राग्नद्यागाहसन्निभाः ॥१७२॥
गङ्गाद्युत्पत्तिकुण्डानि पादाग्रशतयोजनैः।
विस्तृतानि चतुःषष्टिपूर्वागाहयुतानि च ॥१७३॥
क्रोशद्वयोन्नताः पञ्चशतचापसुविस्तृताः।
भद्रशालवनादीनां सन्त्यष्टौवेदिकाः शुभाः ॥१७४॥

अर्थ—विभंगा नदियों की उत्पत्ति जिन कुण्डों से होती है, उन कुण्डों का व्यास २५० योजन तथा अवगाह जम्बूद्वीपस्थ कुण्डों के अवगाह सदृश है। अर्ध द्वीप में अर्थात् पूर्व धातकीखण्ड में पूर्वकथित (२५ योजन) उत्सेध वाले और १०० योजन विस्तृत चौंतीस विजयार्ध पर्वत हैं। जम्बूद्वीपस्थ विदेह क्षेत्र गत गंगा आदि नदियों के अवगाह सदृश अवगाह वालीं और वहाँ की नदियों के व्यास से दुगुने व्यास वाली गंगा, सिन्धु, रोहित और रोहितास्या नाम की ६४ छोटी नदियाँ हैं। इन गंगा आदि ६४ नदियों की उत्पत्ति के स्थान स्वरूप वहाँ ६४ गंगादि कूट हैं, जो १२५ योजन विस्तृत और जम्बूद्वीपस्थ विदेह के कुण्डों की अवगाहना के सदृश अवगाहना वाले हैं। भद्रशाल आदि वनों की दो कोस ऊँची और ५००

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

धनुष चौड़ी अत्यन्त रमणीय आठ वेदियाँ हैं ॥१७०-१७४॥

इदानीं चतुर्लक्षयोजनप्रमो विदेहस्य विष्कम्भो यस्तस्य मेर्वादि विभागैः संख्या कथ्यते–

मेरोः व्यासः नवसहस्रचतुःशतयोजनानि। पूर्वापरभद्रशालवनयोर्द्वयोः पिण्डीकृतविस्तारः द्विलक्ष-पञ्चदशसहस्रसप्तशताष्ट पञ्चाशद्योजनानि षोडशदेशानामेकत्रीकृतो व्यासः एकलक्षत्रिपञ्चाशत्सहस्र षट्शतचतुःपञ्चाशद्योजनानि। अष्टवक्षारपर्वतानां पिण्डितो विस्तारः अष्टसहस्रयोजनानि। षड्विभंगानदीनां मेलितविष्कम्भः पञ्चदशशतयोजनानि। देवारण्यभूतारण्ययोरेकत्रीकृताविस्तृतिः। एकादशसहस्रषट्शताष्टाशीति योजनानि, इत्येकत्रीकृतः सकलः विदेहस्य विष्कम्भः चतुर्लक्षयोजनप्रमाणः स्यात्।

अर्थ–विदेहक्षेत्र का विस्तार चार लाख योजन प्रमाण कहा गया है, यहाँ मेरु पर्वत आदि के विष्कम्भ विभागों के द्वारा उसकी संख्या कही जाती है–

मेरु पर्वत का व्यास ९४०० योजन है, पूर्व भद्रशाल और पश्चिम भद्रशाल, इन दोनों के व्यास का योग २१५७५८ योजन है। कच्छादि १६ देशों का एकत्रित व्यास १५३६५४ योजन प्रमाण है। आठ वक्षार पर्वतों का एकत्रित व्यास ८००० योजन है। छह विभंगा नदियों का एकत्रित व्यास १५०० योजन और देवारण्य-भूतारण्य का एकत्रित व्यास ११६८८ योजन है। इन सर्व विष्कम्भों की संख्या को एकत्रित कर देने पर विदेह क्षेत्र का (९४००+२१५७५८ + १५३६५४ + ८०००+१५०० + ११६८८ =) ४००००० योजन प्रमाण विष्कम्भ प्राप्त हो जाता है।

अब देश एवं नगरी आदि के नाम कहकर पश्चिम धातकीखण्ड की व्यवस्था दर्शाते हैं–

जम्बूद्वीपविदेहे सन्नामान्युक्तानि यानि च।
देशानां नगरीणां सुविभङ्गासरितां तथा ॥१७५॥
वक्षारपर्वतादीनां तान्येव निखिलान्यपि।
ज्ञेयानि धातकीखण्डद्वीपेऽस्मिन् द्विविधेऽखिले ॥१७६॥
इत्येषा वर्णना सर्वा देश शैलादिगोचरा।
पश्चिमे धातकीखण्डे ज्ञेयाक्षेत्रादिसंख्यया ॥१७७॥

अर्थ–पूर्व और पश्चिम धातकी खण्डों में स्थित विदेह क्षेत्रों के देशों के नाम, नगरियों के नाम, विभंगा नदियों के नाम और वक्षार पर्वत आदि अन्य सभी के नाम जम्बूद्वीपस्थ विदेह के देशों, नगरियों एवं नदी-पर्वतों के नाम के सदृश ही हैं अर्थात् जो-जो नाम जम्बूद्वीपस्थ विदेह में हैं, वही-वही नाम यहाँ हैं। पूर्व धातकीखण्ड में देश, पर्वत एवं क्षेत्रादि की जो, जैसी तथा जितनी संख्या आदि कही है एवं जैसा-जैसा वर्णन किया है, वैसा-वैसा ही तथा उतनी ही संख्या प्रमाण में समस्त वर्णन पश्चिम धातकीखण्ड में जानना चाहिए ॥१७५-१७७॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब धातकीखण्डस्थ यमकगिरि आदि पर्वतों की संख्या कहते हैं–

अष्टौ यमकशैला ये द्व्यष्टदिग्गजपर्वताः।
अष्टौ नाभिनगा अष्टषष्टिर्वृषभपर्वताः ॥१७८॥
चतुःशतप्रमाणा ये पिण्डिताः कनकाद्रयः।
उत्सेधविस्तराद्यैस्ते धातकीखण्डयोर्द्वयोः ॥१७९॥
सर्वे प्रथमद्वीपस्थ यमकाद्र्यादिसस्मिताः।
प्रागुक्तवर्णनोपेता वनवेद्याद्यलंकृताः ॥१८०॥

अर्थ–पूर्व और पश्चिम दोनों धातकीखण्डों में [मेरु पर्वत दो, विजयार्ध ६८] यमकगिरि ८, दिग्गज पर्वत १६, नाभि पर्वत ८, वृषभाचल ६८ और कञ्चनगिरि ४०० [१२ कुलाचल, ३२ वक्षार, ८ गजदन्त और दो इष्वारकार] ये सब ६२४ पर्वत हैं, इनका उत्सेध एवं विस्तार आदि सब जम्बूद्वीपस्थ विदेह के पर्वतों सदृश है ॥१७८-१८०॥

अब धातकीखण्ड सम्बन्धी भोगभूमियों, कर्म भूमियों, पर्वतों, नदियों एवं द्रहादिकों की संख्या कहकर उसके अधिपति देवों के नाम आदि कहते हैं–

द्विषट् भोगधरा अत्र स्युश्चषट्कर्मभूमयः।
जम्बूद्वीपसमानाश्च सुखगत्यादि कारणैः ॥१८१॥
द्विमेरुप्रमुखाः सर्वे पिण्डिताः ख्यातपर्वताः।
चतुर्विंशतिसंयुक्तषट्शतप्रमिता मताः ॥१८२॥
पंचत्रिंशच्च लक्षाणि ह्यशीतिश्चश्चतुरुत्तराः।
सहस्राणि शतैकं चाशीतिरित्युक्तसंख्यया ॥१८३॥
सर्वाः पिंडीकृता नद्यो गङ्गाद्याः कीर्तिता जिनैः।
धातकीखण्डयोर्मूलपरिवाराह्वयाः श्रुते ॥१८४॥
चत्वारिंशद् द्रहाः सीतासीतोदामध्यसंस्थिताः।
अत्रादिद्वीपतोऽन्ये द्विगुणा ह्रद-वनादयः ॥१८५॥
द्वीपस्यास्य पती स्यातां प्रभासप्रियदर्शिनौ।
दक्षिणोत्तरभागस्थौ जिनबिम्बात्तशेखरौ ॥१८६॥

अर्थ–सम्पूर्ण धातकीखण्ड में बारह भोगभूमियाँ और छह कर्मभूमियाँ हैं। इनमें सुख और गति-आगति आदि के समस्त कारण एवं सम्पूर्ण वर्णन जम्बूद्वीप सम्बन्धी भोगभूमियों एवं कर्मभूमियों के सदृश ही है। दोनों दिशा सम्बन्धी दो मेरु हैं प्रमुख जिनमें, ऐसे सम्पूर्ण धातकीखण्ड सम्बन्धी पर्वतों का एकत्रित योग (२ मेरु + ६८ विजयार्ध + ६८ वृषभाचल +१६ दिग्गज + ८ नाभिगिरि + ४०० कञ्चनगिरि + ८ यमकगिरि + १२ कुलाचल + ३२ वक्षारगिरि + ८ गजदन्त और २ इष्वाकार)=६२४ है। जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा आगम में सम्पूर्ण धातकीखण्ड की गंगा आदि मूल और इनकी परिवार

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

नदियों की समस्त संख्या ३५८४१८० कही गई है। सीता-सीतोदा नदियों के मध्य में ४० द्रह स्थित हैं। यहाँ के अन्य ह्रद एवं वन आदिकों की संख्या जम्बूद्वीपस्थ द्रहादिकों की संख्या से दूनी-दूनी है। इस धातकीखण्ड के संरक्षक प्रभास और प्रियदर्शी नाम के दो अधिपति देव हैं, जो अपने मुकुटों की शिखरों पर जिनबिम्ब को धारण करते हुए क्रमशः दक्षिण और उत्तर दिशा सम्बन्धी धातकी वृक्षों पर रहते हैं ॥१८१-१८६॥

अब कालोदधिसमुद्र का सविस्तर वर्णन करते हैं—

तं द्वीपं धातकीखण्डमावेष्ट्यपरितिष्ठति।
लक्षाष्टयोजनव्यासः कालोदवारिधिर्महान् ॥१८७॥
सर्वत्रास्यावगाहोऽस्ति सहस्त्रयोजनप्रमः।
प्रागुक्तोत्सेधविस्तारः प्राकारो वेदिकाङ्कितः ॥१८८॥
चतुर्दिक्ष्वस्य शालस्य चत्वारि गोपुराणि च।
गङ्गादि सरितां सन्ति द्वाराणि च चतुर्दश ॥१८९॥
द्वीपाः सन्त्यष्टचत्वारिंशत्कुमर्त्ययुगान्विताः।
कालोदतटयोरन्तर्भागयोरुपरि स्थिताः ॥१९०॥
पातालानि न सन्त्यत्र नोर्मिवृद्ध्यादयः क्वचित्।
टङ्कोत्कीर्ण इवास्त्येष सर्वत्र समगाहधृत् ॥१९१॥
कालाख्यो रक्षकोऽस्याब्धेः स्वामीदिग्भागदक्षिणे।
व्यन्तरश्च महाकाल उत्तराख्य दिशि स्थितः ॥१९२॥

अर्थ—उस धातकीखण्ड द्वीप को परिवेष्टित करके आठ लाख योजन विस्तार वाला कालोदधि नाम का महान् समुद्र अवस्थित है। आकार एवं वेदिका आदि से अलंकृत इस समुद्र का अवगाह सर्वत्र १००० योजन प्रमाण है तथा उत्सेध और विस्तार आदि का प्रमाण पूर्वकथित प्रमाण है। इसके कोट की चारों दिशाओं में चार गोपुर और गंगादि नदियों के समुद्र में प्रवेश करने के चौदह द्वार हैं। कालोदधि समुद्र के दोनों तटों से भीतर की ओर जल के मध्यभाग में ४८-४८ कुभोगभूमियाँ हैं, जिनमें युगल कुमानुष रहते हैं। लवण समुद्र के समान इस समुद्र में न पाताल हैं और न कभी लहरों की वृद्धि आदि ही होती है। यह समुद्र सर्वत्र समान गहराई को धारण करता हुआ टंकोत्कीर्ण के सदृश अवस्थित है। इस समुद्र का काल नाम का रक्षक देव समुद्र की दक्षिण दिशा में और महाकाल नाम का अधिपति व्यन्तर देव समुद्र की उत्तर दिशा में निवास करते हुए समुद्र की रक्षा करते हैं ॥१८७-१९२॥

अब कालोदधि समुद्र की परिधि का प्रमाण और पुष्कर द्वीप का सविस्तर वर्णन करते हैं—

एकानवति लक्षाणि सहस्त्राणि च सप्ततिः।
पञ्चाग्रषट्शतानीति कृतयोजनसंख्यया ॥१९३॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

कालोदकसमुद्रस्य परिधिः श्रीजिनोदिता।
ततो द्विगुणविस्तारो द्वीपोऽस्ति पुष्कराह्वयः ॥१९४॥
मध्येऽस्यैवाष्टलक्षाणि योजनानि विमुच्य च।
नित्यः स्वर्णमयस्तिष्ठेन्मानुषोत्तरपर्वतः ॥१९५॥
ततः सार्थकनामासौ पुष्करार्ध इहोच्यते।
विस्तृतो योजनैरष्टलक्षैः पुष्करवृक्षभृत् ॥१९६॥
इक्ष्वाकारनगौ स्तोऽस्य दक्षिणोत्तरयोर्दिशोः।
द्वीपव्याससमायामौ दिव्यचैत्यालयाङ्कितौ ॥१९७॥
प्रागुक्तोन्नतिव्यासाढ्यौ चतुःकूटविराजितौ।
ताभ्यां द्वीपः स संजातः पूर्वापरद्विधात्मकः ॥१९८॥
मध्ये प्राक् पुष्करार्धस्य मेरुर्मन्दरसंज्ञकः।
व्यासोत्सेधपरिध्याद्यै र्धातकीखण्डमेरुवत् ॥१९९॥
तत्समः पुष्करार्धस्यापरस्य मध्यभूतले।
विद्युन्मालाह्वयो मेरुः स्यात्पूर्ववर्णनायुतः ॥२००॥

अर्थ—श्री जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कालोदधि समुद्र की सूक्ष्म परिधि का प्रमाण ९१७०६०५ योजन कहा गया है। इस कालोदधि समुद्र के आगे कालोदधि समुद्र से दुगुने (१६ लाख योजन) विस्तार वाला पुष्करवर द्वीप है। इस पुष्करवर द्वीप के मध्य में आठ लाख योजन छोड़कर शाश्वत और स्वर्णमय मानुषोत्तर नाम का पर्वत अवस्थित है। इस पर्वत से पुष्करवर द्वीप के दो भाग कर दिये गये हैं, इसीलिए इस द्वीप का सार्थक नाम पुष्करार्ध कहा जाता है। पुष्करार्ध द्वीप आठ लाख योजन विस्तृत और पुष्कर (एरण्ड) के वृक्ष को धारण करने वाला है। इस पुष्करार्ध द्वीप की उत्तर और दक्षिण दिशा में दिव्य चैत्यालयों से अलंकृत दो इष्वाकार पर्वत हैं, जिनका आयाम द्वीप के व्यास अर्थात् आठ-आठ लाख योजन प्रमाण है। ये दोनों इष्वाकार पर्वत पूर्वोक्त उत्सेध और व्यास से युक्त अर्थात् ४०० योजन ऊँचे और १००० योजन चौड़े चार चार कूटों से सुशोभित हैं। इन्हीं दोनों पर्वतों के कारण पुष्करार्ध द्वीप, पूर्व पुष्करार्ध और पश्चिम पुष्करार्ध के भेद से दो प्रकार का होता है। पूर्व पुष्करार्ध के मध्य में मन्दर नाम का मेरु पर्वत है, इसके व्यास, उत्सेध और परिधि आदि का प्रमाण धातकीखण्डस्थ मेरु पर्वत सदृश है। पश्चिम पुष्करार्ध के मध्य भूतल पर मन्दर मेरु के सदृश विद्युन्माला नाम का मेरु पर्वत है, जिसका सम्पूर्ण वर्णन धातकीखण्डस्थ मेरु पर्वत सदृश है ॥१९३-२००॥

अब पुष्करार्धद्वीप का सूची व्यास, परिधि और पर्वत अवरुद्ध क्षेत्र का प्रमाण कहते हैं—

एतस्य मध्यसूचीस्यात् पुष्करार्धस्य मध्यगा।
सप्तभिः संयुता त्रिंशल्लक्षयोजनसम्मिता ॥२०१॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

एकाकोटी च लक्षाणि सप्ताधिकदशस्फुटम्।
चतु:शतानि सप्ताग्रविंशतिश्चेति योजनै: ॥२०२॥
तस्या मध्यम सूच्या हि परिधिर्वर्णितागमे।
सूक्ष्मा सूक्ष्माखिलात्मादितत्वविद्भिर्न चेतरा ॥२०३॥
प्रोदिता पुष्करार्धस्य बाह्यसूची जिनादिभि:।
पञ्चसंयुक्तं चत्वारिंशल्लक्षयोजनप्रमा ॥२०४॥
एकाकोटीद्विचत्वारिंशल्लक्षास्त्रिंशदेव हि।
सहस्त्र द्वे शते चैकोनपञ्चाशदिति स्फुटम् ॥२०५॥
योजनैर्बाह्यसूच्या हि परिधि: श्रीजिनैर्मता।
क्रोशद्वयाधिका मानुषोत्तराभ्यन्तरावनौ ॥२०६॥
त्रिलक्षा: पंचपंचाशत्सहस्त्राणि शतानि षट्।
तथा चतुरशीतिश्चतु:कलायोजनस्य च ॥२०७॥
एकोनविंशभागानामिति योजनसंख्यया।
पुष्करार्धस्य संरुद्धक्षेत्रं चतुर्दशाचलै: ॥२०८॥

अर्थ—इस पुष्करार्ध द्वीप के मध्य में मध्यम सूची व्यास ३७००००० लाख योजन प्रमाण है। समस्त सूक्ष्म आत्मतत्त्व आदि को जानने वाले गणधरादि देवों के द्वारा जिनागम में इस मध्यम सूची व्यास की सूक्ष्म परिधि ११७००४२७ योजन कही गई है। यह प्रमाण सूक्ष्म का है, स्थूल परिधि का नहीं। जिनेन्द्रों के द्वारा पुष्करार्ध का बाह्य सूची व्यास ४५००००० योजन कहा गया है। मानुषोत्तर पर्वत की अभ्यन्तर भूमि पर्यन्त पुष्करार्ध के बाह्य सूची व्यास की सूक्ष्म परिधि जिनेन्द्रों के द्वारा १४२३०२४९ योजन और २ कोस प्रमाण कही गई है। पुष्करार्ध द्वीप के बारह कुलाचल और दो इष्वाकार पर्वतों से अवरुद्ध क्षेत्र ३५५६८४ योजन और एक योजन के १९ भागों में से ४ भाग ($\frac{४}{१९}$) प्रमाण कहा गया है ॥२०१-२०८॥

अब पुष्करार्ध स्थित बारह कुलाचलों के व्यास आदि का प्रमाण कहते हैं—

द्विषट्कुलाद्रयो जम्बूद्वीपस्थाद्र्युन्नतिप्रमा:।
अष्टलक्षायता योजनानामत्र प्रकीर्तिता: ॥२०९॥
अस्त्ययं हिमवान् धातकीखण्डस्थहिमाचलात्।
द्विगुणव्यास एतस्माच्चतुर्गुणोपरोगिरि: ॥२१०॥
ततश्चतुर्गुणो व्यासो निषधोऽन्ये त्रयोऽद्रय:।
नीलाद्या: पर्वतैरेभि: क्रमहान्या समानका: ॥२११॥

अर्थ-पुष्करार्ध द्वीप में जम्बूद्वीपस्थ कुलाचलों की ऊँचाई प्रमाण उत्सेध को लिये हुए आठ-

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

आठ लाख योजन लम्बे बारह कुलाचल पर्वत कहे गये हैं। यहाँ का हिमवान् पर्वत धातकीखण्डस्थ हिमवान् पर्वत के व्यास से दुगुने व्यास वाला है, इसके आगे-आगे निषध पर्वत पर्यन्त का व्यास हिमवन् पर्वत से चौगुना चौगुना होता गया है। इसके बाद नील आदि तीन पर्वतों का व्यास समान क्रम हानि को लिए हुए है। नील-निषध, रुक्मी-महाहिमवन् और शिखरी-हिमवान् पर्वतों का व्यास समान प्रमाण को लिए हुए है ॥२०९-२११॥

अमीषां प्रत्येक पृथक् विष्कम्भोन्नती-निगद्यंते—

हिमवतः उत्सेधः शतयोजनानि। विष्कम्भश्च चतुःसहस्रद्विशतयोजनानि, योजनस्यैकोन-विंशतिभागानां कलाः दश। महाहिमवतः उदयः द्विशतयोजनानि व्यासः षोडशसहस्राष्टशत-द्विचत्वारिंशद्योजनानि द्वे कले च। निषधस्योन्नतिः चतुःशतयोजनानि व्यासः सप्तषष्टिसहस्रत्रिशताष्टषष्टि योजनानि एकोन-विंशतिभागानामष्टकलाः। नीलस्योत्सेधव्यासौ निषधेन समानौ स्तः। रुक्मिणः उन्नतिव्यासौ महाहिमवता तुल्यौ च। शिखरिणः उदयविस्तारौ हिमवता समौ।

उपयुक्त गद्य का अर्थ निम्नलिखित तालिका में निहित है—

पुष्करार्धस्थ हिमवन् आदि पर्वतों के उत्सेध आदि का प्रमाण—

क्रमांक	नाम	उत्सेध	विष्कम्भ
१	हिमवन्	१०० योजन	४२१०$\frac{१०}{१९}$ योजन
२	महाहिमवन्	२०० योजन	१६८४२$\frac{२}{१९}$ योजन
३	निषध	४०० योजन	६७३६८$\frac{८}{१९}$ योजन
४	नील	४०० योजन	६७३६८$\frac{८}{१९}$ योजन
५	रुक्मि	२०० योजन	१६८४२$\frac{२}{१९}$ योजन
६	शिखरिन्	१०० योजन	४२१०$\frac{१०}{१९}$ योजन

अब पुष्करार्धस्थ क्षेत्रों के आकार और उनका व्यास आदि कहते हैं—

कुलाद्रयोऽत्र चक्रस्य भवन्त्यरैः समायताः।
अराणां मध्यरन्ध्रैः समक्षेत्राणि चतुर्दश ॥२१२॥
आदिमध्यान्तविस्तारैः क्रमवृद्धियुतानि च।
दीर्घाणि भरतादीनि किलाष्टलक्षयोजनैः ॥२१३॥
सहस्राण्येकचत्वारिंशत्पञ्चैव शतानि च।
एकोनाशीति युक्तानिभागाः शतद्विसप्ततिः ॥२१४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

इत्युक्तोऽभ्यन्तरे व्यासो भरतस्यैव योजनैः।
त्रिपञ्चाशत्सहस्त्राणि तथा पञ्चशतानि च ॥२१५॥
द्विषड्नवनवत्यग्रशतभागा इति श्रुते।
विष्कम्भो भरतस्योक्तो मध्ये योजनसंख्यया ॥२१६॥
पञ्चषष्टिसहस्त्राणि चत्वारि च शतान्यपि।
षट्चत्वारिंशदेवाथ तथा भागास्त्रयोदश ॥२१७॥
इत्याम्नातोऽत्र विस्तारो बाह्ये स भरतस्य च।
अस्माद् भरततस्त्रीणि क्षेत्राणि विस्तृतानि च ॥२१८॥
चतुश्चतुर्गुणैर्व्यासैस्ततस्त्रीण्यपराणि च।
एभिस्त्रिभिः समानानि हीनव्यासानि पूर्ववत् ॥२१९॥

अर्थ—जिस प्रकार गाड़ी के पहिये में आरा होते हैं, उसी प्रकार पुष्करार्ध द्वीप में कुलाचल आदि पर्वत समान लम्बाई को लिए हुए लम्बे फैले हैं तथा जिस प्रकार चक्रस्थित आरों के मध्य में छिद्र होते हैं, उसी प्रकार आरों सदृश पर्वतों के मध्य में जो छिद्र (स्थान) हैं, उसमें भरतादि चौदह क्षेत्र हैं। इन क्षेत्रों का विस्तार आदि, मध्य और अन्त में अनुक्रम से वृद्धि को लिए हुए है तथा इनकी लम्बाई द्वीप के सदृश आठ लाख योजन प्रमाण है। जिनागम में भरत क्षेत्र का अभ्यंतर व्यास ४१५७९$\frac{१७२}{२१२}$योजन, मध्यम व्यास ५३५१२ $\frac{१९९}{२१२}$ है योजन और बाह्य व्यास ६५४४६ $\frac{१३}{२१२}$ योजन प्रमाण कहा गया है। इस भरत क्षेत्र से आगे के तीन क्षेत्रों का विस्तार (भरत क्षेत्र से प्रारम्भ कर) क्रमशः चौगुना-चौगुना है और उसके आगे के तीन क्षेत्रों का विस्तार क्रमशः समान हानि को लिए हुए है ॥२१२-२१९॥

अमीषां पृथग्विषकम्भाः प्रोच्यन्ते—

भरतस्याभ्यन्तरे विस्तारः एकचत्वारिंशत्सहस्रपञ्चशतैकोनाशीतियोजनानि, योजनस्य द्विशत-द्वादशभागानां द्वासप्तत्यग्रशतभागाश्च। मध्यव्यासः त्रिपञ्चाशत्सहस्रपञ्चशतद्वादशयोजनानि नवनवत्यधिक-शतभागाश्च। बाह्यविस्तृतिः पञ्चषष्टिसहस्रचतुःशतषड्चत्वारिंशद्योजनानि भागास्त्रयो-दश। हैमवतस्याभ्यन्तरविष्कम्भः एकलक्षषट्षष्टिसहस्रत्रिशतैकोनविंशतियोजनानि द्विशतद्वादशभागानां द्विपञ्चाशद्भागाः। मध्य-व्यासः द्विलक्षचतुर्दशसहस्रैक पञ्चाशद्योजनानि, षष्टियुतशतभागाश्च। बाह्यविस्तृतिः द्विलक्षैकषष्टिसहस्र-सप्तशतचतुरशीतियोजनानिद्विपञ्चाशद्भागाश्च। हरिवर्षस्याभ्यन्तर-व्यास-षड्लक्षपञ्चषष्टिसहस्रद्विशत-षट्सप्ततियोजनानि द्विशतद्वादशभागानां द्विशताष्टभागाश्च। मध्यविष्कम्भः अष्टलक्षषट्पञ्चाशत्सहस्रद्विशत-सप्तयोजनानि भागाश्चत्वारः। बाह्यविस्तारः दशलक्षसप्तचत्वारिंशत्सहस्रैक शतषड्त्रिंशद्योजनानि द्विशताष्ट-भागाश्च। विदेहस्याभ्यन्तरव्यासः षड्विंशतिलक्षैकषष्टिसहस्रैकशतसप्तयोजनानि, योजनस्य द्विशतद्वादश-भागानां षण्णवत्यग्रशतभागाः। मध्यविष्कम्भः चतुस्त्रिंशल्लक्ष चतुर्विंशतिसहस्राष्टशताष्टाविंशतियोजनानि, भागाः षोडशैव। बाह्यविस्तारः

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

एकचत्वारिंशल्लक्षाष्टाशीति सहस्रपञ्चशतसप्तचत्वारिंशद्योजनानि, षण्ण-वत्यधिकशतभागाः। रम्यकअन्तर्मध्यबाह्यव्यासैः हरिवर्षसमः। हैरण्यवतश्चहैमवतसमानः। भरतैरावतसमौस्तः।

नोट—उपर्युक्त समस्त गद्य का अर्थ निम्नलिखित तालिका में समाहित किया गया है।

पुष्करार्ध द्वीप में स्थित भरतादि सात क्षेत्रों का अभ्यन्तर, मध्य और बाह्य विष्कम्भ—

क्रमांक	क्षेत्रनाम	अभ्यन्तर विष्कम्भ	मध्य विष्कम्भ	बाह्य विष्कम्भ
१	भरत	४१५७९ $\frac{१७२}{२१२}$ योजन	५३५१२ $\frac{१९९}{२१२}$ योजन	६५४४६ $\frac{१३}{२१२}$ योजन
२	हैमवत	१६६३१९ $\frac{५२}{२१२}$ योजन	२१४०५१ $\frac{१६०}{२१२}$ योजन	२६१७८४ $\frac{५२}{२१२}$ योजन
३	हरि	६६५२७६ $\frac{२०८}{२१२}$ योजन	८५६२०७ $\frac{४}{२१२}$ योजन	१०४७१३६ $\frac{२०८}{२१२}$ योजन
४	विदेह	२६६११०७ $\frac{१९६}{२१२}$ योजन	३४२४८२८ $\frac{१६}{२१२}$ योजन	४१८८५४७ $\frac{१९६}{२१२}$ योजन
५	रम्यक	६६५२७६ $\frac{२०८}{२१२}$ योजन	८५६२०७ $\frac{४}{२१२}$ योजन	१०४७१३६ $\frac{२०८}{२१२}$ योजन
६	हैरण्यवत	१६६३१९ $\frac{५२}{२१२}$ योजन	२१४०५१ $\frac{१६०}{२१२}$ योजन	२६१७८४ $\frac{५२}{२१२}$ योजन
७	ऐरावत	४१५७९ $\frac{१७२}{२१२}$ योजन	५३५१२ $\frac{१९९}{२१२}$ योजन	६५४४६ $\frac{१३}{२१२}$ योजन

अब पुष्करार्धस्थ पद्म आदि सरोवरों, गंगादि नदियों, कुण्डों, भद्रशाल वनों एवं गजदन्तों का व्यास आदि कहते हैं—

चतुःसहस्रदीर्घो द्विसहस्रविस्तृतो ह्रदः।
पद्मः पद्मान्महापद्मो द्विगुणो योजनैःस्मृतः ॥२२०॥
महापद्मात्तिगिञ्छोऽपि द्विगुणायामविस्तृतः।
तुल्या एभिस्त्रिभिः शेषाः क्रमह्रस्वाः त्रयो ह्रदाः ॥२२१॥
गङ्गासिन्ध्वोश्च विष्कम्भः पञ्चविंशतिसंख्यकः।
आदावन्तेऽत्र सार्धद्विशतयोजनसंख्यया ॥२२२॥
आभ्यां द्वे द्वे महानद्यौ विदेहान्तं प्रवर्धिते।
द्विगुणद्विगुणव्यासैर्हीयमानास्तथापराः ॥२२३॥
षड्भिश्च सरिदाद्याभिः षड्नद्यः समविस्तराः।
द्विगुणद्विगुणैर्ह्रस्वा ऐरावतान्तमञ्जसा ॥२२४॥
गङ्गासिन्ध्वोश्च कुण्डे द्वे सार्धद्विशतविस्तृते।
ततो द्विद्विमहानद्योर्विदेहान्तं सुविस्तृते ॥२२५॥
द्विगुणाद्विगुणव्यासैर्द्वे द्वे कुण्डे च योजनैः।
तथान्ये द्विगुणह्रासे कुण्डे नद्योर्द्वयोर्द्वयोः ॥२२६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

द्वौ लक्षौ योजनानां सहस्राः पंचदशप्रमाः।
सप्तशतानि चाष्टा पञ्चाशदित्युक्तसंख्यया ॥२२७॥
आयामः पुष्करार्धे स्यात् प्रत्येकं भद्रशालयोः।
रम्ययोश्चैत्यगेहाद्यैः पूर्वापरसमाह्वयोः ॥२२८॥
लक्षाणि विंशतिश्च द्विचत्वारिंशत्सहस्त्रकाः।
द्वे शते योजनानां चैकोन विंशतिरित्यपि ॥२२९॥
द्वयोः प्रत्येकमायामो ज्येष्ठयोर्गजदन्तयोः।
लक्षाणि षोडशैवाथ षड्विंशतिसहस्त्रकाः ॥२३०॥
शतैकषोडशैवेति प्रोक्तयोजनसंख्यया।
लघीयसोः समायामः प्रत्येकं गजदन्तयोः ॥२३१॥

अर्थ—पुष्करार्धस्थ पद्म सरोवर ४००० योजन लम्बा और २००० योजन चौड़ा है। पद्म सरोवर से महापद्म की लम्बाई चौड़ाई दुगुनी अर्थात् लम्बाई आठ हजार योजन और चौड़ाई ४००० योजन है, इससे तिगिञ्छ सरोवर की लम्बाई चौड़ाई दुगुनी है, इसके आगे के केशरी आदि तीनों सरोवर अनुक्रम से ह्रस्व होते हुए दक्षिणगत सरोवरों की लम्बाई चौड़ाई के समान ही लम्बे एवं चौड़े हैं। गंगा सिन्धु नदियों का आदि विष्कम्भ २५ योजन और अन्तिम विष्कम्भ २५० योजन प्रमाण है। इसके आगे विदेह तक वृद्धिंगत होता हुआ दो-दो महानदियों का यह विष्कम्भ दूना-दूना है, इसके आगे ऐरावत क्षेत्र स्थित नदियों तक का विष्कम्भ क्रमशः दुगुना-दुगुना हीन है। नारी-नरकान्ता, सुवर्णकूला-रूप्यकूला और रक्ता-रक्तोदा का व्यास दक्षिणगत छह नदियों के समान है। गंगा-सिन्धु सम्बन्धी दो कुण्डों का व्यास २५० योजन प्रमाण है। विदेह पर्यन्त दो-दो महानदियों सम्बन्धी दो-दो कुण्डों का यह व्यास दुगुने-दुगुने प्रमाण वाला प्राप्त होता है और इसके आगे के दो-दो नदियों सम्बन्धी दो-दो कुण्डों का व्यास क्रमशः दुगुना-दुगुना हीन है। पुष्करार्धस्थ चैत्यगृहों आदि से अलंकृत पूर्व भद्रशाल एवं पश्चिम भद्रशाल वनों का भिन्न-भिन्न आयाम २१५७५८ योजन प्रमाण है। बृहद् गजदन्तों में प्रत्येक का भिन्न-भिन्न व्यास २०४२२१९ योजन प्रमाण और लघु गजदन्तों में प्रत्येक का भिन्न-भिन्न व्यास १६२६११६ योजन प्रमाण कहा गया है ॥२२०-२३१॥

अब देवकुरु-उत्तरकुरु के वाण तथा उभय विदेह, वक्षार पर्वत, विभंगा नदी और देवारण्य-भूतारण्य के व्यास का प्रमाण कहते हैं—

लक्षाः सप्तदशैवाथ सहस्राः सप्तसम्मिताः।
शतानि सप्तसंख्यानि योजनानि चतुर्दश ॥२३२॥
इति प्रोक्तः पृथग्वाणो देवोत्तरकुरुद्वयोः।
उत्कृष्टभोगभूम्योश्च प्रत्येकं श्रीगणाधिपैः ॥२३३॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

एकोनत्रिंशसहस्त्रास्तथासप्तशतानि च।
चतुर्नवतिरेवैकं गव्यूतमिति योजनैः ॥२३४॥
प्रोक्तः पृथक् पृथक् व्यासो देशानां द्विविदेहके।
वक्षाराणां च विष्कम्भो द्विसहस्त्राङ्कयोजनैः ॥२३५॥
शतानि पंचविस्तारो विभङ्गासरितां पृथक्।
सर्वासां योजनानां च पूर्वपश्चिमभागयोः ॥२३६॥
एकादशसहस्त्राणि योजनानां शतानि षट्।
अष्टाशीतिरिति व्यासो देवभूतद्वयरण्ययोः ॥२३७॥

अर्थ—जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा उत्तरकुरु देवकुरु नामक उत्तम भोगभूमियों का भिन्न-भिन्न वाण १७०७७१४ योजन प्रमाण कहा गया है। पूर्व विदेह एवं अपर विदेह का भिन्न-भिन्न व्यास २९७९४ योजन १ कोस, वक्षार पर्वतों का व्यास २००० योजन और पूर्व-पश्चिम दोनों पुष्करार्धों में स्थित समस्त विभंगा नदियों का पृथक् पृथक् व्यास ५०० योजन प्रमाण दर्शाया गया है। देवारण्य एवं भूतारण्य इन दोनों वनों का पृथक्-पृथक् व्यास ११६८८ योजन प्रमाण है ॥२३२-२३७॥

अब वक्षार, देश, देवारण्य आदि वन तथा विभंगा नदियों के आयाम का और उस आयाम में हानि वृद्धि का प्रमाण कहते हैं—

वक्षाराणां च देशानां देवाद्यरण्ययोर्द्वयोः।
आयामः स विदेहस्य योऽर्धायामोऽप्यनेकधा ॥२३८॥
नदीव्यासोनितो वृद्धिह्रासयुक्तो मतः श्रुते।
विभङ्गानां तथायामः कुण्डव्यासोनितो भवेत् ॥२३९॥

अर्थ—विदेह के आयाम में से सीता वा सीतोदा नदी का व्यास घटाकर शेष का आधा करने पर वक्षार पर्वतों का, देशों का और दोनों देवारण्य वनों का आयाम प्राप्त हो जाता है। यह आयाम वृद्धि और ह्रास के कारण अनेक प्रकार हो जाता है ऐसा श्रुत में कहा गया है। इस आयाम में से कुण्ड का व्यास (५०० यो.) कम कर देने पर विभंगा नदी का आयाम हो जाता है ॥२३८-२३९॥

अब पुष्करार्धस्थ समस्त विजयार्धों के व्यास आदि का प्रमाण एवं विदेहस्थ क्षेत्रों के छह खण्ड होने का कारण कहते हैं—

योजनद्विशतव्यासाः सर्वे रूप्याचला मताः।
देशव्याससमायामाः पूर्वोन्नतिसमोन्नताः ॥२४०॥
गङ्गासिन्धुनदीभ्यां च द्वाभ्यां रूप्याद्रिणाखिलाः।
षट्खण्डीभागमापन्ना विदेहे विषयाः स्मृताः ॥२४१॥

अर्थ—पुष्करार्धस्थ समस्त विजयार्ध पर्वतों का आयाम (लम्बाई) अपने-अपने देश की चौड़ाई

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

के प्रमाण है। अर्थात् जितने योजन देश की चौड़ाई है, उतने ही योजन विजयार्ध की लम्बाई है। रूपाचलों का व्यास २०० योजन और ऊँचाई पूर्वकथित (२५ योजन) प्रमाण है। विदेहस्थ समस्त देशों के गंगा-सिन्धु इन दो-दो नदियों और एक-एक रूपाचल (विजयार्ध) पर्वतों से छह-छह खण्ड हुए हैं ॥२४०-२४१॥

अब गंगादि क्षुल्लक नदियों के और कुण्डों के व्यास आदि का प्रमाण कहते हैं—

विभङ्गोत्पत्ति कुण्डानि सर्वाणि विस्तृतानि च।
द्वारतोरणयुक्तानि स्युः पञ्चशतयोजनैः ॥२४२॥
गंगादिक्षुल्लकाभ्यः प्राग् नदीभ्यः सरितोऽत्र च।
गङ्गाद्या द्विगुणव्यासाः पूर्वावगाहसम्मिताः ॥२४३॥
गंगाद्युत्पत्ति कुण्डानि सार्धद्विशतयोजनैः।
विस्तृतानि च पूर्वोक्तागाहवेदियुतान्यपि ॥२४४॥

अर्थ—विभंगा नदियों की जिनसे उत्पत्ति होती है ऐसे तोरण द्वार आदि से अलंकृत समस्त कुण्डों का विस्तार ५०० योजन प्रमाण है। धातकीखण्डस्थ विदेह में गंगा आदि छोटी नदियों का जो व्यास कहा है उससे पुष्करार्धस्थ विदेह को गंगादि क्षुल्लक नदियों का व्यास दूना और अवगाह जम्बूद्वीपस्थ विदेह की गंगादि नदियों के अवगाह प्रमाण है। गंगादि क्षुल्लक नदियों की जिनसे उत्पत्ति होती है ऐसे वेदी एवं तोरण आदि से युक्त समस्त कुण्डों का व्यास २५० योजन और अवगाह पूर्वोक्त प्रमाण है ॥२४२-२४४॥

इदानीं विषयादीनामायामवृद्धिः कथ्यते।

देशानां प्रत्येकमायामवृद्धिः नवसहस्रचतुःशताष्टचत्वारिंशद्योजनानि, योजनस्य द्विशतद्वादशभागानां षट्पञ्चाशद्भागाः। वक्षाराणां पृथगायाम वृद्धिः नवशतचतुः पञ्चाशद्योजनानि विंशत्यग्रशतभागाः। विभङ्गानां प्रत्येकमायामवृद्धिः द्विशतैकोनचत्वारिंशद्योजनानि, द्विशतद्वादशभागानां भागास्त्रयोदशदेवारण्य-भूतारण्ययोः पृथगायामवृद्धिः पञ्चसहस्रपञ्चशताष्टासप्ततियोजनानि, योजनस्य द्विशतद्वादशभागानां चतुरशीत्यग्रशत भागाश्च।

अब पुष्करार्धस्थ देशों आदि के आयाम की वृद्धि का प्रमाण कहते हैं—

अर्थ—कच्छादि भिन्न-भिन्न देशों की लम्बाई में वृद्धि का प्रमाण ९४४८ $\frac{५६}{२१२}$ योजन, वक्षार पर्वतों की पृथक्-पृथक् लम्बाई में वृद्धि का प्रमाण ९५४ $\frac{१२०}{२१२}$ योजन, प्रत्येक विभंगा नदियों की लम्बाई में वृद्धि का प्रमाण २३९ $\frac{१३}{२१२}$ योजन और प्रत्येक देवारण्य और भूतारण्य की लम्बाई में वृद्धि का प्रमाण ५५७८ $\frac{१८४}{२१२}$ योजन प्रमाण है। अर्थात् कच्छादि देशों, वक्षार पर्वतों, विभंगा नदियों और देवारण्य भूतारण्य वनों की अपनी-अपनी आदिम लम्बाई में उपयुक्त अपनी-अपनी वृद्धि का प्रमाण मिला देने पर उनकी मध्यम लम्बाई का प्रमाण और मध्यम लम्बाई में भी उसी स्व, स्व वृद्धि का

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

प्रमाण मिला देने से उनकी अपनी-अपनी अन्तिम लम्बाई का प्रमाण होता है।

अधुना विदेहस्याष्टलक्षयोजनव्यासस्य मेर्वाद्यैर्व्याप्ता पृथग्गणना निगद्यते–

मेरोर्व्यासः चतुर्नवतिशतयोजनानि। द्वयोः पूर्वापर भद्रशालवनयोः पिण्डीकृतो विस्तारः चतुर्लक्षैकत्रिंशत्सहस्रपञ्चशतषोडशयोजनानि। षोडशविषयाणामेकत्रीकृतो विष्कम्भः त्रिलक्षषोडश-सहस्रसप्तशताष्टयोजनानि। अष्टवक्षाराणां पिण्डितो व्यासः षोडशसहस्रयोजनानि। षड्विभङ्गानदीनां मेलिता विस्तृतिस् त्रिसहस्रयोजनानि। द्वयोर्देवारण्यभूतारण्ययोरेकत्रीकृतो व्यासः त्रयोविंशतिसहस्रत्रिशत-षट्सप्ततियोजनानि। इत्येवं पिण्डीकृतः सकलविदेहस्य विष्कम्भ अष्टलक्षयोजनप्रमो मन्तव्यः॥

अब विदेहक्षेत्र के आठ लाख योजन व्यास के मेरु आदि के द्वारा व्याप्त क्षेत्र के प्रमाण की पृथक्-पृथक् गणना करते हैं–

अर्थ–मेरु पर्वत का व्यास ९४०० योजन, पूर्व-पश्चिम भद्रशाल वनों का एकत्रित व्यास ४३१५१६ योजन, कच्छादि १६ देशों का एकत्रित व्यास ३१६७०८ योजन, आठों वक्षार पर्वतों का एकत्रित व्यास १६००० योजन, छह विभंगा नदियों का एकत्रित व्यास ३००० योजन और देवारण्य-भूतारण्य का एकत्रित व्यास २३३७६ योजन प्रमाण है। इस प्रकार इन सब व्यासों का एकत्रित प्रमाण– (९४०० + ४३१५१६ + ३१६७०८ + १६००० + ३००० + २३३७६) = ८००००० अर्थात् आठ लाख योजन (सम्पूर्ण विदेह क्षेत्र का प्रमाण) जानना चाहिए।

अब पुष्करार्धद्वीपस्थ वृक्ष, पर्वत, वेदी, कुण्ड और द्वीप के रक्षक देवों का वर्णन करते हैं–

जम्बूवृक्षसमोत्सेधव्यासचैत्यालयाङ्कितौ ।
प्रागुक्त परिवारौ स्तोऽत्रापि द्वौ पुष्करद्रमौ ॥२४५॥
समस्ता नाभिशैलाश्च यमका वृषभाद्रयः।
ह्रदा भोगधराः सर्वा दिग्गजाः कनकाद्रयः ॥२४६॥
वेदीकुण्डादयोऽन्ये च द्वीपेऽस्मिन् पुष्करार्धके।
विज्ञेया धातकीखण्डद्वीपस्य गणनासमाः ॥२४७॥
यावन्तो धातकीखण्डे शैला मेर्वादयोऽखिलाः।
तावन्तः पुष्करार्धे स्युर्वनवेद्याद्यलङ्कृताः ॥२४८॥
गङ्गादिप्रमुखाः सर्वा नद्योऽत्रापि भवन्ति च।
धातकीखण्डसंख्याढ्या वनवेद्यादिशोभिताः ॥२४९॥
स्वामिनौ पुष्करार्धस्य तस्य श्रीजिनभक्तिकौ।
स्तः पद्मपुण्डरीकाख्यौ दक्षिणोत्तरवासिनौ ॥२५०॥

अर्थ–जम्बूद्वीपस्थ जम्बूवृक्ष के उत्सेध और आयाम सदृश उत्सेध (१० योजन) एवं व्यास (मध्यभाग की चौड़ाई ६ योजन और अग्रभाग की ४ योजन) से युक्त, चैत्यालय आदि से अलंकृत तथा

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

पूर्वोक्त परिवार (१४०१२०) वृक्षों से वेष्टित पूर्व-पश्चिम दोनों पुष्करार्धों में दो एरण्ड के वृक्ष स्थित हैं। पुष्करार्धद्वीपस्थ समस्त नाभिगिरि, यमकगिरि, वृषभाचल, सरोवर, सर्व भोगभूमियाँ, दिग्गज पर्वत, काञ्चन पर्वत, वेदियाँ एवं कुण्ड आदि और भी अन्य सभी की प्रमाण संख्या धातकीखण्ड द्वीपस्थ नाभिगिरि आदि की प्रमाण संख्या के समान ही जानना चाहिए। धातकीखण्ड में मेरु आदि जितने पर्वत हैं, वनवेदियों आदि से अलंकृत उतने ही पर्वत पुष्करार्ध द्वीप में हैं। गंगादि प्रमुख नदियों सहित धातकीखण्ड में जितनी नदियाँ हैं, वनवेद्यादि से सुशोभित उतनी ही नदियाँ पुष्करार्ध द्वीप में हैं। श्री जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति से युक्त, दक्षिण और उत्तर दिशा में निवास करने वाले पद्म और पुण्डरीक नाम के दो व्यन्तरदेव पुष्करार्धद्वीप के अधिपति हैं ॥२४५-२५०॥

अब अढ़ाई द्वीपस्थ पर्वतों और नदियों आदि की एकत्रित संख्या कहते हैं—

एकोनषष्टिसंयुक्तसार्धसहस्रसम्मिताः ।
सार्धद्वीपद्वये सर्वे मेर्वादिप्रमुखाद्रयः ॥२५१॥
एकोननवतिर्लक्षाः सहस्राः षष्टिसंख्यकाः ।
चतुःशतानि पञ्चाशदित्यङ्कसंख्ययाखिलाः ॥२५२॥
गङ्गादिप्रमुखा नद्यो मूलोत्तरसमाह्वयाः ।
पिण्डीकृता भवन्त्यत्र नृक्षेत्रे च क्षयोज्झिताः ॥२५३॥
त्रिंशद्भोगधराः कर्मपृथ्व्यः पञ्चदशप्रमाः ।
शतसंख्या द्रहाःसीतासीतोदामध्यसंस्थिताः ॥२५४॥
कुलाद्रिमूर्धभागस्थास्त्रिंशद्द्रहाश्चपिण्डिताः ।
गङ्गादिपातभूभागस्थानि कुण्डानि सप्ततिः ॥२५५॥
विभङ्गोत्पत्तिकुण्डानि सर्वाणि षष्टिरेव च ।
गङ्गादिसरितां लघ्वीनां सन्ति जनकानि च ॥२५६॥
शतानि त्रीणि विंशत्यग्राणि कुण्डानि चाञ्जसा ।
सप्तत्यग्रशतं देशानगर्योदेशसम्मिताः ॥२५७॥
कुरुवृक्षादशेत्येवं संख्यागणनयाखिलाः ।
सार्धद्वीपद्वये ज्ञेया अन्ये वा वेदिकादयः ॥२५८॥

अर्थ—ढ़ाई द्वीप के मेरु आदि प्रमुख पर्वतों का कुल योग १५५९ है। अर्थात् ढ़ाई द्वीप में कुल पर्वत १५५९ हैं ॥२५१॥

नोट—त्रिलोकसार गाथा ७३१ में जम्बूद्वीपस्थ प्रमुख पर्वतों की कुल संख्या 'तिसदेक्कारससेले' [अर्थात् १ सुदर्शन मेरु + ६ कुलाचल + ४ यमकगिरि + २०० काञ्चन पर्वत + ८ दिग्गज + १६ वक्षार पर्वत + ४ गजदन्त + ३४ विजयार्ध + ३४ वृषभाचल और + ४ नाभिगिरि हैं, इन सबका योग १ + ६ + ४ + २०० + ८ + १६ + ४ + ३४ + ३४ + ४ =] ३११ कही गई है, जबकि एक मेरु

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सम्बन्धी ३११ पर्वत हैं, तब पंचमेरु सम्बन्धी प्रमुख पर्वतों की संख्या (३११×५)=१५५५ प्राप्त होती है किन्तु उपर्युक्त श्लोक में १५५९ कही गई है, क्योंकि इसमें ४ इष्वाकार पर्वत और लिये गये हैं। मनुष्य लोक (ढ़ाई द्वीप) में अनाद्यनन्त गंगादि ९० मूल नदियों और उनकी परिवार नदियों का कुल योग ८९६०४५० है। अर्थात् जम्बूद्वीपस्थ भरतैरावत की गंगा, सिन्धु, रक्ता और रक्तोदा इन चार की परिवार नदियाँ (१४०००×४)= ५६०००, हैमवत-हैरण्यवत क्षेत्र की रोहित, रोहितास्या, स्वर्णकूला और रूप्यकूला की परिवार नदियाँ (२८०००×४)=११२०००, हरि-रम्यक क्षेत्र स्थित हरित् हरिकान्ता, नारी और नरकान्ता को परिवार नदियाँ (५६०००×४)=२२४०००, देवकुरु-उत्तरकुरु गत सीता, सीतोदा की परिवार नदियाँ (८४०००×२)=१६८०००, बारह विभंगा नदियों की परिवार नदियाँ (२८०००×१२) = ३३६००० और बत्तीस विदेहस्थ गंगा, सिन्धु, रक्ता और रक्तोदा इन ६४ की परिवार नदियाँ (१४००० × ६४)=८९६००० हैं। इन सम्पूर्ण मूल एवं परिवार नदियों की कुल योग (४+४+४+२+१२+६४+ ५६०००+११२०००+२२४०००+१६८०००+३३६०००+८९६०००=१७९२०९० है। जबकि एक मेरु सम्बन्धी सम्पूर्ण प्रमुख नदियाँ १७९२०९० हैं, तब पंचमेरु सम्बन्धी (१७९२०९०×५)=८९६०४५० नदियों का प्रमाण प्राप्त होता है। अढ़ाई द्वीप में तीस भोगभूमियाँ, पंच भरत, पंच ऐरावत और पंच विदेह इस प्रकार १५ कर्मभूमियाँ तथा सीता-सीतोदा के मध्य स्थित १०० द्रह हैं। पंच मेरु सम्बन्धी ३० कुलाचलों के ऊपर पद्म आदि ३० सरोवर हैं, इस प्रकार ढ़ाई द्वीप में कुल (१००+३०)=१३० सरोवर हैं। गंगादि (१४×५)=७० महानदियों का भूमि पर जहाँ पतन होता है, वहाँ कुण्ड हैं, अतः ७० कुण्ड ये, (१२×५)=६० विभंगा नदियों की उत्पत्ति से सम्बन्ध रखने वाले कुण्ड ६० और गंगादि क्षुल्लक (६४ ×५)=३२० नदियों की उत्पत्ति के ३२० कुण्ड हैं। इस प्रकार ढ़ाई द्वीप में कुल कुण्डों की संख्या (७०+६०+३२०)=४५० है। एक मेरु सम्बन्धी ३२ विदेह+१ भरत+१ ऐरावत क्षेत्र=३४ देश हैं, इसलिये पंच मेरु सम्बन्धी (३४×५)=१७० देश हैं और १७० ही नगरियाँ हैं। पंच मेरु सम्बन्धी दस कुरु क्षेत्रों में जम्बू आदि १० ही अनादि निधन वृक्ष हैं। इसी प्रकार वेदिकाएँ आदि भी जानना चाहिए। जैसे-जम्बूद्वीप में एक मेरु सम्बन्धी (३११ पर्वतों की ३११ वेदियाँ + ९० कुण्डों की ९० वेदियाँ - ४-२६ सरोवरों की २६ वेदियाँ + और १७९२०९० नदियों के दोनों तटों की ३५८४१८० वेदियाँ) = ३५८४६०७ वेदियाँ हैं, इसलिये पंच मेरु सम्बन्धी समस्त वेदियों का कुल योग (३५८४६०७×५) =१७९२३०३५ प्राप्त होता है। इस प्रकार यह अढ़ाई द्वीप के कुछ पर्वतों आदि का एकत्रित योग कहा गया है, अन्य का भी इसी प्रकार जानना चाहिए ॥२५१-२५८॥

अब समस्त (पाँचों) विदेहस्थ आर्य खण्डों की धर्म को आदि लेकर अन्य अन्य विशेषताओं का प्रज्ञापन करते हैं-

षष्ट्यग्रशतदेशस्थार्यखण्डेषु जिनोदिताः।
श्रावकैर्यतिभिर्द्वेधा धर्मोऽक्षयः प्रवर्तते ॥२५९॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

हानिवृद्ध्यादिदूरस्थो ह्यहिंसालक्षणो महान्।
स्वर्मुक्तिजनको नान्योऽङ्गिघ्नो वेदादिजल्पितः ॥२६०॥
अर्हन्तश्च गणाधीशाः सूरिपाठकसाधवः।
नृदेवसङ्घवन्द्यार्च्याः स्थविराश्च प्रवर्तकाः ॥२६१॥
धर्मोपदेशदातारो विहरन्ति निरन्तरम्।
धर्मप्रवृत्तये केवलिनो न च कुलिङ्गिनः ॥२६२॥
पुरग्रामादिसर्वेषु सर्वत्र च वनादिषु।
दीप्रा जिनालयास्तुङ्गा दृश्यन्ते जिनमूर्तयः ॥२६३॥
हेमरत्नमयाभव्यैः पूजिता वन्दिताः स्तुताः।
न जातु नीचदेवानां गृहा वा मूर्तयोऽशुभाः ॥२६४॥
शाश्वतो मुक्तिमार्गोऽत्र वर्तते योगिनां सदा।
स्वर्गो गृहाङ्गणोऽत्रस्थपुण्यभाजां सुखावहः ॥२६५॥
प्रजा वर्णत्रयोपेता जिनधर्मरताः शुभाः।
व्रतशीलतपोदृष्टिभूषिता न द्विजाः क्वचित् ॥२६६॥
मिथ्यात्वपञ्चकं नात्र स्वप्नेऽपि जातु दृश्यते।
द्रव्यभूतं न तद्वक्ता न वान्यच्च मतान्तरम् ॥२६७॥
किन्त्वेको जिनधर्मोऽत्र विलोक्यते गृहे गृहे।
पुण्यभाजां तपोदानव्रतपूजोत्सवादिभिः ॥२६८॥
इति प्रवरदेशेषु लभन्ते जन्मसत्कुले।
प्रागर्ज्जितशुभा भव्याः सद्गत्याप्त्यै न चेतराः ॥२६९॥

अर्थ—अढ़ाई द्वीपस्थ विदेहों के एक सौ साठ आर्यखण्ड हैं, उन आर्यखण्डों के एक सौ साठ (१६०) देशों में जिनेन्द्र भगवान् द्वारा कथित श्रावक धर्म और मुनि धर्म के भेद से दो प्रकार के धर्म का एक सदृश प्रवर्तन निरन्तर होता रहता है। अहिंसा लक्षण से लक्षित और स्वर्ग-मुक्ति को देने वाला यह महान् धर्म हानि-वृद्धि से रहित है। वहाँ पर जिसमें जीवों का घात होता है, ऐसा वेद आदि के द्वारा कहा हुआ हिंसामय धर्म नहीं है। वहाँ पर धर्म प्रवर्तन के लिये मनुष्यों, देवों और संघों से वन्दनीय एवं पूजनीय केवली भगवन्त, अरहन्त प्रभु, गणधरदेव, आचार्य परमेष्ठी, उपाध्याय देव, साधु परमेष्ठी, स्थविर (वृद्धाचार्य अर्थात् तपोभार से युक्त) मुनिराज, प्रवर्तक मुनिराज और धर्मोपदेश रूपी अमृत का पान कराने वाले धर्मोपदेश दाता मुनिराज निरन्तर विहार करते हैं। वहाँ कुलिंगी साधु नहीं हैं। वहाँ पर नगरों में, ग्रामों में, वनों में तथा और भी अन्य सभी स्थानों में अत्यन्त देदीप्यमान और उत्तुंग जिनालय ही दिखाई देते हैं, जिनमें स्थित स्वर्ण और रत्नमय जिनप्रतिमाएँ भव्य जीवों के द्वारा निरन्तर पूजित, वन्दित एवं स्तुत होती हैं। अर्थात् भव्यजीव उन प्रतिमाओं की निरन्तर पूजा करते हैं,

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

दर्शन करके वन्दना करते हैं और अनेक प्रकार की स्तुति करते हैं। वहाँ पर कभी भी नीच देवों के मन्दिर और अशुभ प्रतिमाएँ दिखाई नहीं देतीं। यहाँ पर योगियों का अनाद्यनिधन निर्ग्रन्थ मोक्षमार्ग निरन्तर प्रवर्तित रहता है। यहाँ स्थित पुण्यशाली जीवों को सुख देने वाला यह क्षेत्र स्वर्ग के आँगन सदृश है। तीन वर्णों से युक्त एवं व्रत, शील, तप और सम्यग्दर्शन से विभूषित यहाँ की प्रजा हमेशा अत्यन्त शुभ जिनधर्म में ही रत रहती है। यहाँ ब्राह्मण वर्ण कहीं भी नहीं हैं। यहाँ स्वप्न में भी कहीं पाँच प्रकार का मिथ्यात्व दिखाई नहीं देता। न यहाँ मिथ्यात्व का उपदेश देने वाले उपदेशक ही होते हैं और न कोई मतान्तर ही हैं किन्तु पुण्यवान् जीवों के तप, दान, व्रत, पूजा और अनेक धार्मिक उत्सवों के द्वारा प्रत्येक गृहों में मात्र एक जैनधर्म ही देखा जाता है। इस प्रकार के श्रेष्ठ देशों के उत्तम कुलों में स्वर्ग और मोक्ष रूप उत्तम गतियों की प्राप्ति के लिए पूर्वोपाजित पुण्य से युक्त भव्यजीव ही जन्म लेते हैं, अन्य अर्थात् क्षीण पुण्य वाले नहीं ॥२५९-२६९॥

अब मानुषोत्तर पर्वत का सविस्तर वर्णन करते हैं—

अथास्य पुष्करार्धस्य मध्यभागे विराजते।
शैलोऽर्हच्चैत्यगेहाद्यैः स श्रीमान्मानुषोत्तरः ॥२७०॥
चतुर्दशनदीनिर्गमनद्वारादिशालिनः ।
क्रमह्रस्वस्य चास्याद्रेरुदयो योजनैर्मतः ॥२७१॥
एकविंशतिसंयुक्तसप्ताग्रदशभिः शतैः।
भूतले विस्तरो द्वाविंशतियुक्तसहस्रकः ॥२७२॥
मध्ये व्यासस्त्रयोविंशत्यग्रसप्तशतप्रमः।
मूर्ध्निव्यासश्चतुर्विंशाग्रचतुःशतमानकः ॥२७३॥
अवगाहो गव्यूत्यग्रत्रिंशच्चतुःशतप्रमः।
क्रोशद्वयोन्नता दिव्यादीप्रास्ति मणिवेदिका ॥२७४॥
नैऋत्यवायुदिग्भागौ मुक्त्वा षड्दिग्विदिक्षु च।
स्युस्त्रीणि त्रीणि कूटानि श्रेण्याः पृथग्विधान्यपि ॥२७५॥
अग्नीशानदिशोः षट्सु कूटेषु दिव्यधामसु।
गरुडादिकुमाराश्च भूत्या वसन्ति निर्जराः ॥२७६॥
शेषद्वादशकूटेषु चतुर्दिक्षूच्चसद्मसु।
वसन्ति दिक्कुमार्योऽस्य सुपर्णकुलसम्भवाः ॥२७७॥
तथाष्टदशकूटानां तेषामभ्यन्तरेऽस्य च।
चत्वारि सन्ति कूटानि पूर्वादिदिक्चतुष्टये ॥२७८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

एषां चतुःसुकूटानां मूर्ध्नि सन्ति जिनालयाः।
स्वर्णरत्नमयास्तुङ्गाश्चत्वारः सुरपूजिताः ॥२७९॥
कूटानामुदयो योजनानां पञ्चशतप्रमः।
मूले पञ्चशतव्यासश्चाग्रे सार्धशतद्वयः ॥२८०॥
कैवल्याख्यसमुद्घाताच्चोपपादाद्विनाङ्गिनाम् ।
अद्रिमुल्लंघ्यशक्ता नेमं गन्तुं तत्परां भुवम् ॥२८१॥
विद्येशाश्चारणा वान्ये प्राप्ताऽनेकर्द्धयः क्वचित्।
ततोऽयं पर्वतो मर्त्यलोकसीमाकरो भवेत् ॥२८२॥

अर्थ—इस पुष्करार्ध द्वीप के मध्यभाग में अरहन्त भगवान् के चैत्यालयों आदि से अलंकृत, श्रीमान् अर्थात् श्रेष्ठ मानुषोत्तर पर्वत शोभायमान होता है। चौदह महानदियों के निर्गमन चौदह द्वारों से सुशोभित और क्रमशः ह्रस्व होते हुए इस मानुषोत्तर पर्वत की ऊँचाई जिनेन्द्र भगवान् ने १७२१ योजन दर्शायी है। भूतल अर्थात् मूल में इस पर्वत की चौड़ाई १०२२ योजन, मध्य में चौड़ाई ७२३ योजन और ऊपर की चौड़ाई ४२४ योजन प्रमाण है। मानुषोत्तर का अवगाह अर्थात् नींव का प्रमाण ४३० योजन और एक कोश है। इस पर्वत के शिखर पर दो कोस ऊँची (और ४००० धनुष चौड़ी) अत्यन्त देदीप्यमान और दिव्य मणिमय वेदी है। उस मानुषोत्तर पर्वत पर नैऋत्य और वायव्य इन दो दिशाओं को छोड़ कर अवशेष पूर्वादि छह दिशाओं में पंक्ति रूप से तीन-तीन कूट अवस्थित हैं। आग्नेय और ईशान दिशा सम्बन्धी छह कूटों के दिव्य प्रासादों में गरुड़ कुमार जाति के देव अपनी समस्त विभूति के साथ निवास करते हैं। दिशागत अवशेष बारह कूटों के प्रासादों की चारों दिशाओं में सुपर्ण कुलोत्पन्न दिक्कुमारी देवांगनाएँ निवास करती हैं। इन अठारह (१२+६) कूटों के अभ्यन्तर भाग में अर्थात् मनुष्य लोक की ओर पूर्वादि चारों दिशाओं में चार कूट हैं, जिनके शिखर पर देवताओं से पूज्य और उत्तुंग स्वर्ण एवं रत्नमय जिनालय हैं। इन समस्त कूटों की ऊँचाई ५०० योजन, मूल में व्यास ५०० योजन और शिखर पर व्यास का प्रमाण २५० योजन है। केवली समुद्घात, मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद जन्म वाले देवों के सिवाय अन्य कोई भी प्राणी इस मानुषोत्तर पर्वत से युक्त पृथ्वी को उल्लंघन करके नहीं जा सकता। विद्याधर, चारणऋद्धिधारी तथा अनेक प्रकार की और भी अनेक ऋद्धियों से युक्त जीव भी इस पर्वत का उल्लंघन नहीं कर सकते, इसीलिये यह पर्वत मनुष्यलोक की सीमा का निर्धारण करने वाला है ॥२७०-२८२॥

अब यह बतलाते हैं कि ढ़ाई द्वीप के आगे मनुष्य नहीं हैं, केवल तिर्यञ्च हैं—

यतो द्वीपद्वये सार्धे स्युस्तिर्यञ्चश्च मानवाः।
ततोऽपरेष्वसंख्येषु द्वीपेषु सन्ति केवलम् ॥२८३॥
तिर्यञ्चो भद्रका नान्ये ततः स कथ्यते श्रुते।
तिर्यग्लोकोऽप्यसंख्यातस्तिर्यग्भृतो नृदूरगः ॥२८४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अर्थ—मानुषोत्तर पर्वत ने मनुष्यों की सीमा का निर्धारण कर दिया है, इसीलिये अढ़ाई द्वीप में तो मनुष्य और तिर्यञ्च दोनों हैं किन्तु इसके आगे असंख्यात द्वीपों में केवल भद्रपरिणामी तिर्यञ्च ही हैं, अन्य कोई नहीं हैं, इसीलिये आगम में इसे तिर्यग्लोक कहा है। यह तिर्यग्लोक मनुष्यों से रहित है और असंख्यात तिर्यंचों से भरा हुआ है ॥२८३-२८४॥

अब पुष्करवर द्वीप से आगे के द्वीप-समुद्रों के नाम और उनके स्वामी कहते हैं—

पुष्करद्वीपमावेष्ट्य तं तिष्ठेत् पुष्करार्णवः।
श्रीप्रभश्रीधरौ देवौ जलधेरस्य रक्षकौ ॥२८५॥
ततोऽस्ति वारुणीद्वीपोऽस्येमौ स्तो रक्षकौ सुरौ।
वरुणो दक्षिणे भागे ह्युतरे वरुणप्रभः ॥२८६॥
ततः स्यात्तद्बहिर्भागे वारुणीवरसागरः।
मध्याख्यमध्यमाभिख्यौ भवतोऽस्य सुनायकौ ॥२८७॥
तस्मात् क्षीरवरद्वीपो भवेत् ख्यातोऽस्य रक्षकौ।
व्यन्तरौ पाण्डुराभिख्यपुष्पदन्तौ स्त ऊर्जितौ ॥२८८॥
ततः क्षीरसमुद्रोऽस्ति जिनेन्द्रस्नानकारणः।
अस्येमौ स्वामिनौ स्यातां विमलो विमलप्रभः ॥२८९॥
तस्माद् घृतवरद्वीपस्तस्यैतौ परिपालकौ।
दक्षिणोत्तर भागस्थौ सुप्रभाख्य महाप्रभौ ॥२९०॥
तिष्ठत्यतस्तमावेष्ट्याम्बुधिर्घृतवराह्वयः ।
अस्याब्धेः स्तः पती चैतौ कनकः कनकप्रभः ॥२९१॥
तत इक्षुवरद्वीपो भवत्यस्याभिरक्षकौ।
भवतो व्यन्तरौ पूर्णपूर्णप्रभ समाह्वयौ ॥२९२॥
परितस्तं समावेष्ट्य तिष्ठतीक्षुवरार्णवः।
स्यातां गन्धमहागन्धाख्यौ देवौ तस्य सत्पती ॥२९३॥

अर्थ—पुष्करवरद्वीप को वेष्टित कर वलयाकार रूप से पुष्करवर समुद्र है, श्रीप्रभ और श्रीधर नाम के दो देव इस समुद्र की रक्षा करते हैं। इस समुद्र को वेष्टित कर वारुणीवर द्वीप है,जिसका रक्षक वरुण देव दक्षिण भाग में और वरुणप्रभ उत्तर भाग में निवास करते हैं। इस द्वीप के आगे वारुणीवर समुद्र है, जिसके अधिनायक मध्य और मध्यम नाम के दो देव हैं। इस समुद्र से आगे क्षीरवरद्वीप है, जिसके रक्षक पाण्डु और पुष्पदन्त नाम के दो देव हैं। इस द्वीप को वेष्टित करके क्षीरवर समुद्र है, जो बाल तीर्थंकर के स्नान का कारण है। इस समुद्र के अधिपति विमल और विमलप्रभ नाम के दो देव हैं। क्षीरसमुद्र को वेष्टित कर घृतवरद्वीप है, जिसके दक्षिण-उत्तर भाग में क्रम से सुप्रभ और महाप्रभ

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

नाम के दो रक्षक देव निवास करते हैं। घृतवर द्वीप को वेष्टित कर घृतवर नाम का समुद्र है, जिसके स्वामी कनक और कनकप्रभ नाम के दो देव हैं। इसके आगे इक्षुवर नाम का द्वीप है, जिसके अधिनायक पूर्ण और पूर्णप्रभ नाम के दो देव हैं। इस द्वीप को समावेष्टित कर इक्षुवर नाम का समुद्र है, जिसके अधिपति गन्ध और महागन्ध नाम के दो देव हैं ॥२८५-२९३॥

अब नन्दीश्वर नाम के अष्टम द्वीप की अवस्थिति और उसके सूची व्यास आदि का प्रमाण कहते हैं—

त्रिषष्ट्यग्रशतकोटी लक्षाश्चतुरशीतिकाः।
इत्यङ्कयोजनव्यासो द्वीपो नन्दीश्वरो भवेत् ॥२९४॥
कोटयः सप्तविंशत्यधिकत्रिशतसम्मिताः।
पञ्चषष्टिप्रमालक्षा इति योजनसंख्यया ॥२९५॥
आदिसूची भवेदस्य द्वीपस्य धर्मधारिणः।
द्विपञ्चाशन्महातुङ्गजिनालयादिशालिनः ॥२९६॥
योजनानां सहस्त्रैकं हि षड् त्रिंशच्च कोटयः।
द्विषड्लक्षाः सहेस्त्रे द्वे तथा सप्तशतानि च ॥२९७॥
त्रिपंचाशदथ क्रोशौ द्वावित्यङ्कात्तयोजनैः।
तस्या आदिलघु सूच्या आदिमा परिधिर्मता ॥२९८॥
षट्शतानि तथा पंचपंचाशत्कोटयः पुनः।
त्रयस्त्रिंशच्च लक्षाणि चेति योजनसंख्यया ॥२८८॥
अन्तिमा महती सूची प्रोदिता श्रीगणाधिपैः।
द्वीपस्यास्य जिनागारैःजगदानन्दकारिणः ॥३००॥
द्वासप्ततिसमायुक्तद्विसहस्त्राणि कोटयः।
त्रयस्त्रिंशत्त्व लक्षाश्चतुः पञ्चाशत्सहस्त्रकाः ॥३०१॥
नवत्यग्रशतं क्रोश एक इत्यङ्कयोजनैः।
अन्तिमा परिधिर्गुर्वी ह्यन्त्यसूच्या मतागमे ॥३०२॥

अर्थ—इक्षुवर समुद्र को वेष्टित किये हुए नन्दीश्वर नाम का आठवाँ द्वीप है, इसका व्यास १६३८४००००० योजन प्रमाण है। अर्थात् जम्बूद्वीप से प्रारम्भ कर आठवें नन्दीश्वर द्वीप पर्यन्त का वलयव्यास एक सौ त्रेसठ करोड़ चौरासी लाख प्रमाण है। धर्म को धारण करने वाले महा उत्तुंग ५२ जिनालयों से सुशोभित नन्दीश्वर द्वीप को आदिम सूची व्यास का प्रमाण ३२७६५००००० योजन है। इस आदिम सूची व्यास की परिधि १०३६१२०२७५३ योजन और दो (२) कोस मानी गई है। भव्य जिनालयों के द्वारा संसार को आनन्दित करने वाले इस नन्दीश्वर द्वीप की अन्तिम सूची व्यास का प्रमाण जिनेन्द्र भगवन्तों के द्वारा ६५५३३००००० योजन कही गई है। जिनागम में इस अन्तिम सूची

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

व्यास की परिधि का प्रमाण २०७२३३५४१९० योजन और एक कोस कहा गया है ॥२९४-३०२॥

अब अञ्जनगिरि पर्वत और वापिकाओं का अवस्थान एवं उनका व्यास आदि कहते हैं—

तस्य मध्ये चतुर्दिक्षु चत्वारोऽञ्जनपर्वताः।
राजन्ते पटहाकारा इन्द्रनीलमणिप्रभाः ॥३०३॥
योजनानां सहस्त्रैश्चतुरग्राशीतिसंख्यकैः।
उन्नता विस्तृता योजनसहस्त्रावगाहकाः ॥३०४॥
लक्षयोजनभूभागं मुक्त्वाद्रीणां पृथग्विधाः।
प्रत्येकं च चतुर्दिक्षु चतस्त्रः सन्ति वापिकाः ॥३०५॥
लक्षयोजनविस्तीर्णा चतुरस्त्राः क्षयातिगाः।
सहस्त्रयोजनागाहा रत्नसोपानराजिताः ॥३०६॥
निर्जन्तुजलसम्पूर्णाः पद्मवेदीतटाङ्किताः।
हेमाम्बुजौघसंछन्ना महावीचीशताकुलाः ॥३०७॥

अर्थ—नन्दीश्वर द्वीप के मध्य में चारों दिशाओं में अञ्जनगिरि नाम के चार पर्वत हैं, जिनका आकार ढोल के समान और आभा इन्द्रनीलमणि के सदृश है। प्रत्येक अञ्जनगिरि की ऊँचाई ८४००० योजन, चौड़ाई ८४००० योजन और अवगाह १००० योजन है। प्रत्येक अञ्जनगिरि के चारों ओर एक-एक लाख योजन भूमि को छोड़कर भिन्न-भिन्न चारों दिशाओं में चौकोर आकार को धारण करने वालीं चार-चार वापिकाएँ हैं। अर्थात् एक एक अञ्जनगिरि के चारों ओर एक-एक अर्थात् कुल सोलह वापिकाएँ हैं। ये प्रत्येक वापिकाएँ एक लाख योजन विस्तीर्ण, एक हजार योजन गहरी, चौकोर आकार वालीं, अनादि-निधन, रत्नों की सीढ़ियों से सुशोभित, जीव जन्तु रहित जल से परिपूर्ण, कमलों के समूह से आकीर्ण और सैकड़ों महा तरंगों से व्याप्त हैं। इनके तट, पद्मवेदिकाओं से अलंकृत हैं ॥३०२-३०७॥

अब सोलह वापिकाओं के नाम, उनके स्वामियों एवं उनके अन्तरायामों का दिग्दर्शन कराते हैं—

नन्दा नन्दवती संज्ञा वापी नन्दोत्तराह्वया।
नन्दिषेणा च पूर्वाद्रेः पूर्वादि दिक्षु ताः स्थिताः ॥३०८॥
सौधर्मेन्द्रस्य भोग्याद्यैशानेन्द्रस्य द्वितीयका।
तृतीया चमरेन्द्रस्यान्तिमा वैरोचनस्य सा ॥३०९॥
अरजा विरजाख्या गतशोका वीतशोकिका।
दक्षिणाञ्जनशैलस्य पूर्वादिदिक्षु ताः क्रमात् ॥३१०॥
आद्येन्द्रलोकपालानां पूर्वा सा वरुणस्य च।
भोग्या यमस्य सोमस्य क्रमाद् वैश्रवणस्य तु ॥३११॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

विजया वैजयन्ती च जयन्ती ह्यपराजिता।
एताः पूर्वादि दिक्षु स्युः पश्चिमाञ्जनसद्गिरेः ॥३१२॥
वेणुदेवस्य भोग्याद्या वेणुतालेर्द्वितीयका।
धरणस्य तृतीया स्याद् भूतानन्दस्य सान्तिमा ॥३१३॥
रम्याख्या रमणी सुप्रभोत्तराञ्जनभूभृतः।
चरिमा सर्वतोभद्रा प्राच्यादिदिक्षु च क्रमात् ॥३१४॥
ऐशानलोकपालस्य वरुणस्य यमस्य सा।
सोमस्यास्ति कुबेरस्यैकैकवापी च पूर्ववत् ॥३१५॥
पंचषष्टिसहस्राः पंचचत्वारिंशदित्यपि।
योजनैर्द्व्यष्टवापीनां प्रत्येकमादिमान्तरम् ॥३१६॥
लक्षैकयोजनानां च चत्वारो हि सहस्रकाः।
षट्शतानि द्वयाग्राणीति संख्यया परस्परम् ॥३१७॥
भवेन्मध्यान्तरं सर्व वापिकानां पृथक् पृथक्।
लक्षौ द्वौ च त्रयो विंशति सहस्राः शतानि षट् ॥३१८॥
तथैकषष्टिरित्यङ्कानां च योजनसंख्यया।
तासां षोडशवापीनां स्युर्बाह्येत्यान्तराणि वै ॥३१९॥

अर्थ—पूर्व दिशा स्थित अञ्जनगिरि की पूर्व आदि चारों दिशाओं में क्रमशः नन्दा, नन्दवती, नन्दोत्तरा और नन्दिषेणा नाम की चार वापिकाएँ स्थित हैं। प्रथम वापिका सौधर्मेन्द्र के भोग्य है, दूसरी ऐशानेन्द्र के, तीसरी चमरेन्द्र के और चतुर्थ वापिका वैरोचन के भोग्य है, दक्षिणदिश स्थित अञ्जनगिरि की पूर्वादि चारों दिशाओं में क्रमशः अरजा, विरजा, गतशोका और वीतशोका नाम की चार वापिकाएँ हैं, इनमें प्रथम वापिका सौधर्मेन्द्र के लोकपालों में से वरुण के भोग्य, द्वितीय वापिका यम के, तृतीय वापिका सोम के और चतुर्थ वापिका वैश्रवण लोकपाल के भोग्य है। पश्चिम दिशागत अञ्जनगिरि की पूर्वादि चारों दिशाओं में क्रमशः विजया, वैजयन्ती, जयन्ती और अपराजिता नाम की चार वापिकाएँ हैं, इनमें प्रथम वापिका वेणुदेव के, द्वितीय वेणुताल के, तृतीय धरणदेव के और चतुर्थ वापिका भूतानन्द देव के भोग्य है। उत्तर दिशा गत चतुर्थ अञ्जनगिरि की पूर्वादि चारों दिशाओं में क्रमशः रम्या, रमणी, सुप्रभा और सर्वतोभद्र नाम की वापिकाएँ हैं, इनमें प्रथम वापिका ऐशानेन्द्र के लोकपालों में से वरुण द्वारा भोग्य है, द्वितीय वापिका यम के, तृतीय सोम के और चतुर्थ वापिका कुबेर लोकपाल के द्वारा भोग्य है। इन सोलह वापियों में से प्रत्येक का आदि (अभ्यन्तर) अन्तर ६५५०४५ योजन सर्व वापियों का पृथक्-पृथक् मध्य अन्तर १०४६० योजन और इसी प्रकार सर्व वापियों का भिन्न-भिन्न बाह्य अन्तर २२३६६१ योजन प्रमाण है ॥३०८-३१९॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब दधिमुख पर्वतों की संख्या, उनका अवस्थान, वर्ण और व्यास आदि कहते हैं—

वापीनां मध्यभूदेशेषु सन्त्यासां दधिप्रभाः।
रम्या दधिमुखाभिख्याः श्वेताः षोडशभूधराः ॥३२०॥
पटहाकारिणस्तुङ्गा विस्तृताश्च दशप्रमैः।
सहस्रयोजनैर्योजनसहस्त्रावगाहिनः ॥३२१॥

अर्थ—इन सब वापियों के मध्य भूप्रदेशपर दधि की प्रभा युक्त, रमणीक और श्वेत वर्ण वाले दधिमुख नाम के १६ पर्वत हैं। इनका आकार ढोल सदृश, ऊँचाई दस हजार योजन, चौड़ाई दस हजार योजन और अवगाह (नींव) १००० योजन प्रमाण है ॥३२०-३२१॥

अब व्यास आदि से युक्त रतिकर पर्वतों और सर्व जिनालयों का वर्णन करते हैं—

तासां समस्तवापीनां प्रत्येकं बाह्यकोणयोः।
द्वौ द्वौ रतिकराभिख्यौ भवतः पर्वतौ शुभौ ॥३२२॥
द्वात्रिंशदद्रयोऽत्रैते तुङ्गाः सहस्त्रयोजनैः।
विस्तृताः पटहाकाराः स्वोच्चतुर्यांशगाहकाः ॥३२३॥
सौवर्णाः शाश्वताः सर्वेऽत्राञ्जनाद्या महाचलाः।
पिण्डीकृता द्विपञ्चाशद् भवन्त्यतिमनोहराः ॥३२४॥
एषां सर्वमहीन्द्राणां मूर्ध्न्येकैक जिनालयम्।
शाश्वतं सुरपूजाढ्यं भवेत् त्यक्तोपमं परम् ॥३२५॥
सर्वे पिण्डीकृतास्ते द्विपंचाशच्छ्रीजिनालयाः।
स्वर्णरत्नमया दिव्याः स्फुरद्दीप्रा मनोहराः ॥३२६॥
पूर्वोक्त वर्णनोपेताः सर्वज्येष्ठा विभान्त्यलम्।
देवसंघैर्महाभूत्या धर्माकरा इवोर्जिताः ॥३२७॥
प्राङ्मुखाः सुरनाथादीनाह्वयन्तः इवानिशम्।
जिनार्चायै शुभाप्त्यै च तुङ्गध्वजकरोत्करैः ॥३२८॥

अर्थ—उन समस्त वापियों में से प्रत्येक वापी के दोनों बाह्य कोणों पर अतीव शुभ रतिकर नाम के दो-दो पर्वत हैं, इस प्रकार १६ वापियों के दो-दो कोणों पर ३२ रतिकर पर्वत हैं, इन सभी पर्वतों की भिन्न-भिन्न ऊँचाई १००० योजन, चौड़ाई १००० योजन, अगाध (नींव) ऊँचाई का चतुर्थांश अर्थात् २५० योजन है, अनाद्यनिधन इन सब पर्वतों का आकार ढोल सदृश और वर्ण तपाये हुए स्वर्ण समान है। मन को हरण करने वाले अञ्जनादि सभी पर्वतों का योग (४+१६+३२)=५२ होता है। इन सब ५२ पर्वतों के शिखर पर शाश्वत, देवेन्द्रों से पूज्य, उपमा रहित और परमोत्कृष्ट एक-एक जिनालय हैं। अत्यन्त कान्तिमय है प्रकाश जिनका, ऐसे दिव्य और मनोहर उन स्वर्ण और रत्नमय सब जिनालयों का कुल योग (४+१६+३२)=५२ है। जो पूर्वोक्त वर्णन से सहित हैं, उत्कृष्ट आयाम आदि युक्त हैं

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

और धर्म की खान के समान हैं, ऐसे वे ५२ चैत्यालय महाविभूति युक्त देव समूहों के द्वारा अत्यन्त शोभायमान होते हैं। वे समस्त चैत्यालय पूर्वाभिमुख हैं और उत्तुंग ध्वजाओं से ऐसे सुशोभित होते हैं मानों ये अपने ध्वजारूपी हाथों से अहर्निश परमशुभ जिनपूजा के लिए सुरेन्द्र आदिकों को ही बुला रहे हों ॥३२२-३२८॥

अब अशोक आदि वनों एवं चैत्यवृक्षों का अवधारण करते हैं—

वापीनां पूर्वदिग्भागेऽत्राशोक वनमुल्वणम्।
एकैकं दक्षिणे भागे सप्तपर्णाह्वयं महत् ॥३२९॥
प्रदेशे पश्चिमे स्याच्च चम्पकं सुवनं पृथक्।
उत्तरायां दिशि प्रोच्चं वनमाम्राह्वयं परम् ॥३३०॥
वनान्येतानि सर्वाणि नित्यानि भान्ति भूतिभिः।
मयूरैः कोकिलालापैः शुकाद्यैश्च द्रुमोत्करैः ॥३३१॥
सर्वर्तुफलपुष्पाद्यैश्चैत्यवृक्षैः सुरालयैः।
लक्षयोजनदीर्घाणि दीर्घार्धविस्तृतानि च ॥३३२॥
वनानां मध्यदेशेषु तिस्रः स्युर्मणिपीठिकाः।
त्रिमेखलाङ्किता दिव्याः प्रत्येकं तुङ्गविग्रहाः ॥३३३॥
तासां मूर्ध्नि विराजन्ते चैत्यवृक्षाः स्फुरद्रुचः।
छत्रघण्टाजिनार्चाद्यैर्विचित्राः प्रोन्नताः शुभाः ॥३३४॥
तेषां मूले चतुर्दिक्षु महत्यो जिनमूर्तयः।
दीप्राः शक्रादिवन्द्यार्च्याः स्युः पर्यङ्कासनस्थिताः ॥३३५॥

अर्थ—उन सोलह वापिकाओं की चारों दिशाओं में एक-एक वन है। पूर्वभाग में अशोक नाम का वन है। दक्षिण दिशा में सप्तपर्ण नाम का महान् वन है। पश्चिम दिशा में चम्पक बन और उत्तर दिशा में आम्र नामक उत्तम वन है। ये शाश्वत ६४ ही वन मयूरों, कोकिलाओं एवं शुकादिकों के सुन्दर आलापों से एवं द्रुमसमूह आदि विभूति से शोभायमान हैं। सर्व ऋतुओं के फलों एवं पुष्प आदि से, चैत्यवृक्षों से देवप्रासादों से सुशोभित उन सभी वनों का पृथक्-पृथक् विस्तार पचास हजार योजन और दीर्घता (लम्बाई) एक लाख योजन प्रमाण है। उन सभी वनों के मध्यभाग में मणिमय तीन तीन पीठिकाएँ हैं। प्रत्येक पीठिका तीन तीन दिव्य और उत्तुंग मेखलाओं (कटनियों) से अलंकृत हैं। उन पीठिकाग्रों के ऊपर नाना प्रकार के छत्र, घण्टा और जिनार्चा आदि से युक्त प्रोन्नत, शुभ और फैलती हुई द्युति से युक्त चैत्यवृक्ष सुशोभित होते हैं। उन चैत्यवृक्षों के मूल में पूर्वादि चारों दिशाओं में कान्तिमान, इन्द्रादि देवों से वंदनीय एवं अर्चनीय तथा पद्मासन स्थित प्रभावशाली जिनमूर्तियाँ हैं ॥३२९-३३५॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब वनों में स्थित प्रासादों के आयाम आदि का तथा अष्टाह्निकी पूजा का वर्णन करते हैं–

चतु:षष्टिवनानां च मध्ये सन्ति मनोहरा:।
सत्प्रासादाश्चतु:षष्ठिर्वननामसुराश्रिता: ॥३३६॥
द्विषष्टि योजनोत्सेधा आयामविस्तरान्विता:।
एकत्रिंशत्प्रमाणैश्च योजनैर्द्वारभूषिता: ॥३३७॥
आषाढे कार्तिके मासे फाल्गुने च निरन्तरम्।
प्रतिवर्षं सुरै: सार्धं चतुर्निकायवासवा: ॥३३८॥
स्वस्वसद्वाहनारूढा: सकलत्रा: शुभाशया:।
विभूत्या परया भक्त्यागत्यारभ्याष्टमीदिनम् ॥३३९॥
आष्टाह्निकीं महापूजां कुर्वन्ति पुण्यमातृकाम्।
त्रिजगन्नाथमूर्तिनां विश्वचैत्यालयेषु च ॥३४०॥
अभिषेकं महन्नित्यं सुरनाथा: सुरै: समम्।
द्विद्विप्रहरपर्यन्तमेकैकदिशि शान्तये ॥३४१॥
कनत्काञ्चनकुम्भास्यनिर्गतैर्निर्मलाम्बुभि: ।
महोत्सवशतैर्वाद्यैर्जयकोलाहलस्वनै: ॥३४२॥
नित्यं प्रकुर्वते भूत्या विश्वविघ्नहरं शुभम्।
जिनेन्द्रदिव्यबिम्बानां गीतनृत्यस्तवै: सह ॥३४३॥

अर्थ–६४ वनों के मध्य में वनों के सदृश नाम वाले देवों के अति मनोहर ६४ प्रासाद हैं। इन प्रासादों में से प्रत्येक प्रासाद ६२ योजन ऊँचे, ६२ योजन लम्बे, ३१ योजन चौड़े और द्वार आदि से विभूषित हैं। प्रतिवर्ष निरन्तर आषाढ़, कार्तिक और फाल्गुन मास में चतुर्निकाय के इन्द्र, देवों एवं देवांगनाओं के साथ अपने-अपने उत्तम वाहनों पर चढ़कर परम विभूति और परमोत्कृष्ट भक्ति से अष्टमी को नन्दीश्वर द्वीप जाकर सर्व चैत्यालयों में स्थित जिनबिम्बों की पुण्य की माता सदृश अष्टाह्निकी नाम की महापूजा करते हैं। महा महोत्सव पूर्वक सैकड़ों वाद्यों एवं जय-जयकार शब्दों के कोलाहल से युक्त, महाविभूति से, गीत, नृत्य और सहस्रों स्तुतियाँ गाते हुए, स्वर्ण और रत्नों के घड़ों से निकलती हुई निर्मल जल की धारा द्वारा, अन्य देव समूहों के साथ साथ सर्व इन्द्र, आत्मशान्ति के लिए नित्य ही प्रत्येक दिशा में दो दो पहर जिनेन्द्रों की दिव्य प्रतिमाओं का सर्व विघ्ननाशक और कल्याणप्रद महा अभिषेक करते हैं ॥३३६-३४३॥

अब चारों प्रमुख इन्द्रों के द्वारा एक ही दिन में चारों दिशाओं की पूजन का विधान कहते हैं–

इत्येकेन दिनेनात्र चतुर्दिग्जिनवेश्मसु।
एका स्यान्महती पूजा सम्पूर्णा च सुरेशिनाम् ॥३४४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

पूर्वाशायां जिनर्चानां सौधर्मेन्द्रो महामहम्।
अष्टभेदं सुरैः सार्धं दिव्यार्चनैः करोति च ॥३४५॥
पश्चिमाशास्थगेहेषु प्रतिमानां जिनेशिनाम्।
विधत्ते परमां पूजामैशानेन्द्रोऽमरावृतः ॥३४६॥
दक्षिणाशाप्रदेशस्थ चैत्यालयेषु भक्तितः।
कुरुते जिनमूर्तीनां चमरेन्द्रो महार्चनम् ॥३४७॥
उत्तराशामहीभागे शक्रो वैरोचनो मुदा।
चैत्यालयस्थचैत्यानां करोति पूजनं परम् ॥३४८॥
इत्यमी प्रत्यहं मुख्याश्चत्वारः सुरनायकाः।
प्रदक्षिणाविधानेनात्रत्यश्रीजिनधामसु ॥३४९॥
त्रिजगद्देवदेवीभिः समं पूजामहोत्सवम्।
कुर्वते जिनमूर्तीनां पूर्णमास्यन्तमञ्जसा ॥३५०॥

अर्थ—इस प्रकार नन्दीश्वर द्वीप स्थित जिन चैत्यालयों में एक ही दिन में चारों दिशाओं में देवेन्द्र एक महान पूजा सम्पूर्ण करते हैं। अन्य देव समूहों के साथ-साथ सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र पूर्वदिशा में स्थित जिनप्रतिमाओं की अष्ट प्रकार की महामह पूजा दिव्य द्रव्य के द्वारा करता है। अनेक देवों से आवृत ऐशानेन्द्र पश्चिम दिशागत जिनालयों में स्थित जिनेन्द्र बिम्बों की परम पुनीत पूजा करता है। दक्षिण दिशागत क्षेत्र के चैत्यालयों में स्थित जिनबिम्बों की महामह पूजा चमरेन्द्र महान् भक्तिभाव से करता है। इसी प्रकार उत्तर दिशा स्थित चैत्यालयों के जिनबिम्बों की परमोत्कृष्ट पूजा वैरोचन इन्द्र अति प्रमोद पूर्वक करता है। इस उपर्युक्त विधि के अनुसार ये चारों प्रधान इन्द्र त्रैलोक्य स्थित देव देवियों के साथ प्रदक्षिणा क्रम से नन्दीश्वरद्वीपस्थ जिनचैत्यालयों के जिनबिम्बों की पूजा, महामहोत्सव के साथ पूर्णिमा पर्यन्त करते हैं। अर्थात् पूर्व दिशा में सौधर्मेन्द्र, दक्षिण में ऐशानेन्द्र, पश्चिम में चमरेन्द्र और उत्तर में वैरोचन इन्द्र अपने सुरसमूह के साथ दो-दो पहर पूजन करते हैं। दोपहर बाद सौधर्मेन्द्र दक्षिण में आ जाते हैं, तब दक्षिण वाले देव पश्चिम में और पश्चिम वाले उत्तर में तथा उत्तर दिशा वाले देव पूर्व में आकर ऐन्द्रध्वज आदि महापूजा करते हैं। यह क्रम एक दिन का है, इस प्रकार अष्टमी से प्रारम्भ कर पूर्णिमा पर्यन्त देवगण इसी क्रम से महामहोत्सव के साथ महामह आदि पूजन करते हैं ॥३४४-३५०॥ (नंदीश्वर द्वीप का चित्र अगले पृ० पर है।)

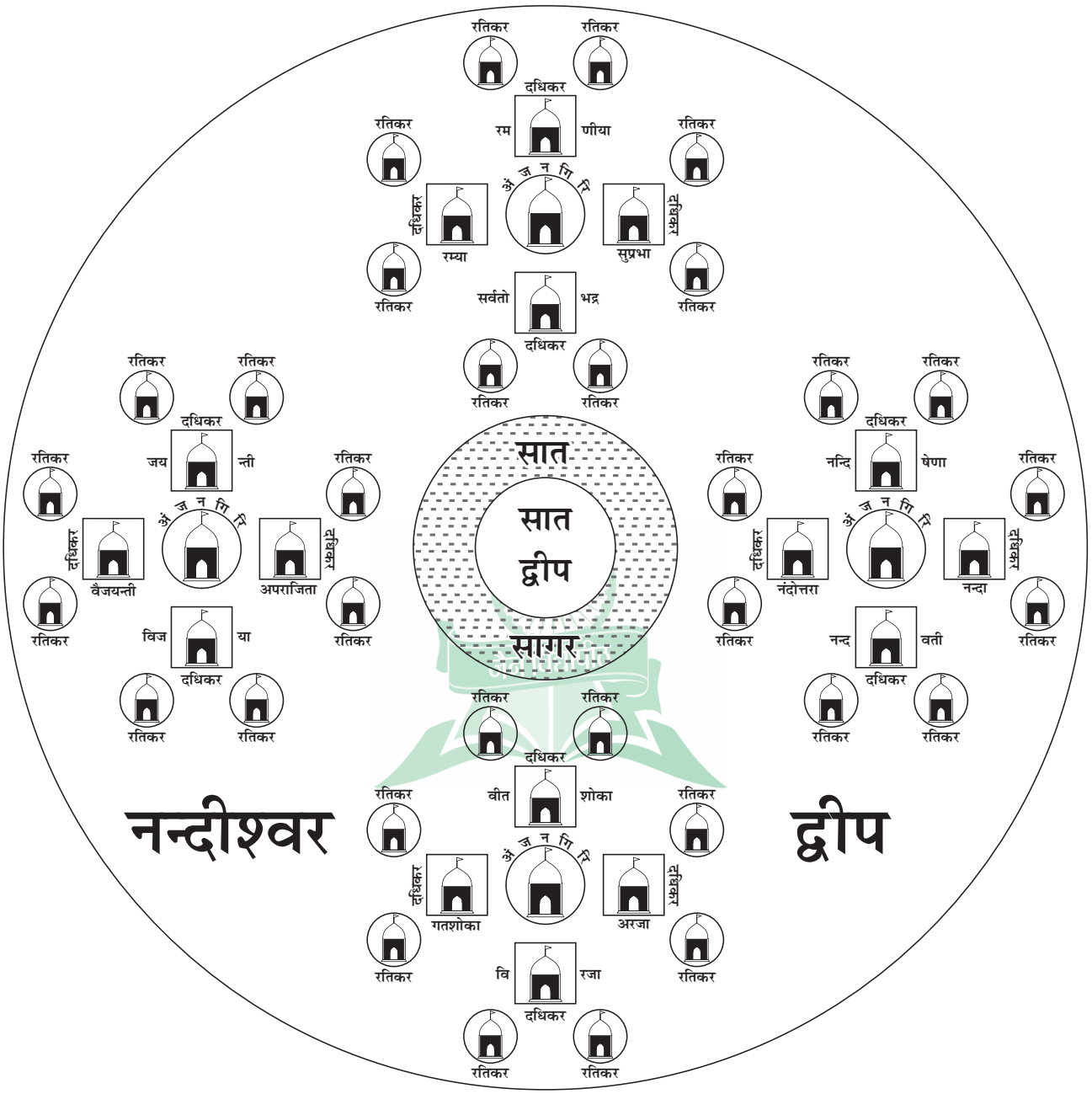
अब नन्दीश्वरद्वीप के स्वामी कहते हैं—

द्वीपस्य प्रवरस्यास्य स्यातां देवौ सुरक्षकौ।
जिनभक्तिपरौ नित्यं शुद्धप्रभमहाप्रभौ ॥३५१॥

अर्थ—जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति में परायण प्रभ और महाप्रभ नाम के दो देव इस महान्

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

नन्दीश्वर द्वीप स्थित ५२ चैत्यालय



नन्दीश्वर द्वीप की रक्षा करते हैं ॥३५१॥

अब नन्दीश्वर समुद्र की एवं दो द्वीपों की अवस्थिति कहते हैं–

ततस्तं परिवेष्ट्यास्ति नन्दीश्वरवराम्बुधिः।
ततः स्यादरुणो द्वीपोऽरुणप्रभसमाह्वयः ॥३५२॥

अर्थ–नन्दीश्वर द्वीप को परिवेष्टित करके नन्दीश्वर नामक महासमुद्र है, इसके आगे ९ वाँ

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अरुण द्वीप और १० वाँ अरुणप्रभ नाम के द्वीप हैं ॥३५२॥

अब कुण्डलद्वीपस्थ कुण्डलगिरि के व्यास आदि का प्रमाण कहते हैं—

अथैकादशमो द्वीपो विख्यातः कुण्डलाभिधः।
कुण्डलाकारसंस्थानकुण्डलाचलभूषितः ॥३५३॥
योजनानां सहस्राणि पञ्चसप्ततिरुन्नतिः।
सहस्रयोजनागाहोऽस्याद्रेर्मूले च विस्तरः ॥३५४॥
सहस्रदशसंख्यातविंशाग्रद्विशतप्रमः ।
मध्ये च द्विशतत्रिंशद्युक्तसप्तसहस्रकः ॥३५५॥
अग्रे व्यासः सहस्राणि चत्वारि द्वे शते तथा।
योजनानि च चत्वारिंशत्कुण्डलमहीभृतः ॥३५६॥
इत्युक्तोत्सेधविस्तारः स्वर्णाभः कुण्डलाचलः।
द्वीपस्य मध्यभागेऽस्ति कुण्डलाकृतिमाश्रितः ॥३५७॥

अर्थ—अरुणप्रभद्वीप के बाद ग्यारहवाँ कुण्डल नाम का विख्यात द्वीप है, जो कुण्डल के आकार वाले कुण्डलाचल पर्वत से विभूषित है। यह पर्वत ७५००० योजन ऊँचा, १००० अवगाह (नींव) से युक्त, मूल विस्तार १०२२० योजन, मध्य विस्तार ७२३० योजन और शिखर विस्तार ४२४० योजन है। कुण्डलद्वीप के मध्यभाग में कुण्डलाकृति का धारक उपर्युक्त उत्सेध एवं विस्तार से युक्त और स्वर्णाभा के सदृश कान्ति वाला कुण्डलाचल पर्वत है ॥३५३-३५७॥

अब कुण्डलगिरिस्थ कूटों का अवस्थान, संख्या एवं व्यास आदि के प्रमाण का दिग्दर्शन कराते हैं—

अस्याद्रेर्मस्तके सन्ति कूटानि दिक्चतुष्टये।
चत्वारि विदिशासु स्याद्रम्यं कूटचतुष्टयम् ॥३५८॥
तासामष्टदिशां मध्यान्तरेष्वष्टसु सन्ति च।
अष्टौ महान्ति कूटानीमानि कूटानि षोडश ॥३५९॥
अमीषां द्व्यष्टकूटानां मूर्धस्थरत्नसद्मसु।
पल्यैकजीविनो भूत्या नागदेवा वसन्ति च ॥३६०॥
तेषामभ्यन्तरे भागे चतुःपूर्वादिदिक्षु च।
चत्वारि मणिकूटानि सन्ति सेव्यानि निर्जरैः ॥३६१॥
कूटानां मूर्ध्निराजन्ते चत्वारः श्रीजिनालयाः।
देवसङ्घकृतैर्नित्यं पूजोत्सवशतादिभिः ॥३६२॥
एषां विंशतिकूटानामुदयो योजनानि च।
शतानि पञ्चमूले स्वोत्सेधेन समविस्तरः ॥३६३॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अग्रे व्यासो मतः सार्धद्विशतैर्योजनैरिति।
वर्णनैः कुण्डलाद्रिः स्यात् सुरसङ्घोत्सवप्रदः ॥३६४॥

अर्थ—कुण्डलगिरि पर्वत पर पूर्वादि चारों दिशाओं में चार कूट हैं और चारों विदिशाओं में भी रमणीक चार कूट हैं। इन आठों दिशाओं के मध्य आठ अन्तरालों में आठ महान् कूट हैं। इस प्रकार आठ दिशाओं और आठों अन्तरालों में कुल सोलह कूट हैं। इन सोलह कूटों के शिखर पर रत्नों के प्रासाद हैं, जिनमें एक पल्य की आयु वाले नागदेव महाविभूति के साथ रहते हैं। इन दिशागत कूटों के अभ्यन्तर भाग में पूर्वादि चारों दिशाओं में देवों द्वारा सेव्यमान चार कूट हैं। इन कूटों के शिखर पर (प्रत्येक कूट पर एक) चार जिनालय हैं, जिनमें देव समूहों के द्वारा नित्य ही सहस्रों पूजा महोत्सव किये जाते हैं। ये बीसों कूट पाँच-पाँच सौ योजन ऊँचे हैं, इनका मूल विस्तार ५०० योजन और ऊर्ध्व-शिखर का विस्तार २५० योजन प्रमाण है। जहाँ नित्य देवों के द्वारा अनेक महोत्सव होते हैं ऐसे कुण्डलगिरि का वर्णन है ॥३५८-३६४॥

अब शङ्खवरद्वीप और रुचकद्वीप की अवस्थिति कहकर रुचकगिरि के व्यास आदि का प्रमाण कहते हैं—

ततः शङ्खवरद्वीपस्तस्माच्च रुचकाह्वयः।
राजतेऽद्रिर्जिनागारैस्त्रिदशानन्दकारकः ॥३६५॥
अस्य द्वीपस्य मध्येऽस्ति वलयाकार ऊर्जितः।
अचलो रुचकाभिख्यः पुण्यकर्मनिबन्धनः ॥३६६॥
आदौ मध्येऽचलस्याग्रे सर्वत्र समविस्तरः।
प्रोक्तश्चतुरशीतिश्च सहस्रयोजनानि च ॥३६७॥
स्वव्यासेन समोत्सेधो मन्तव्योऽस्य महागिरेः।
सहस्रयोजनागाहोऽग्रे स्युः कूटान्य मून्यपि ॥३६८॥

अर्थ—११ वें कुण्डलवर द्वीप के बाद १२ वाँ शंखवर द्वीप है और शंखवर द्वीप के आगे १३ वाँ रुचकवर द्वीप है, जो जिनेन्द्र भगवान् के जिनालयों से देवों को आनन्द कारक है, ऐसे रुचकगिरि (पर्वत) से सुशोभित है। इस रुचकवर द्वीप के मध्य में शाश्वत और वलयाकार पुण्यकर्म को आकर्षण करने वाला रुचक नाम का पर्वत है। इस पर्वत का आदि, मध्य और शिखर का सर्वत्र विस्तार समान है। अर्थात् सर्वत्र ८४००० योजन प्रमाण है। इस रुचक पर्वत की ऊँचाई भी अपने विस्तार के सदृश अर्थात् ८४००० योजन प्रमाण ही है, तथा अवगाह १००० योजन है। इस महागिरि के ऊपर अनेक कूट भी हैं ॥३६५-३६८॥

अब रुचकगिरि पर स्थित कूटों का अवस्थान, संख्या, स्वामी और उनके कार्यों एवं व्यास आदि के प्रमाण का निर्धारण करते हैं—

पूर्वाद्यासु चतुर्दिक्ष्वष्टौ कूटानि पृथक् पृथक्।
प्रत्येकं रुचकाख्याद्रेर्बहिर्भागे च मूर्धनि ॥३६९॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

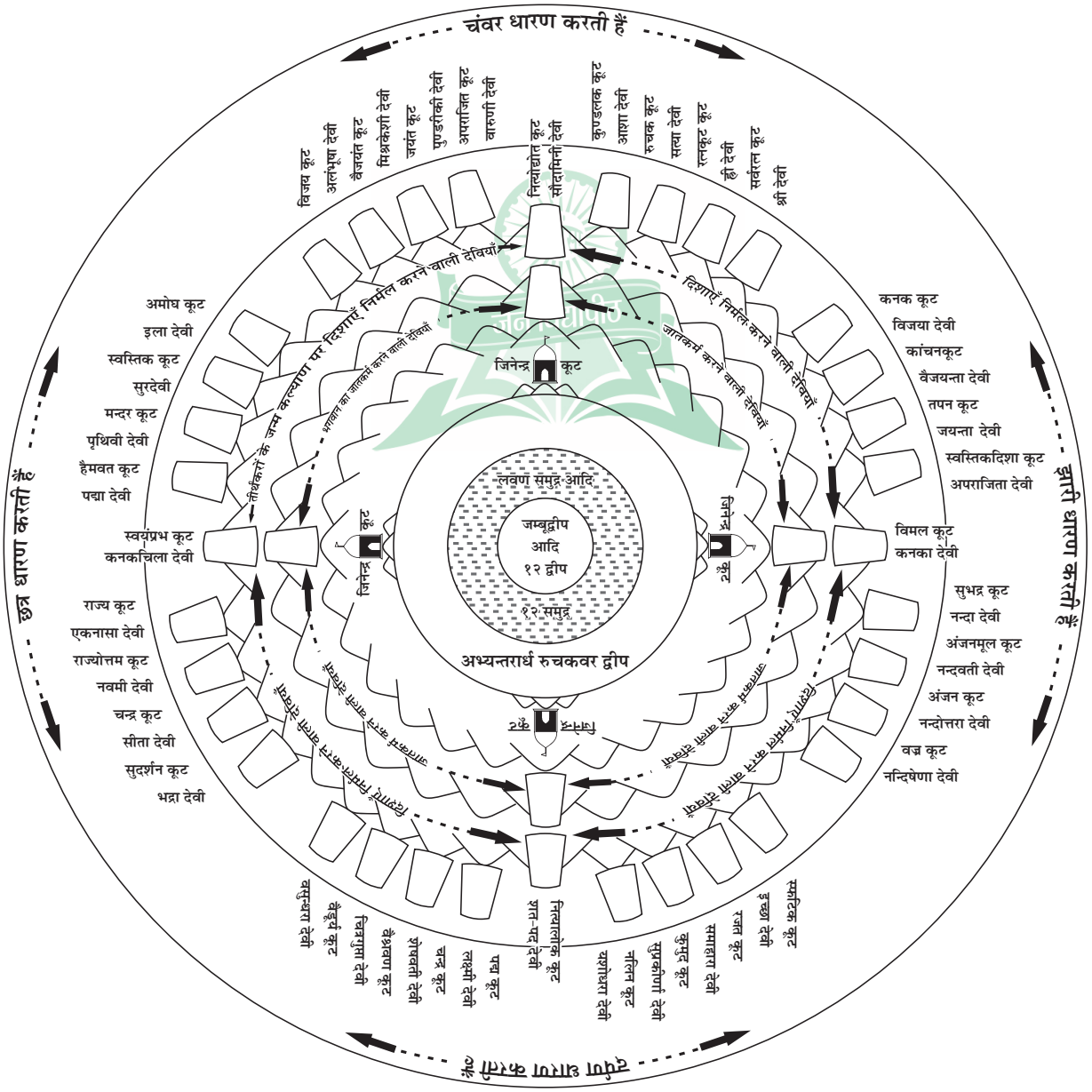
पूर्वाशास्थाष्टकूटेषु दिक्कुमार्यो वसन्ति ताः।
याः शृङ्गारविधायिन्यो जिनमातुर्भवन्ति च ॥३७०॥
दक्षिणाशाष्टकूटाग्रस्थ सौधेषु वसन्ति च।
मणिदर्पणधारिण्योऽष्टौ तस्या दिक्कुमारिकाः ॥३७१॥
पश्चिमाशाष्ट कूटेषु तिष्ठन्ति दिक्कु मारिकाः।
मूर्ध्न्यष्टौ छत्रधारिण्यो जिनाम्बाया मुदागताः ॥३७२॥
उत्तराशाष्टकूटेषु दिक्कुमार्यो वसन्ति ताः।
जिनमातुरिहायाताश्चामराण्युत् क्षिपन्ति याः ॥३७३॥
तथास्याद्रेश्चतुर्दिक्षु पङ्क्त्या कूटानि सन्ति च।
त्रीणि त्रीणि मनोज्ञानि प्रत्येकं हि ततोऽन्तरे ॥३७४॥
चतुःकूटेषु तिष्ठन्ति दिक्कुमार्यश्चतुःप्रमाः।
ता या जिनजनन्याश्च निकटे सेवनोत्सुकाः ॥३७५॥
अमीषां मध्यभागेषु चतुःकूटस्थवेश्मसु।
वसन्ति दिक्कुमारीणां सन्महत्तरिकाः पराः ॥३७६॥
तेषां मध्ये चतुःकूटेषु चतस्त्रो वसन्ति ताः।
या महत्तरिकाश्चार्हज्जातकर्माणि कुर्वते ॥३७७॥
अमीषां सर्वकूटानामन्तर्भागे भवन्ति च।
चत्वारि मणिकूटानि चतुर्दिक्षु महान्त्यपि ॥३७८॥
एतेषां मूर्ध्नि राजन्ते देवोत्थाच्चोत्सवोत्करैः।
चैत्यालया जिनेन्द्राणां चत्वारो मणिभास्वराः ॥३७९॥
एषां समस्तकूटानामुदयो विस्तरो द्विधा।
मूलेऽग्रे च भवेत्कुण्डलस्थकूटैः समानकाः ॥३८०॥

अर्थ—रुचक नाम के इस पर्वत के ऊपर बहिर्भाग में पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर इन चारों दिशाओं में से पृथक्-पृथक् दिशा में आठ-आठ कूट हैं।अर्थात् कुल ३२ कूट हैं। पूर्व दिशागत आठ कूटों में दिक्कुमारी देवियाँ रहती हैं और ये जिनमाता के शृंगार आदि की क्रियाएँ करतीं हैं। दक्षिण दिशागत कूटों के ऊपर स्थित प्रासादों में मणिमय दर्पण धारण करने वालीं आठ दिक्कुमारियाँ निवास करतीं हैं। पश्चिम दिशागत कूटों के ऊपर स्थित प्रासादों में श्वेत छत्र धारण कर हर्षित मन से जिनमाता की सेवा करने वालीं आठ दिक्कुमारियाँ रहती हैं। उत्तर दिशागत कूटों पर आठ दिक्कुमारियाँ रहतीं हैं, जो यहाँ जिनमाता के पास आकर चँवर ढोरतीं हैं तथा इसी पर्वत पर पूर्व आदि चारों दिशाओं में से पृथक्-पृथक् दिशा में (पूर्वोक्त कूटों के अभ्यन्तर की ओर) पंक्तिबद्ध प्रति मनोज्ञ तीन-तीन कूट हैं। इनमें से चारों दिशाओं के चार कूटों (एक-एक कूट) में चार दिक्कुमारियाँ रहतीं हैं, जो जिनमाता

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

के निकट आकर हर्षोल्लासपूर्वक सेवा करतीं हैं। उपर्युक्त तीन तीन कूटों के मध्य में स्थित चारों दिशाओं के चार कूटों पर जो प्रासाद हैं, उनमें अतिनिपुण महत्तरिका दिक्कुमारियाँ निवास करतीं हैं। उन मध्य स्थित चार कूटों में जो चार महत्तरिका निवास करतीं हैं, वे तीर्थंकर के जन्म समय में जात कर्म करती हैं। इन सर्व कूटों के अभ्यन्तर की ओर चारों दिशाओं में जो रत्नमय चार महान् कूट हैं, उनके शिखर पर देवों द्वारा किये हुए महान् उत्सवों से युक्त और मणियों की प्रभा सदृश भास्वर जिनेन्द्र भगवान् के चार कूट शोभायमान होते हैं। इन समस्त (३२+१२=४४) कूटों की ऊँचाई तथा मूल और शिखर भाग के विस्तार का प्रमाण कुण्डलगिरि स्थित कूटों के समान है। अर्थात् इन समस्त कूटों का मूल विस्तार ५०० योजन, शिखर विस्तार २५० योजन और उत्सेध भी ५०० योजन प्रमाण है ॥३६९-३८०॥

रुचकगिरि के कूटों आदि का चित्रण निम्न प्रकार है—



FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब कुछ द्वीप समुद्रों के नाम और व्यास कहकर उनकी अकृत्रिमता बतलाते हैं—

अथास्ति भुजगद्वीपस्ततः कुशवराभिधः।
द्वीपः क्रोञ्चवराभिख्यो द्वीपो मनः शिलाख्यकः ॥३८१॥
हरितालाह्वयो द्वीपो द्वीपः सेन्दुरसंज्ञकः।
श्यामाङ्कोऽञ्जनकद्वीपो हिङ्गुलाख्यश्च रूप्यकः ॥३८२॥
द्वीपः सुवर्णनामाथ द्वीपो वज्राभिधानकः।
वैडूर्यसंज्ञको भूतवरो यक्षवराभिधः ॥३८३॥
देवद्वीपस्तथाप्यन्ये शुभनामान ऊर्जिताः।
द्विगुणद्विगुणव्यासा द्वीपाः स्युः संख्यवर्जिताः ॥३८४॥
समस्तद्वीपराशीनां सर्वेषु चान्तरेषु वै।
स्वस्वद्वीपोत्थनामानोऽसंख्येयाः सन्ति सागराः ॥३८५॥
एते द्वीपाब्धयोऽसंख्या न केनापि विनिर्मिताः।
किन्त्वविनश्वरा विश्वे सन्त्यनाद्यमनोहराः ॥३८६॥

अर्थ—रुचकवर द्वीप के बाद भुजगद्वीप, पश्चात् कुशवर नामक द्वीप, पश्चात् क्रौंचवर द्वीप, पश्चात् मनःशिल द्वीप, पश्चात् हरिताल द्वीप, पश्चात् सेन्दुर द्वीप, श्यामांक द्वीप, अञ्जन द्वीप, हिंगुल द्वीप, रूप्यक द्वीप, सुवर्ण द्वीप, वज्र नामक द्वीप, वैडूर्य द्वीप, भूतवर द्वीप, यक्ष द्वीप और देव द्वीप हैं, इस प्रकार आगे-आगे शुभ नाम वाले और पूर्व-पूर्व समुद्रों से दुगुने-दुगुने विस्तार वाले असंख्यात द्वीप हैं। इन समस्त द्वीपों के अन्तरालों में अपने-अपने द्वीप के नाम सदृश नाम वाले असंख्यात ही सागर हैं। ये सर्व असंख्यात द्वीप समुद्र अकृत्रिम हैं, अर्थात् किन्हीं के द्वारा बनाये नहीं गये, ये समस्त मनोहर द्वीप समुद्र शाश्वत अर्थात् अनाद्यनन्त हैं ॥३८१-३८६॥

अब अन्तिम द्वीप एवं समुद्र का नाम, अवस्थान तथा व्यास आदि कहते हैं—

सर्वद्वीपाब्धि राशीनां द्वीपो ज्येष्ठोऽस्ति चान्तिमः।
मध्यलोकस्य पर्यन्ते स्वयम्भूरमणाह्वयः ॥३८७॥
बहिर्भागे तमावेष्ट्य स्वयम्भूरमणार्णवः।
असंख्ययोजनव्यासो रज्जुसूचीयुतोऽस्ति च ॥३८८॥

अर्थ—समस्त द्वीप समुद्रों में अर्थात् २५ कोड़ाकोड़ी पल्योपम रोम प्रमाण द्वीप समुद्रों में सबसे बड़ा अन्तिम स्वयम्भूरमण नाम का द्वीप है, यह मध्यलोक के अन्त में अवस्थित है। इस द्वीप के बहिर्भाग में स्वयम्भूरमण द्वीप को वेष्टित किये हुए असंख्यात योजन वाला स्वयम्भूरमण समुद्र है, इसका सूची व्यास एक राजू प्रमाण है ॥३८७-३८८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब नागेन्द्र पर्वत, तिर्यग्लोक के अन्त में अवस्थित कर्मभूमि और उसमें रहने वाले तिर्यञ्चों का कथन करते हैं–

स्वयम्भूरमणद्वीपस्यार्धेऽस्ति वलयाकृतिः।
श्रीप्रभाख्यो महान् शैलो भोगभूमिधराङ्कितः ॥३८९॥
ततोऽचलाद्बहिर्भागे द्वीपार्धे सकलेऽम्बुधौ।
वर्तते कर्मपृथ्व्येका चतुर्गतिकराङ्गिनाम् ॥३९०॥
यत्रोऽत्र सन्ति तिर्यञ्चः क्रूरा व्रतादिदूरगाः।
संयतासंयताः केचित्पशवो व्रततत्पराः ॥३९१॥

अर्थ–अर्ध स्वयम्भूरमण द्वीप में अर्थात् स्वयम्भूरमण समुद्र के मध्य में, भोगभूमि की धरा से युक्त अर्थात् भोगभूमि में वलय के आकार को धारण करने वाला श्रीप्रभ (नागेन्द्र) नाम का महान् पर्वत है। इस श्रीप्रभ नामक पर्वत के बाहर अर्ध स्वयम्भूरमण द्वीप और सम्पूर्ण स्वयम्भूरमण समुद्र में वहाँ स्थित जीवों को चारों गतियाँ प्रदान करने वाली एक कर्मभूमि है। यहाँ पर व्रत आदि से रहित और प्रायः क्रूर स्वभाव वाले तिर्यञ्च रहते हैं। इनमें कुछ तिर्यञ्च संयतासंयत अर्थात् देशव्रती हैं, जो अपने व्रतों में तत्पर रहते हैं ॥३८९-३९१॥

अब बाह्य पुष्करार्ध के रक्षक देव और मानुषोत्तर पर्वत की परिधि का प्रमाण कहते हैं–

चक्षुष्मान् हि सुचक्षुश्चेमौ देवौ परिरक्षकौ।
मानुषोत्तरशैलस्य पुष्करार्धान्तिमस्य च ॥३९२॥
एकाकोटीद्विचत्वारिंशल्लक्षाणि सहस्रकाः।
षड्त्रिंशच्च शतान्येव सप्त स्फुटं त्रयोदश ॥३९३॥
योजनानां च गव्यूत्येकमिति प्रोक्तसंख्यया।
परिधिः स्याद्बहिर्भागे मानुषोत्तरसद्गरेः ॥३९४॥
तस्येव परिधेर्बाह्यभागेषु शाश्वताः स्थिताः।
स्वयं प्रभाद्रिपर्यन्ता ये द्वीपाः संख्यवर्जिताः ॥३९५॥

अर्थ–चक्षुष्मान् और सुचक्षुष्मान् ये दो देव बाह्य पुष्करार्ध द्वीप के अधिपति हैं। पुष्करार्ध के अन्त में अवस्थित मानुषोत्तर पर्वत की परिधि १४२३६७१३ योजन और एक कोस प्रमाण कही गई है। परिधि का यह प्रमाण मानुषोत्तर पर्वत के बाह्य भाग का है। इस ही परिधि के बाह्यभाग से प्रारम्भ कर स्वयंप्रभ (नागेन्द्र) पर्वत पर्यन्त असंख्यात द्वीप हैं ॥३९२-३९५॥

तेषु द्वीपेष्वसंख्येषु जघन्याभोगभूमयः।
सम्बन्धिन्यस्तिरश्चां स्युः केवलं संख्यदूरगाः ॥३९६॥
आसु सर्वासु तिर्यञ्चो गर्भजा भद्रकाः शुभाः।
युग्मरूपाश्च जायन्ते पञ्चाक्षाः क्रूरतातिगाः ॥३९७॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

एकपल्योपमायुष्का मृगादि शुभजातिजाः।
कल्पद्रुमसमुत्पन्नभोगिनो वैरवर्जिताः ॥३९८॥
मन्दकषायिणोऽप्येते मृत्वा यान्ति सुरालयम्।
ज्योतिर्भावनभौमेषु न स्वर्गं दर्शनं विना ॥३९९॥
कुपात्रदानपुण्यांशात् कुत्सिताद्भोगकांक्षिणः।
केवलं दृग्व्रतातीता जायन्तेऽत्राबुधाङ्गिनः ॥४००॥
न सन्त्यासु समस्तासु धरासु जन्तवः क्वचित्।
कृमिकुन्थ्वादिदंशाद्याः क्रूरा वा विकलेन्द्रियाः ॥४०१॥

अर्थ—मानुषोत्तर पर्वत के बाह्य भाग से नागेन्द्र पर्वत पर्यन्त जो असंख्यात द्वीप हैं, उनमें जघन्य भोगभूमि की रचना है। इस जघन्य भोगभूमि में मात्र तिर्यंच रहते हैं, उनकी संख्या असंख्यात है, अर्थात् असंख्यात तिर्यंच रहते हैं। इन द्वीपों में रहने वाले सभी तिर्यंच गर्भज, भद्र, शुभ परिणति से युक्त, पंचेन्द्रिय और क्रूरता रहित होते हैं। इनका जन्म युगल रूप से ही होता है। यहाँ जो तिर्यंच उत्पन्न होते हैं, वे मृग आदि शुभ जातियों में उत्पन्न होते हैं, एक पल्य की आयु के धारक एवं बैर भाव से रहित होते हैं तथा कल्पवृक्षों से उत्पन्न भोग भोगते हैं। ये जीव मन्द कषायी होते हैं। अतः मरकर स्वर्ग में जाते हैं। जिन्हें सम्यग्दर्शन नहीं होता। वे भवनत्रिक में उत्पन्न होते हैं। जो मूढ़ जीव सम्यग्दर्शन और व्रतों से रहित हैं तथा कुपात्रदान से उत्पन्न कुछ पुण्य, उससे जो कुत्सित भोगों की वांछा करते हैं, वे जीव मरकर इस भोगभूमि में उत्पन्न होते हैं। इस जघन्य भोगभूमि की समस्त धरा पर कृमि, कुन्थु एवं मच्छर आदि तुच्छ जन्तु, क्रूर परिणामी जीव एवं विकलेन्द्रिय जीव कभी भी उत्पन्न नहीं होते ॥३९६-४०१॥

अब विकलेन्द्रिय जीवों के एवं मत्स्यों के उत्पत्ति स्थान बतलाकर तीनों समुद्रों में उत्पन्न होने वाले महामत्स्यों के व्यास आदि दर्शाते हैं—

किन्तु ते विकलाक्षाः स्युर्द्वीपे सार्धद्वये सदा।
स्वयम्भूरमणार्धे च स्वयम्भूरमणाद्बहिः ॥४०२॥
लवणोदे च कालोदे स्वयम्भूरमणार्णवे।
मत्स्या जलचरा अन्ये भवन्ति क्रूरमानसाः ॥४०३॥
शेषासंख्यसमुद्रेषु मत्स्याद्या जातु सन्ति न।
भोगक्ष्मामध्यभागे स्थितेषु द्वयक्षादयो न वा ॥४०४॥
स्वयम्भूरमणाम्भोधेस्तीरे पञ्चशतायताः।
योजनानां महामत्स्याः सन्ति सन्मूर्च्छनोद्भवाः ॥४०५॥
सहस्रयोजनायामा अब्धेरभ्यन्तरे स्थिताः।
मत्स्याः सन्मूर्च्छनोत्थास्तदर्धायामाश्च गर्भजाः ॥४०६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

नद्यास्ये लवणाम्भोधौ मत्स्याः सन्मूर्च्छनोद्भवाः।
नवयोजन दीर्घाङ्गास्तदर्धाङ्गाश्च गर्भजाः ॥४०७॥
अस्यैवाभ्यन्तरे तेऽष्टादशयोजनसम्मिताः।
सम्मूर्च्छनभवा गर्भजा योजननवायताः ॥४०८॥
योजनाष्टादशायामाः कालोदस्य नदीमुखे।
सम्मूर्च्छनजदेहास्ते गर्भजा नव योजनाः ॥४०९॥
कालोदाभ्यन्तरे मत्स्याः षट्त्रिंशद्योजनायताः।
सन्मूर्च्छनोद्भवाश्चान्ये योजनाष्टादशायताः ॥४१०॥
सहस्रयोजनायामा ये पञ्चशतविस्तृताः।
ते सार्धद्विशतोत्सेधाः स्युश्चेति सर्वमत्स्यकाः ॥४११॥
व्यासः स्यात् सर्वमत्स्यानां स्वाङ्गदीर्घार्द्धमेव च।
व्यासाङ्गस्य यदर्धं स उत्सेधोऽन्यत्र चेत्यपि ॥४१२॥

अर्थ–किन्तु वे विकलेन्द्रिय जीव जम्बूद्वीप आदि अढ़ाई द्वीप में, अर्ध स्वयम्भूरमण द्वीप में और स्वयम्भूरमण समुद्र के बाह्य प्रदेश में होते हैं। लवणोदधि समुद्र में, कालोदधि समुद्र में और स्वयम्भूरमण समुद्र में अन्य जलचर जीव और क्रूर मन वाले मत्स्य रहते हैं। शेष असंख्यात समुद्रों में मत्स्य आदि जीव कभी भी नहीं पाये जाते। भोगभूमि क्षेत्रों में द्वीन्द्रिय आदि जीव पैदा नहीं होते। स्वयम्भूरमण समुद्र के किनारे पर सम्मूर्च्छन जन्म और ५०० योजन आयाम वाले महामत्स्य पाये जाते हैं। इसी समुद्र के मध्य में सम्मूर्च्छन जन्म से उत्पन्न १००० योजन लम्बे मत्स्य रहते हैं और गर्भज मत्स्य ५०० योजन लम्बाई वाले रहते हैं। लवणसमुद्र के नदी मुख पर ९ योजन लम्बे सम्मूर्च्छन जन्म वाले और ४ $\frac{१}{२}$ योजन लम्बे गर्भ जन्म वाले मत्स्य रहते हैं। इसी समुद्र के मध्य में १८ योजन लम्बे सम्मूर्च्छन जन्म वाले और ९ योजन गर्भ जन्म वाले मत्स्य रहते हैं। कालोदधि समुद्र के नदी मुख पर १८ योजन लम्बे सम्मूर्च्छन जन्म वाले और ९ योजन लम्बे गर्भ जन्म वाले मत्स्य रहते हैं। कालोदधि के मध्य में ३६ योजन लम्बे सम्मूर्च्छन जन्म वाले और १८ योजन लम्बे गर्भ जन्म वाले मत्स्य रहते हैं। स्वयम्भूरमण समुद्र के महामत्स्यों का शरीर १००० योजन लम्बा, ५०० योजन चौड़ा और २५० योजन ऊँचा है। अन्य शेष समुद्रों के मत्स्यों के अपने-अपने शरीर की जितनी लम्बाई होती है, व्यास उससे आधा होता है तथा व्यास के अर्ध भाग प्रमाण शरीर की ऊँचाई होती है ॥४०२-४१२॥

अब एकेन्द्रिय (कमल) और विकलेन्द्रिय जीवों के शरीर का आयाम आदि कहते हैं–

सहस्रयोजनैर्दीर्घा योजनव्याससंयुताः।
पद्माः सन्ति महाम्भोधौ द्विक्रोशाग्रैः किलान्तिमे ॥४१३॥
योजनद्वादशायामा मुखे चतुष्कयोजनैः।
व्यासान्विताः स्वदीर्घस्य पञ्चभागकृतात्मनाम् ॥४१४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

भागैश्चतुर्भिरुत्सेधयुताः शङ्खा भवन्ति च।
त्रिक्रोशायामसंयुक्तास्तदष्टमांशविस्तराः ॥४१५॥
व्यासस्यार्धांशकोत्सेधा गोभीनां सन्ति चोत्तमाः।
भृङ्गा योजनदीर्घाङ्गाः क्रोशत्रितयविस्तृताः ॥४१६॥
क्रोशद्वयसमुत्तुङ्गा उत्कृष्टाङ्गा भवन्ति च।
द्वीपार्धेऽन्तिमाब्धौ स्युर्विकलाख्या इमे त्रयः ॥४१७॥

शङ्खानामायामः द्वादशयोजनानि मुखे व्यासश्चत्वारि योजनानि, स्वायामस्य पञ्चभागा-नामुदयश्चत्वारो भागा। गोभीनामायामस्त्रयः क्रोशाः व्यासः क्रोशस्यष्टभागानां त्रयोभागाः, उदयः क्रोशाष्ट भागानां सार्धैको भागः।

अर्थ—अन्तिम स्वयम्भूरमण समुद्र में १००० योजन लम्बा, एक योजन व्यास वाला तथा दो कोस की कणिका से युक्त कमल है। उत्कृष्ट अवगाहना वाले शंख की लम्बाई १२ योजन, मुख व्यास ४ योजन और १२ योजन आयाम के १२ भागों में से ५ भाग अर्थात् ५ योजन का चौथा भाग ($\frac{५}{४}$ =१ योजन) ऊँचाई (उत्सेध) है। त्रीन्द्रिय गोभी की उत्कृष्ट लम्बाई ३ कोस, चौड़ाई (३×$\frac{१}{८}$ =) $\frac{३}{८}$ कोस तथा ऊँचाई व्यास ($\frac{३}{८}$) का आधा अर्थात् ($\frac{३}{८}$ × $\frac{१}{२}$) = $\frac{३}{१६}$ कोस प्रमाण है। चतुरिन्द्रिय भौंरे की उत्कृष्ट लम्बाई एक योजन, चौड़ाई ३ कोस और ऊँचाई दो कोस प्रमाण है। स्वयम्भूरमण समुद्र के अन्तिम अर्ध भाग में ये तीनों प्रकार के विकलेन्द्रिय जीव होते हैं ॥४१३-४१७॥

अब समुद्रों के जलों के स्वाद का निर्धारण करते हैं—

लवणाब्धौ जलं क्षारं लवणस्वादमस्ति च।
वारुणी वरवार्धौ स्यादुदकं मद्यसन्निभम् ॥४१८॥
क्षीराब्धौक्षीरसुस्वादसदृशाम्भो भवेन्महत्।
घृतस्वादुसमं स्निग्धं जलं स्यात् घृतवारिधौ ॥४१९॥
कालोदे पुष्कराम्भोधौ स्वयम्भूरमणार्णवे।
केवलं जलसुस्वादं जलौघं च भवेत्सदा ॥४२०॥
एतेभ्यः सप्तवार्द्धिभ्यो परेऽसंख्यातसागराः।
भवन्तीक्षुरसस्वादसमानामधुराः शुभाः ॥४२१॥

अर्थ—लवण समुद्र के जल का स्वाद नमक के सदृश खारा है। वारुणीवर समुद्र के जल का स्वाद मद्य के स्वाद सदृश है। क्षीरवर समुद्र के जल का स्वाद दूध के स्वाद समान है और घृतवर समुद्र के जल का स्वाद एवं स्निग्धता घी के सदृश है। कालोदधि पुष्करवर समुद्र और स्वयम्भूरमण समुद्रों के जल का स्वाद सुमधुर जल के स्वाद सदृश है। इन सात समुद्रों को छोड़कर अवशेष असंख्यात समुद्रों के जल का स्वाद अत्यन्त स्वादिष्ट इक्षुरस के सदृश मधुर और सुस्वादु है ॥४१८-४२१॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब सर्व द्वीप समुद्रों के व्यास से स्वयम्भूरमण समुद्र के व्यास की अधिकता का प्रमाण कहते हैं–

समस्तद्वीपवार्धीनां व्यासात् पिण्डीकृताद्भवेत्।
स्वयम्भूरमणश्चाधिकव्यासो लक्षयोजनैः ॥४२२॥
इति प्राग्द्वीपवार्धिभ्योऽपरोद्वीपोऽथ चाम्बुधिः।
भवेदधिकविष्कम्भो लक्षैकयोजनैः स्फुटम् ॥४२३॥

अर्थ–समस्त द्वीप समुद्रों का व्यास एकत्रित करने पर जितना प्रमाण होता है, उससे स्वयम्भूरमण समुद्र का व्यास एक लाख योजन अधिक है। इसी प्रकार पूर्व-पूर्व द्वीप और समुद्रों के व्यास से आगे-आगे के द्वीप और समुद्रों का व्यास भी एक-एक लाख योजन अधिक होता है ॥४२२-४२३॥

अब मध्यलोक के वर्णन का उपसंहार एवं आचार्य अपनी लघुता प्रकट करते हैं–

इत्येवं विविधं जिनेन्द्रगदितं श्रीमध्यलोकं परम्,
किञ्चिच्छास्त्रधिया मया च विधिना संवर्णितं मुक्तये।
धर्मध्याननिबन्धनं सुनिपुणाः सद्धर्मसंसिद्धये,
सद्बुध्या वचसा पठन्तु विमलं कृत्वा च तन्निश्चयम् ॥४२४॥

अर्थ–इस प्रकार भगवान् जिनेन्द्र के द्वारा कहा हुआ मध्यलोक का नाना प्रकार का उत्कृष्ट वर्णन मैंने मुक्ति की प्राप्ति के लिए आगमानुसार विधिपूर्वक किया है, यह वर्णन धर्मध्यान का निबंधक है। इसमें यदि कहीं कुछ भूल हुई हो तो सज्जन पुरुष उत्तम धर्म (शिव) की प्राप्ति के लिए इसे अपनी बुद्धि से शुद्ध करके पढ़े ॥४२४॥

अधिकारान्त मंगलाचरण

येऽस्मिन् सन्ति सुमध्यलोकसकले श्रीमज्जिनेन्द्रालयाः,
श्रीनिर्वाणसुभूमयो बुधनुताः श्रीधर्मतीर्थाधिपाः।
अस्मात् सिद्धिपदं गता अवपुषोऽनन्तास्त्रिधा साधव-
स्तान् सर्वान् सुगुणैः स्तुवेऽहमनिशं वन्दे च तद्भूतये ॥४२५॥

इतिश्री सिद्धान्तसारदीपकमहाग्रन्थे भट्टारक श्रीसकलकीर्ति विरचिते मध्यलोकवर्णनो नाम दशमोऽधिकारः।

अर्थ–इस उत्तम मध्यलोक में श्री जिनेन्द्र भगवान् के जितने भी जिन मन्दिर हैं उन सबको, धर्मतीर्थ के अधिपति जहाँ से मोक्षपद को प्राप्त हुए हैं, ऐसे समस्त निर्वाण क्षेत्रों को और सिद्ध पद प्राप्त करने वाले अनन्त आचार्य उपाध्याय और सर्व साधुओं को मैं उनके उत्तम गुणों के साथ-साथ मोक्ष विभूति की प्राप्ति के लिए अहर्निश स्तुति करता हूँ और नमस्कार करता हूँ ॥४२५॥

इस प्रकार भट्टारक सकलकीर्ति विरचित सिद्धान्तसार दीपक नामक महाग्रन्थ में मध्यलोक का वर्णन करने वाला दशम अधिकार समाप्त हुआ ॥

❑ ❑ ❑

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

एकादश अधिकार

जीवों के भेद-प्रभेदों का वर्णन

मंगलाचरण

श्रीमतस्त्रिजगन्नाथान् स्वर्मुक्तिश्रीकरान्सताम्।
वन्दे धर्माधिपान् पञ्चपरमेष्ठिन उत्तमान् ॥१॥

अर्थ—जो तीन जगत् के नाथ हैं, सज्जन पुरुषों को स्वर्ग और मोक्ष लक्ष्मी प्रदान करने वाले हैं तथा धर्म के अधिनायक हैं, ऐसे परमोत्कृष्ट पंच परमेष्ठियों को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१॥

अब वक्ष्यमाण विषय की प्रतिज्ञा करते हैं—

अथ यैः पूरितो लोकः क्वचित्क्वचित्त्रसाङ्गिभिः।
सर्वत्र स्थावरैर्जीवैर्नानाभेदैश्च भूरिभिः ॥२॥
आयुः कायाक्षसंस्थानजातिवेदकुलादिभिः।
तांस्त्रसान् स्थावरान् सर्वान् वक्ष्ये सतां दयाप्ततये ॥३॥

अर्थ—यह लोक कहीं-कहीं त्रस जीवों से भरा हुआ है किन्तु स्थावर जीवों से तो सर्वत्र भरा हुआ है, अतः सज्जन पुरुष दया पालन कर सकें, इसलिए मैं सर्व त्रस और स्थावर जीवों के नाना प्रकार के भेद-प्रभेद, आयु, काय, इन्द्रियाँ, संस्थान, जाति, वेद और कुल आदि का विवेचन करूँगा ॥२-३॥

अब जीव के भेद और सिद्ध जीव का स्वरूप कहते हैं—

सिद्धसंसारिभेदाभ्यां स्युर्द्विधा जीवराशयः।
सिद्धाभेदादिनिष्क्रान्ता अनन्ता ज्ञानमूर्तयः ॥४॥

अर्थ—सम्पूर्ण जीव राशि सिद्ध और संसारी के भेद से दो प्रकार की है, जिसमें सिद्ध जीव भेद-प्रभेदों से रहित और अनन्त ज्ञान मूर्ति स्वरूप हैं ॥४॥

अब संसारी जीव के भेद कर स्थावर जीवों के प्रकार बतलाते हैं—

त्रसस्थावरभेदाभ्यां द्विधा संसारिणोऽङ्गिनः।
पृथिव्यादिप्रकारैश्च पञ्चधा स्थावरा मताः ॥५॥

अर्थ—त्रस और स्थावर के भेद से संसारी जीव दो प्रकार के हैं, उनमें से स्थावर जीव पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति कायिक के भेद से पाँच प्रकार के हैं ॥५॥

अब त्रस और स्थावर जीवों की पृथक्-पृथक् संख्या कहते हैं—

पृथ्व्यप्तेजोऽग्निमरुन्नित्येतरकायमयात्मनाम् ।
सप्तसप्तैव लक्षाणि प्रत्येकं सन्ति जातयः ॥६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

जातयो दशलक्षाणि वनस्पतिशरीरिणाम्।
प्रत्येकं द्विद्विलक्षाणि द्वित्रितुर्येन्द्रियात्मनाम् ॥७॥
तिर्यग्नारकदेवानां प्रत्येकं स्युश्च जातयः।
चतुर्लक्षाणि लक्षाणि चतुर्दशनृजातयः ॥८॥
इत्थं चतुरशीतिश्च लक्षाणि जीवजातयः।
अधुना विस्तरेणैषां काञ्चिज्जातिं ब्रुवे पृथक्॥९॥

अर्थ—पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, नित्यनिगोद और इतरनिगोद इन छह प्रकार के जीवों में से प्रत्येक की सात-सात लाख जातियाँ (योनियाँ) होती हैं। वनस्पतिकायिक जीवों की दस लाख, द्वीन्द्रिय जीवों की दो लाख, त्रीन्द्रिय की दो लाख, चतुरिन्द्रिय की दो लाख, पंचेन्द्रिय तिर्यंचों की चार लाख, नारकियों की चार लाख, देवों की चार लाख और मनुष्यों की चौदह लाख जातियाँ होतीं हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण संसारी जीवों की कुल जातियाँ (७ ला. + ७ ला. + ७ ला. + ७ ला. + ७ ला. + १० ला. + ६ ला. + ४ ला. + ४ ला. + ४ ला. + १४ ला.) = ८४००००० अर्थात् चौरासी लाख जातियाँ (योनियाँ) होतीं हैं। अब इन जातियों में से कुछ जातियों का पृथक् पृथक् विस्तारपूर्वक कथन करते हैं ॥६-९॥

अब पृथ्वी के चार भेद और उनके लक्षण कहते हैं—

पृथ्वी पृथ्वीकायः पृथ्वीकायिकस्तथा।
पृथ्वीजीव इति ख्याता पृथ्वीभेदाश्चतुर्विधाः ॥१०॥
मार्गोपमर्दिता धूलिः पृथ्वी प्रोच्यते बुधैः।
निर्जीव इष्टिकादिश्च पृथ्वीकायो मतः श्रुते ॥११॥
सजीवा पृथ्वी सर्वा पृथ्वीकायिको भवेत्।
विग्रहाध्वानमापन्नोऽङ्गी पृथ्वीजीव उच्यते ॥१२॥

अर्थ—पृथ्वी के चार भेद कहे गये हैं-पृथ्वी, पृथ्वीकाय, पृथ्वीकायिक और पृथ्वीजीव। विद्वानों के द्वारा मार्ग की उपमर्दित धूल को पृथ्वी कहा गया है तथा आगम में निर्जीव ईंट आदि को पृथ्वीकाय, सम्पूर्ण सजीव पृथ्वी को पृथ्वीकायिक और पृथ्वीकायिकों में जाते हुए, पृथ्वीकायिक नामकर्म के उदय से युक्त विग्रहगति में स्थित जीव को पृथ्वी जीव कहा है ॥१०-१२॥

नोट—पृथ्वी और पृथ्वीकाय यद्यपि दोनों अचित्त हैं, तथापि पृथ्वी में पुनः जीव उत्पन्न हो सकता है किन्तु पृथ्वीकाय में पुनः पृथ्वी जीव उत्पन्न नहीं हो सकता।

इसी प्रकार अब जल, अग्नि और वायु के चार-चार भेद और लक्षण कहते हैं—

अप् तथैवाप्शरीरं चाऽप्कायिकोऽप्जीव इत्यपि।
भेदाश्चत्वार आम्नाता जिनैरप्कायकात्मनाम् ॥१३॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

जलमान्दोलितं लोकैः सकर्दमं तथाप् भवेत्।
उष्णोदकं च निर्जीवमन्यद्वाप्काय उच्यते ॥१४॥
जलकाययुतः प्राणी चाप्कायिको निगद्यते।
अप्कायं नेतुमागच्छन् जीवोऽप्जीवो गतौ भवेत् ॥१५॥
पूर्वं तेजश्च तेजःकायस्तेजःकायिकस्तथा।
तेजोजीव इमे भेदाश्चत्वारस्तेजसां मताः ॥१६॥
भस्मनाच्छादितं तेजो मात्रं तेजः प्ररूप्यते।
जीवोज्झितं च भस्मादि तेजःकाय इहोच्यते ॥१७॥
तेजःकायमयो देही तेजःकायिक इष्यते।
तेजोऽङ्गार्थं व्रजन्मार्गे तेजोजीव मतो बुधैः ॥१८॥
वायुश्च वायुकायोऽथ तृतीयो वायुकायिकः।
वायुजीव इमे भेदाश्चत्वारो वायुदेहिनाम् ॥१९॥
रजःपुञ्जमयो वायुर्भ्रमन् वायुर्जिनैः स्मृतः।
जीवातीतो मरुत्पुद्गलो वायुकाय ईरितः ॥२०॥
वायुः प्राणमयः प्राणी प्रोदितो वायुकायिकः।
वाताङ्गार्थं व्रजन्मार्गेऽङ्गी वायुजीव उच्यते ॥२१॥

अर्थ—जिनेन्द्र भगवान् ने जलकाय जीवों के जल, जलकाय, जलकायिक और जलजीव इस प्रकार चार भेद कहे हैं। लोगों के द्वारा आडोलित एवं कीचड़ सहित जल को जल कहते हैं। उष्ण निर्जीव जल को जलकाय, जलकाय युक्त जीव को जलकायिक तथा जलकाय में जन्म लेने के लिए जाते हुए विग्रहगति में स्थित जीव को जलजीव कहते हैं। पूर्ववत् तेजकाय जीवों के तेज, तेजकाय, तेजकायिक और तेज जीव इस प्रकार चार भेद कहे हैं। भस्म से आच्छादित अग्नि को अर्थात् किञ्चित उष्ण भस्म को तेज कहते हैं। जिसमें से जीव निकलकर चला गया है, उस भस्मादि को तेज काय कहते हैं। तेजकाय सहित जीव को तेजकायिक और तेज नामकर्म से युक्त जो जीव विग्रहगति में स्थित हैं उन्हें विद्वानों ने तेजजीव कहा है। वायु जीवों के वायु, वायुकाय, वायुकायिक और वायुजीव इस प्रकार चार भेद होत हैं। धूलपुञ्ज से युक्त भ्रमण करती हुई वायु (आँधियों) को जिनेन्द्रदेव ने वायु कहा है। जीव से रहित पंखे आदि की पौद्गलिक वायु देह को वायुकाय कहते हैं। प्राणयुक्त वायु को वायुकायिक और वायुगति में आने वाले विग्रह गति स्थित जीव को वायु जीव कहते हैं ॥१३-२१॥

अब वनस्पति के चार भेद कहकर उनके भिन्न-भिन्न लक्षण बतलाते हैं—

आदौ वनस्पतिश्चाथ वनस्पतिवपुस्ततः।
वनस्पत्यादिकः कायिको वनस्पतिजीववाक् ॥२२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

वनस्पत्या अमी भेदाश्चत्वारः कीर्तिता जिनैः।
अन्तर्जीवयुतोबाह्यत्यक्तजीवो वनस्पतिः ॥२३॥
वनस्पतिवपुः स्मृतः छिन्नभिन्नं तृणादिकम्।
वनस्पत्यङ्गयुक्तोऽङ्गीस्याद्वनस्पतिकायिकः ॥२४॥
प्राक्शरीरपरित्यागे वनस्पत्यङ्गसिद्धये।
प्राणान्तेऽङ्गी गतिं गच्छन् स्याद्वनस्पतिजीववाक् ॥२५॥

अर्थ—वनस्पति, वनस्पतिकाय, वनस्पतिकायिक और वनस्पति जीव ऐसे वनस्पति के चार भेद जिनेन्द्र देव के द्वारा कहे गये हैं। अभ्यन्तर भाग जीव युक्त है और बाह्य भाग जीव रहित है, ऐसे वृक्ष आदि (कटे हुए हरे वृक्ष) को वनस्पति कहते हैं। छिन्न-भिन्न किये हुए तृणादिक को वनस्पति काय माना गया है, जीव सहित वनस्पतिकाय को वनस्पतिकायिक कहते हैं और आयु के अन्त में पूर्व शरीर को त्यागकर जो जीव वनस्पतिकायिकों में उत्पन्न होने के लिये विग्रहगति में जा रहा है, उसे वनस्पति जीव कहते हैं ॥२२-२५॥

अब इन पंच स्थावरों के चार-चार भेदों में से कितने चेतन और कितने अचेतन हैं इसका निर्धारण करते हैं—

एतेषां प्राक्तनो भेदःकिञ्चित्प्राणाश्रितो मतः।
पृथ्व्यादीनां द्वितीयस्तु केवलं जीवदूरगः ॥२६॥
जीवयुक्तस्तृतीयश्चचतुर्थो भेद ईरितः।
त्यक्तप्राग्वपुषां भाविपृथ्व्याद्यङ्गाय गच्छताम् ॥२७॥
एतान् भेदान् बुधैर्ज्ञात्वा सचेतनानचेतनान्।
पृथ्व्यादीनां सुरक्षायै कर्तव्यं यत्नमञ्जसा ॥२८॥

अर्थ—इन पंच स्थावरों के चार-चार भेदों में से प्रथम भेद किंचित् जीव युक्त होता है। द्वितीय भेद मात्र अजीव होता है, तृतीय भेद जीव सहित होता है और चतुर्थ भेद में जीव पूर्व शरीर को छोड़कर पृथ्वी आदि शरीर को धारण करने के लिये जाता है अतः यह चेतन ही है। इस प्रकार विद्वानों के द्वारा कहे हुए भेदों में चेतन-अचेतन भेदों को जानकर पृथ्वी आदि पंच स्थावरों की रक्षा के लिए यत्न करना चाहिए ॥२६-२८॥

अब पृथ्वीकायिक जीवों में से मृदु पृथ्वीकायिक जीवों के भेदों का निरूपण करते हैं—

मृत्तिका वालुका लोहं लवणं सागरादिजम्।
ताम्रं रूप्यं स्वर्णं च त्रिपुषः सीसकं तथा ॥२९॥
हिङ्गुलं हरितालं च मनःशिलाथ सस्यकम्।
अञ्जनं ह्यभ्रकं चाभ्रवालुकामी हि षोडश ॥३०॥
भेदा मृदुपृथ्वीकायात्मनां प्रोक्ता जिनागमे।
इदानीं खरपृथ्वीनां भेदान् मण्यादिकान् ब्रुवे ॥३१॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अर्थ—मिट्टी, बालुका, लोहा, समुद्र आदि में उत्पन्न होने वाला नमक, ताम्र, चाँदी, स्वर्ण, त्रिपुष (कथीर या रांगा), सीसा, हिंगुल, हरताल, मनःशिला, जस्ता, अञ्जन (नीलाथूथा या सुरमा), अभ्रक और भोडल ये सोलह भेद जिनागम में कोमल पृथ्वीकायिक जीवों के कहे गये हैं, अब खर पृथ्वी के मणि आदि भेदों को कहते हैं ॥२९-३१॥

अब खर पृथ्वी के भेदों का निरूपण करते हैं—

प्रवालं शर्करा वज्रं शिलोपलं ततः परम्।
कर्केतनमणिर्नाम्ना रजकाख्यो मणिस्ततः ॥३२॥
चन्द्रप्रभोऽथ वैडूर्यकोमणिः स्फटिको मणिः।
जलकान्तो मणिःसूर्यकान्तश्च गैरिको मणिः ॥३३॥
चन्दनः पद्मरागाख्यो मणिर्मरकताह्वयः।
वको मोचो मणिर्वैमसृणपाषाणसंज्ञकः ॥३४॥
एते विंशतिसद्भेदाः पृथ्वीकायमयात्मनाम्।
खराख्याणां सुभव्यानां दयायैगणिभिर्मताः ॥३५॥

अर्थ—प्रवाल, शर्करा, हीरा, शिला, उपल (पत्थर), कर्केतनमणि, रजकमणि, चन्द्रप्रभमणि, वैडूर्यमणि, स्फटिकमणि, जलकान्तमणि, सूर्यकान्तमणि, गैरिकमणि, चन्दनमणि, पद्मराग, मरकतमणि, वकमणि, मोचमणि, वैमसृण और पाषाण खर पृथ्वी स्वरूप पृथ्वीकायिक जीवों के ये बीस भेद भव्य जीवों के दया पालनार्थ गणधर देवों के द्वारा कहे गये हैं ॥३२-३५॥

अब पृथ्वीकायिक पृथ्वी से बने हुए पर्वत एवं प्रासादों आदि का कथन करते हैं—

रत्नप्रभादयः सप्तपृथ्व्यश्चैत्यद्रुमाखिलाः।
मेर्वाद्याः पर्वताः सर्वे वेदिकातोरणादयः ॥३६॥
त्रिलोकस्थ विमानानि जम्बाद्याः सकलाद्रुमाः।
नृविद्येशसुराणां च प्रासादाः कमलानि च ॥३७॥
स्तूपरत्नाकराद्या ये पृथ्वीकायमयाश्च ते।
सर्वे ह्यन्तर्भवन्त्येषु पृथ्वीभेदेषु नान्यथा ॥३८॥
एतान् पृथ्वीमयान् जीवान् पृथ्वीकायाश्रितान् बहून्।
सम्यग्ज्ञात्वा प्रयत्नेन रक्षन्तु साधवोऽनिशम ॥३९॥

अर्थ—रत्नप्रभा आदि सातों पृथिवियाँ, सम्पूर्ण चैत्यवृक्ष, मेरु आदि सर्व पर्वत, वेदिकाएँ एवं तोरण आदि, त्रैलोक्यस्थित विमान, जम्बू आदि समस्त वृक्ष, मनुष्यों, विद्याधरों और देवों के प्रासाद, पद्म आदि सरोवरों में स्थित कमल, स्तूप और रत्नाकर आदि ये सब पृथ्वीकायमय हैं और इन सबका अन्तर्भाव पृथ्वीकाय के भेदों में ही होता है, अन्य में नहीं। पृथ्वीकाय के आश्रित रहने वाले इन सब

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

पृथ्वीमय जीवों को भली प्रकार जानकर सज्जन पुरुषों को अहर्निश इनकी रक्षा प्रयत्नपूर्वक करना चाहिए ॥३६-३९॥

अब जलकायिक जीवों के भेदों का प्रतिपादन करते हैं—

अवश्यायजलं रात्रिपश्चिमप्रहरोद्भवम्।
हिमाख्यं जलकायं च जलवन्घनसम्भवम् ॥४०॥
महिकाख्यं जलं धूमाकाराम्बु च हरज्जलम्।
स्थूलबिन्दुजलं चाणुः सूक्ष्मबिन्दुजलं तथा ॥४१॥
शुद्धाम्बुचन्द्रकान्तोत्थमुदकं निर्झरादिजम् ।
सामान्याम्बुघनाख्याम्भोऽब्धिद्रहमेघवातजम् ॥४२॥
सरित्कूपसरःकुण्डनिर्झराब्धिह्रदादयः ।
एष्वप्कायेषु सर्वेऽन्येऽन्तर्भवन्त्यम्बुकायिकाः ॥४३॥
एतानप्कायसद्भेदानप्कायाश्रितान् बहून्।
जीवान् विज्ञाय यत्नेन पालयन्त्वात्मवत्सदा ॥४४॥

अर्थ—रात्रि के पिछले पहर में उत्पन्न होने वाला ओस जल, हिम नाम का जलकाय, मेघ जलकाय, कोहरे का जल, धूम आकार (धुन्ध) जल, डाभ की अणी पर स्थित जल, स्थूल बिन्दु जल, जलकण, सूक्ष्म बिन्दु जल, शुद्ध जल, चन्द्रकान्तमणि से उत्पन्न जल, झरनों आदि से उत्पन्न जल, सामान्य जल, घन जल (घनोदधि), द्रहजल, मेघ से उत्पन्न जल, घनवातज जल, नदी, कूप, तालाब, कुण्ड, झरना, समुद्र एवं सरोवर आदि सर्व जल का जलकाय में अन्तर्भाव होने से यह सब जलकायिक ही है। इन सब जलकाय के भेदों को तथा जलकाय के आश्रित रहने वाले असंख्यात जीवों को अपनी आत्मा के सदृश जानकर प्रयत्नपूर्वक निरन्तर उनकी रक्षा करना चाहिए ॥४०-४४॥

अब अग्निकायिक जीवों का प्रतिपादन करते हैं—

अङ्गाराणि ज्वलज्ज्वालाह्यर्चिर्दीपशिखादिका।
मुर्मराख्यो हि कार्षाग्निः शुद्धाग्निर्बहुभेदभाक् ॥४५॥
विद्युत्पातााग्निवज्राग्निसूर्यकान्तादिगोचरः ।
अग्निसामान्यरूपाग्निनिर्धूमो वाडवादिजः ॥४६॥
नन्दीश्वरमहाधूमकुण्डिकामुकुटादिजाः ।
अग्निकाया अमीष्वन्तर्भवन्त्यनलयोनिषु ॥४७॥
इमांस्तेजो मयान् जीवांस्तेजःकायान् श्रितान् परान्।
विदित्वा सर्वयत्नेन रक्षन्तु मुनयोऽनिशाम् ॥४८॥

अर्थ—अंगाररूप अग्नि, ज्वालाग्नि, अर्चि अग्नि, दीपशिखाग्नि, मुर्मराग्नि, कार्षाग्नि और बहुत प्रकार की शुद्धाग्नि, विद्युत्पाताग्नि, वज्राग्नि, सूर्यकान्त आदि से उत्पन्न अग्नि, सामान्य अग्नि,

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

निर्धूमाग्नि, बड़वाग्नि, नन्दीश्वर द्वीपस्थ महाधूम कुण्डों की अग्नि तथा मुकुट आदि से उत्पन्न अग्नि अग्निकाय होने से इन सब अग्नियों का अनिलयोनियों में अन्तर्भाव हो जाता है। तेजकाय के आश्रित रहने वाले सर्व तेजकायिक जीवों को भली प्रकार जानकर मुनिजन इनकी अहर्निश प्रयत्नपूर्वक रक्षा करते हैं ॥४५-४८॥

अब वायुकायिक जीवों के स्थानों का वर्णन करते हैं—

वातः सामान्यरूपश्चोद्भ्रमऊर्ध्वं भ्रमन् व्रजेत्।
उत्कलिर्मण्डलिपृथ्वीलग्नो भ्रमन् प्रगच्छति ॥४९॥
गुञ्जावातो महावातो वृक्षादिभङ्गकारकः।
घनोदधिश्च नाम्ना घनानिलस्तनुवातवाक् ॥५०॥
उदरस्थविमानाधारपृथ्व्यधस्तलाश्रिताः ।
त्रिलोकाच्छादका वाता अत्रैवान्तर्भवन्ति च ॥५१॥
एतान् वाताङ्गभेदांश्च जीवान् वातवपुः श्रितान्।
ज्ञात्वा नित्यं प्रयत्नेन पालयन्तु स्ववद्विदः ॥५२॥

अर्थ—सामान्य रूप वायु, उद्भ्रम वायु, ऊपर भ्रमण करने वाली वायु, उत्कलि वायु, मण्डल वायु, पृथ्वी स्पर्श कर भ्रमण करने वाली वायु, गुञ्जावात, वृक्षों आदि को नष्ट करने वाली महावायु, घनोदधि वायु, घन वायु, तनुवायु, उदरस्थ वायु, विमान जिसके आधार हैं वह वायु, पृथ्वीतल के आश्रित वायु और त्रैलोक्य आच्छादक वायु, ये सर्व वायु इन्हीं पवनों में अन्तर्भूत होती हैं। ये सब भेद वायुकाय के कहे गये हैं। वायुकायिक जीव इसी वायुकाय के आश्रित रहते हैं, ऐसा जानकर विद्वज्जनों को इन्हें अपनी आत्मा के सदृश समझकर नित्य ही इनकी दया का प्रयत्नपूर्वक पालन करना चाहिए ॥४९-५२॥

अब वनस्पतिकायिक जीवों के भेद कहते हैं—

असाधारणसाधारण भेदाभ्यां जिनागमे।
कीर्तिता द्विविधाः संक्षेपाद्वनस्पतिकायिकाः ॥५३॥
प्रत्येकं द्विप्रकारास्ते साधारणेतराङ्गिनः।
उदकाद्यैश्च जीवोत्थ सम्मूर्च्छिमद्विभेदतः ॥५४॥
मूलाग्रपोरकन्दस्कन्धबीजोद्भवदेहिनः ।
त्वक्पत्राणि प्रवालानि पुष्पाणि च फलान्यपि ॥५५॥
गुच्छागुल्मानि वल्ली च तृण पर्वादि कायिकाः।
प्रत्येकादि चतुर्भेदानां सद्भेदा मता इमे ॥५६॥

अर्थ—जिनागम में असाधारण (प्रत्येक) वनस्पतिकायिक और साधारण वनस्पतिकायिक के

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

भेद से वनस्पतिकायिक जीवों के संक्षेप से दो भेद कहे गये हैं। इनमें से असाधारण अर्थात् प्रत्येक वनस्पति सप्रतिष्ठित (साधारण सहित) और अप्रतिष्ठित (साधारण रहित) के भेद से दो प्रकार की है। (मिट्टी और) जल आदि के सम्बन्ध से होने वाली सम्मूर्च्छन जन्म वालीं वनस्पतियाँ भी सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित के भेद से दो प्रकार की होतीं हैं। मूल, अग्र, पोर, कन्द, स्कन्ध और बीज से उत्पन्न होने वाले वनस्पतिकायिक जीव तथा त्वक्, पत्र, प्रवाल, पुष्प, फल, गुच्छा, गुल्म, बल्ली, तृण और पर्व आदि प्रत्येक के वनस्पति, वनस्पतिकाय, वनस्पतिकायिक और वनस्पति जीव ये चार भेद माने गये हैं ॥५३-५६॥

अमीषां सुखबोधाय व्याख्यानमाह –

येषां मूलं प्रादुर्भवति ते आर्द्रकहरिद्रादयः मूलजीवाः। येषामग्रं प्ररोहति ते कोरन्टमल्लिकादयः अग्रजीवाः। येषां पोरप्रदेशः प्ररोहति ते इक्षुवेत्रादयः पोरजीवाः। येषां कन्ददेशः प्रादुर्भवति ते कदलिपिण्डालुकादयः कन्दजीवाः। येषां स्कन्धदेशः प्रारोहति ते शल्यकी पालिभद्रपलाशादयः स्कन्धजीवाः। येषां क्षेत्रजलादि सामग्र्या प्ररोहस्ते यवगोधूमादयः बीजजीवाः। त्वक् वृक्षादि बहिर्बल्कलं सैवलं युतकादिकं। येषां पत्राण्येव भवन्ति न पुष्पाणि न फलानि तानि पत्राण्युच्यन्ते। पत्राणां पूर्वावस्था प्रवालः स्यात्। यासां वनस्पतीनां पुष्पाण्येव सन्ति न फलादीनि ताः पुष्पाणि निगद्यन्ते। येषां पुष्पेभ्यो विना फलानि जायन्ते ते द्रुमाः फलानि कथ्यन्ते। गुच्छाः बहूनां समुदाया एककालोद्भवाः। जातिमल्लिकादयः गुल्मानि। करञ्ज कन्थारिकादीनि वल्लीस्यान्मालत्यादिका। तृणानि नानाप्रकाराणि। पर्वग्रन्थिकयोर्मध्यवेत्रादि।

अर्थ–इन वनस्पतियों के भेदों का सुखपूर्वक बोध प्राप्त करने को कहते हैं–

जिनकी मूल से उत्पत्ति होती है, वे मूल जीव हैं। जैसे–अदरक, हल्दी आदि। जो अग्र (टहनी) से उत्पन्न होते हैं, वे अग्र जीव हैं। यथा–केतकी, गुलाब, आर्यका, मोगरा आदि। जो पर्व के प्रदेश (गाँठ) से उत्पन्न होते हैं, वे पोर जीव हैं। यथा–ईख, वेंत आदि। जो कन्द से उत्पन्न होते हैं, वे कन्द जीव हैं। यथा–सकरकन्दी, पिण्डालू (सूरण) आदि। जिनकी उत्पत्ति स्कन्ध से होती है, वे स्कन्ध जीव हैं, यथा–सल्लकी (साल), कटकी, बड़, पीपल, पलाश, देवदारु आदि। जिन बीजों की भूमि एवं जल आदि सामग्री के सहयोग से उत्पत्ति होती है, वे बीज जीव हैं। यथा–जौ, गेहूँ आदि। वृक्ष आदि की बाह्य छाल को त्वक् और युतक (काई) आदि को सैवल कहते हैं। जिसमें केवल पत्ते ही होते हैं, पुष्प और फल नहीं होते, उसे पत्र वृक्ष कहते हैं। पत्तों की पूर्व अवस्था को प्रवाल कहते हैं। जिन वनस्पतियों में मात्र पुष्प होते हैं, फल आदि नहीं होते, उसे पुष्प वनस्पति कहते हैं। पुष्प के बिना जिसमें केवल फल उत्पन्न होते हैं, उन्हें फल वृक्ष कहते हैं। एक समय में उत्पन्न होने वाले बहुत के समुदाय को गुच्छा कहते हैं। मोगरा, मल्लिका आदि को गुल्म और करंज, कथारी आदि को वल्जी कहते हैं। मालती आदिक नाना प्रकार के तृण हैं पर्व और ग्रन्थि के मध्य वेंत आदि होते हैं।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब साधारण वनस्पतिकायिक जीवों के लक्षण आदि कहते हैं—

एते प्रत्येककायाः स्युः केचिच्चानन्तकायिकाः
केचिद्बीजोद्भवाः केचित् सम्मूर्च्छिका हि देहिनः ॥५७॥
नित्येतरनिकोताभ्यां द्विधा साधारणामताः।
अनन्तकायिका जीवा अनन्तैकाक्ष संकुलाः ॥५८॥
यत्रैकोम्रियते प्राणी तत्रैवानन्तजन्मिनाम्।
मरणं चैककालेन तत्समं ह्येककायतः ॥५९॥
यत्रैको जायते जीवस्तत्रोत्पत्तिर्भवेत्स्फुटम्।
अनन्तदेहिनां सार्धं तेन तत्क्षणमञ्जसा ॥६०॥
ततस्तेऽनन्तजीवात्ताः प्रोक्ता अनन्तकायिकाः।
युगपन्मरणोत्पत्तेरनन्तैकेन्द्रियात्मनाम् ॥६१॥
तीव्रमिथ्यादियुक्तैर्यैर्भ्रमद्भिर्दुर्भवाटवीम् ।
अनन्तां प्राणिभिर्घोरदुःकर्मग्रसितात्मभिः ॥६२॥
अनन्तकायवर्गेषु न त्रसत्वं कदाचन।
प्राप्तं तेऽनन्तकायात्ताः मता नित्यनिकोतकाः ॥६३॥
अनन्तकायिका एते पञ्चभेदामता इति।
जम्बूद्वीपादि दृष्टान्तैः स्कन्धा डरादयो जिनैः ॥६४॥

अर्थ—ये पूर्वकथित जीव प्रत्येक काय हैं, इनमें कोई-कोई अनन्तकाय हैं, कोई बीज से उत्पन्न होने वाले हैं और कोई जीव सम्मूर्च्छन जन्म वाले हैं। साधारण वनस्पतिकायिक जीवों के नित्यनिगोद और इतरनिगोद ये दो भेद हैं। ये अनन्तकायिक अर्थात् साधारण अनन्त एकेन्द्रिय जीव एक साथ (संकुला) बँधे हुए हैं। साधारण जीवों में जहाँ एक जीव का मरण होता है, वहाँ एक काय होने से एक ही समय में एक साथ अनन्त जीवों का मरण होता है और जहाँ एक जीव उत्पन्न होता है, वहीं उसी क्षण एक साथ अनन्त जीव जन्म लेते हैं। इन अनन्त एकेन्द्रिय जीवों का एक ही साथ मरण और एक ही साथ जन्म होता है, इसीलिए उन अनन्त जीवों के समूह को अनन्तकायिक कहते हैं। जो तीव्र मिथ्यात्व आदि से युक्त और घोर दुःकर्मों से ग्रसित हैं, ऐसे अनन्तानन्त प्राणी भयावह संसाररूपी अटवी में भ्रमण करते हैं। अनन्तकाय जीवों के समूह में जो जीव कभी भी त्रस पर्याय को प्राप्त नहीं करते उन्हें नित्यनिगोदिया कहते हैं। इन अनन्तकायिक जीवों के पाँच भेद माने गये हैं, जो जिनेन्द्र के द्वारा जम्बूद्वीप आदि के दृष्टान्तों से स्कन्ध, अंडर, आवास, पुलवि और शरीर आदि के रूप में प्रतिपादन किये गये हैं ॥५७-६४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब जम्बूद्वीप आदि के दृष्टान्तों द्वारा स्कन्ध, अण्डर आदि का प्रतिपादन करते हैं–

जम्बूद्वीपे यथा क्षेत्रं भारतं भारतेऽस्ति च।
कोशलः कोशले देशेऽयोध्यायां सौधपङ्क्तयः ॥६५॥
तथा स्कन्धा असंख्येयलोकप्रदेशमात्रकाः।
एकैकस्मिन् पृथक् स्कन्धे ह्यण्डरा गदिता जिनैः ॥६६॥
असंख्यलोकतुल्याब्दैकैकस्मिनण्डरे स्मृताः।
आवासेभ्यो ह्यसंख्यातलोकमात्रा न संशयः ॥६७॥
एकैकस्मिन् तथावासे प्रोक्ता पुलवयोऽखिलाः।
असंख्यलोकमाना एकैकस्मिन् पुलवौ भवे ॥६८॥
असंख्यातशरीराणि लोकमानानि सन्ति च।
एकैकस्मिन्निकोतानां शरीरे प्राणिनो ध्रुवम् ॥६९॥
अतीतानन्तकालोत्थानन्तसिद्धेभ्य एव च।
सर्वेभ्य आगमे प्रोक्ता वाण्यानन्तगुणा जिनैः ॥७०॥

अर्थ–जैसे जम्बूद्वीप में भरतक्षेत्र है, भरतक्षेत्र में कौशल देश है, कौशल देश में अयोध्या नगरी है और एक-एक अयोध्या नगरी में अनेक प्रासाद (महल) पंक्तियाँ हैं, उसी प्रकार असंख्यात लोक प्रमाण पुद्गल परमाणुओं का एक स्कन्ध और एक-एक स्कन्ध में असंख्यात लोक, असंख्यात लोक प्रमाण अण्डर जिनेन्द्र द्वारा कहे गये हैं। पृथक्-पृथक् एक-एक अण्डर में असंख्यात-असंख्यात लोक प्रमाण आवास हैं, इसमें कोई संशय नहीं है। पृथक्-पृथक एक-एक आवास में असंख्यात लोक-असंख्यात लोक प्रमाण पुलवियाँ हैं, एक-एक पुलवि में असंख्यात लोक-असंख्यात लोक प्रमाण शरीर हैं और पृथक्-पृथक् एक-एक निगोद शरीर में जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा आगम में अतीत और आगामी अनन्तकाल में होने वाले सर्व अनन्त सिद्धों के अनन्तगुणी जीव राशि कही गई है। अर्थात् अतीत और अनागत में होने वाली सर्व सिद्ध राशि का जितना प्रमाण है, उससे अनन्तगुणे जीव एक निगोद शरीर में रहते हैं ॥६५-७०॥

अब बादर अनन्तकाय जीवों का कथन करते हैं–

शैवालं पणकंनाम केणुगः कवगस्तथा।
पुष्पिकेत्यादयः सन्त्यनन्तकायाश्च बादराः ॥७१॥

अस्य भाष्यमाह –

शैवालं जलगतहरितरूपं, पणकं भूमिगत शैवालं, इष्टकादि प्रभवं च, केणुकः, आलम्बकछत्राणि शुक्लहरितनीलरूपाणि अपस्करोद्भवानि कवगः शृंगालंबकछत्राणि। पुष्पिका आहारकञ्जिकादि गताः। इत्याद्याः स्थूला अनन्तकायिकाः स्युः।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY